भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी

मासद्वयी अन्तर्राष्ट्रीय शोध समग्र पत्रिका

Peer Reviewed

ISSN 0973-9777
GISI Impact Factor 3.5628
वर्ष-१० अंक-६
नवम्बर-दिसम्बर २०१६

एम.पी.ए.एस.वी.ओ.
द्वारा आन्वीक्षिकी सदस्य
सहसंयोजन से प्रकाशित

वर्ष-१०
अंक-६
नवम्बर-दिसम्बर २०१६

आन्वीक्षिकी

भारतीय शोध पत्रिका

मासद्वयी अन्तर्राष्ट्रीय शोध समग्र पत्रिका

प्रधान सम्पादिका

डॉ. मनीषा शुक्ला,maneeshashukla76@rediffmail.com

पुनर्निरीक्षक संपादक

प्रो. विभा रानी दुबे, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी, उ.प्र.,भारत

डॉ. नागेन्द्र नारायण मिश्र, इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद,उ.प्र.,भारत

प्रो. उमेश चंद्र दुबे, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, उ. प्र.,भारत

सम्पादक

डॉ. महेन्द्र शुक्ल, डॉ. अंशुमाला मिश्रा

सम्पादक मण्डल

डॉ. मंजु वर्मा, डॉ. अमित जोशी, डॉ. अर्चना तिवारी, डॉ. सीमा रानी, डॉ. सुमन दुबे, डॉ. सच्चिदानंद द्विवेदी, डॉ. मनोज कुमार अग्निहोत्री, पाल सिंह, डॉ. पौलमी चटर्जी, डॉ. राम अग्रवाल, डॉ. शीला यादव, डॉ. प्रतीक श्रीवास्तव, जय प्रकाश मल्ल, डॉ. त्रिलोकीनाथ मिश्र, प्रो. अंजली श्रीवास्तव, विजय कुमार प्रभात, डॉ. जे.पी. तिवारी, डॉ. योगेश मिश्रा, डॉ. निर्मला देवी, डॉ. आरती यादव, डॉ. कविता सिंह, डॉ. सुभाष मिश्र, डॉ. पूनम सिंह, डॉ. रीता मौर्या, डॉ. सौरभ गुप्ता, डॉ. श्रुति विग, दीप्ति सजवान, डॉ. निशा यादव, डॉ. रमा पद्मजा वेदुला, डॉ. कल्पना बाजपेयी, डॉ. ममता अग्रवाल

अन्तर्राष्ट्रीय सलाहकार मण्डल

पी.त्रिराची सोडामा (श्रीलंका), फ्रा च्युतिदेश सैन्सोम्बट (बैंकाक,थाईलैंड), डॉ. सीताराम बहादुर थापा (नेपाल), माजिद करीमजादेह (ईराक), मोहम्मद जारेई (जाहेडान, ईरान), मोहम्मद मोजटाबा केयाहफरजानेह (जाहेडान, ईरान), डॉ. होसैन जेनाबदी (सिस्तान एवं बलूचिस्तान, ईरान), मोहम्मद जावेद केयाह फरजानेह (जाबोल, ईरान)

प्रबन्धक

महेश्वर शुक्ल,maheshwar.shukla@rediffmail.com

पाठकों से

आन्वीक्षिकी,भारतीय शोध पत्रिका प्रत्येक दो माह (जनवरी, मार्च, मई, जुलाई, सितम्बर एवं नवम्बर) पर एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण वाराणसी उ.प्र. भारत द्वारा प्रकाशित की जाती है। एक वर्ष में आन्वीक्षिकी, भारतीय शोध पत्रिका 6 भाग हिन्दी एवं 6 भाग अंग्रेजी एवं 3 अतिरिक्तांकों के भाग में प्रकाशित की जाती है। डॉक खर्च दर के सम्बन्ध में जानकारी हेतु सम्पर्क करें।

वार्षिक पाठक मूल्य दर

संस्थागत एवं व्यक्तिगत : भारतीय 5000+1000/-डाक शुल्क, एक प्रति 1300+100/- डाक शुल्क, वैदेशिक : 6000+डाक खर्च, एक प्रति 1000+डाक शुल्क

विज्ञापन एवं निवेदन

विज्ञापन के संदर्भ में जानकारी प्राप्त करने हेतु प्रधान सम्पादिका के पते पर संपर्क करें। आन्वीक्षिकी एक स्ववित्तपोषित पत्रिका है,अत: किसी भी प्रकार का आर्थिक सहयोग सराहनीय होगा। कृपया अपनी सहयोग राशि चेक अथवा ड्राफ्ट के माध्यम से निम्नलिखित पते पर प्रेषित करें।

सभी पत्राचार निम्नलिखित पते पर ही प्रेषित करें-

बी.32/16 ए. 2/1,गोपालकुंज,नरिया,लंका वाराणसी उ.प्र. भारत,पिन कोड 221005 मोबाइल नं. 09935784387,

टेलीफोन नं. 0542-2310539.,E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com,www.anvikshikijournal.com

मिलने का समय : 3-5 दिन में(रविवार अवकाश)

पत्रिका संयोजन : महेश्वर शुक्ल,maheshwar.shukla@rediffmail.com

प्रकाशन :एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण

प्रकाशन तिथि : 29 दिसम्बर 2016

मनीषा प्रकाशन

(पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/ 2007-2008 बी.32/16 ए. 2/1,गोपालकुंज,नरिया, लंका वाराणसी उ.प्र. भारत)

आन्वीक्षिकी

भारतीय शोध पत्रिका

वर्ष-10 अंक-6 नवम्बर-2016

शोध प्रपत्र

मनुष्य का निर्माण : विवेकानन्द -डॉ. मनोज कुमार अग्निहोत्री 1-2
मम्मट के दृष्टिकोण में "काव्य के हेतु" -डॉ. मनीषा शुक्ला 3-4

प्लेटो : शिक्षा का महत्व -डॉ. मनोज कुमार अग्निहोत्री 5-6
ऋग्वेद एवं कुमारसम्भवम् में वर्णित अग्नि देवता का स्वरुप -डॉ. सुमन दुबे 7-10

भारतीय उच्च शिक्षा की चुनौतियाँ -श्रुति विग 11-14
प्लेटो का कला सौन्दर्य-दर्शन -डॉ. मनोज कुमार अग्निहोत्री 15-18

प्राचीन भारत में पर्यावरण बोध -डॉ. ज़ेबा इस्लाम 19-21
बौद्ध शिक्षा केन्द्र -विक्रमाशिला विश्वविद्यालय -डॉ. ज़ेबा नक़वी 22-27

स्वामी विवेकानन्द के शैक्षिक विचारों की वर्तमान परिप्रेक्ष्य में प्रासंगिकता -दीप्ति सजवान एवं डॉ. अनोज राज 28-33
अपभ्रंश युगीन जैनेतर साहित्य -डॉ. नीतू दुबे 34-37

छायावाद में आत्माभिव्यक्ति -डॉ. निशा यादव 38-40
"एक नये समाज का स्वप्न है सुनहली सुबह के गीत [गुरुवेन्द्र तिवारी का रचना संसार]" -डॉ. प्रभा दीक्षित 41-44

"सहरिया लोकगीतों का सांस्कृतिक अध्ययन" -हरिकेश मीना 45-48
पूर्वी लोक गीतों में स्त्री विमर्श -डॉ. रमा पद्मजा वेदुला 49-52

अमृतलाल नागर के उपन्यासों में स्त्री विमर्श -डॉ. कल्पना बाजपेयी 53-57
हिन्दी की आनुष्ठानिक शब्दावली : भाषा वैज्ञानिक दृष्टिकोण -डॉ. आलोक कुमार सिंह 58-69

नागार्जुन की कविताओं में राजनैतिक यथार्थ -डॉ. नमिता जैसल 70-73
भारत में वानिकी तथा कृषि क्षेत्रों में व्हाइट ग्रब्स का वितरण, प्रकोप एवं नियंत्रण के संबंध में महत्वपूर्ण जानकारी -मन्सूर अहमद, डॉ. नितिन कुलकर्णी एवं डॉ. संजय पौनीकर 74-80

मनुस्मृति की धर्मविषयक अवधारणा -डॉ. स्मिता द्विवेदी 81-83
ऋग्वेद में राज्य शासन का स्वरुप -श्रवण कुमार तिवारी 84-87

डॉ. भीमराव अम्बेडकर एक संघर्ष : शिक्षा व समाज तथा अधिकारों के लिए -पाल सिंह 88-91
भारत की आन्तरिक सुरक्षा, विकास एवं अखण्डता के लिए वर्तमान परिप्रेक्ष्य में बुद्ध, गाँधी और आम्बेडकर दर्शन की प्रासंगिकता -डॉ. प्रदीप भिमटे 92-95

दलित समाज के प्रेरणा स्रोत -प्रो. अंजली श्रीवास्तव 96-99

प्रिंट ISSN 0973-9777, वेबसाइट ISSN 0973-9777

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777
भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 10,1-2
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 04 अक्टूबर 2016

मनुष्य का निर्माण : विवेकानन्द

डॉ. मनोज कुमार अग्निहोत्री*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *मनुष्य का निर्माण : विवेकानन्द* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र का लेखक मैं *मनोज कुमार अग्निहोत्री* घोषणा करता हूँ कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देता हूँ।

सारांश

विवेकानन्द शिक्षा के द्वारा मनुष्य को लौकिक एवं परलौकिक दोनों जीवनों के लिए तैयार करना चाहते हैं। उनका मानना है कि जब तक हम भौतिक दृष्टि से सम्पन्न और सुखी नहीं होते तब तक ज्ञान, कर्म और मलि कल्पना की वस्तु हैं। उनके अनुसार हमें ऐसी शिक्षा चाहिए, जिसके द्वारा चरित्र का गठन हो, मन का बल बढ़े, बुद्धि का विकास हो और मनुष्य स्वावलम्बी बने, जिससे मनुष्यत्व/ मानवता का विकास हो सके।

स्वामी विवेकानन्द के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य में अन्तर्निहित पूर्णता की अभिव्यक्ति है। यह पूर्णतः मनुष्य में स्वतः विद्यमान रहती है और शिक्षा द्वारा इसका अनावरण मात्र किया जाता है। शिक्षा के इस अन्तिम उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए मनुष्य में मनुष्यत्व का निर्माण करना अवाश्यक होता है।

यह मनुष्यत्व क्या है? मनुष्य द्वारा उन लौकिक एवं अलौकिक गुणों को धारण करना है जिससे वह दिव्य पुरुष बन जाय, और वह आत्मविश्वास, आत्मश्रद्धा, आत्म त्याग, आत्मनियन्त्रण, आत्मनिर्भरता, मानव-प्रेम, जैसे गुणों को आत्मसात् कर ले। स्वामी विवेकानन्द ने स्पष्ट रूप से कहा है कि, 'सभी प्रकार की शिक्षा और अभ्यास का उद्देश्य 'मनुष्य निर्माण ही हो सारे प्रशिक्षणों का अन्तिम ध्येय मनुष्य का विकास करना ही है।'

आत्मविश्वास महानता का रहस्य है। इससे व्यक्ति में श्रद्धा भाव जागृत होता है तथा वह क्रियाशील बनता है। श्रद्धा के लिए आत्मत्याग, आत्मनियन्त्रण एवं आत्मनिर्भरता की आवश्यकता होती है। इससे व्यक्ति भौतिक सुखों के साथ-साथ आध्यात्मिक आनन्द की प्राप्ति करता है। आत्मविश्वास के महत्व को स्वामी विवेकानन्द ने अपने व्याख्यान में इस प्रकार स्पष्ट किया है- ''जो अपने आप में विश्वास नहीं करता, वह नास्तिक है।'' प्राचीन धर्मो में कहा गया है- ''वह नास्तिक है, जो ईश्वर में विश्वास नहीं करता..... विश्वास अपने आप में विश्वास, ईश्वर में विश्वास यही महानता का रहस्य है। यदि तुम पुराण के तैतीस करोड़ देवी देवताओं और विदेशियों द्वारा बतलाए हुए सब देवताओं में भी विश्वास करते हो, पर यदि अपने आप

* एस. एस. खन्ना महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश) भारत। E-mail : agni.mkumar@yahoo.com

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

में विश्वास नहीं करते, तो तुम्हारी मुक्ति नहीं हो सकती है। अपने आप में विश्वास करो, उस पर स्थिर हो और शक्तिशाली बनों।''

आधुनिक शिक्षा के उद्देश्य में हम जिसे चारित्रिक विकास के नाम से जानते है, स्वामी विवेकानन्द जी ने उसे ही मानव निर्माण का उद्देश्य कहा है। इसके अन्तर्गत धार्मिक, नैतिक व चारित्रिक विकास आया है। स्वामी जी ने विभिन्न प्रवृत्तियों की समष्टि तथा मन के समस्त झुकावों के योग को चरित्र की संज्ञा दी है। सुख और दुख दोनों ही अपनी छाप संसार में छोड़ जाते हैं और इन सब विभिन्न क्षणों की समष्टि ही मनुष्य का चरित्र कहलाता है। अच्छे चरित्र के लिए विचार, अभ्यास तथा इच्छाशक्ति का होना आवश्यक है, चरित्र गठन में विचारों की अहं भूमिका होती है। अतः मनुष्य विचारों के सम्बन्ध में सावधान रहे। स्वामी विवेकानन्द ने विचार की महिमा को इस प्रकार स्पष्ट किया है- ''जब मनुष्य इतने सत्कार्य एवं सत् चिन्तन कर चुकता है कि उसकी इच्छा न होते हुए भी उसमें सत्कार्य करने की एक अनिवार्य प्रकृति उत्पन्न हो जाती है, तब फिर यदि यह दुष्कर्म करना भी चाहे, तो इन सब संस्कारों का समष्टि रूप उसका मन उसे वैसा करने से तुरन्त रोक देगा। तब वह अपने सत्संस्कारों के हॉथ एक कठपुतली जैसा हो जाएगा। जब ऐसी स्थिति हो जाती है, तभी उस मनुष्य का चरित्र गठित या प्रतिष्ठित कहलाता है।''

अतः शिक्षा का उद्देश्य ऐसे चरित्र का गठन होना चाहिए जो सदैव और सभी अवस्थाओं में महान रहे। मनुष्य का प्रत्येक कार्य और विचार उसके चित्त पर एक प्रकार का संस्कार छोड़ जाता है और मनुष्य का चरित्र इन संस्कारों के समुदाय द्वारा ही नियमित होता है। यदि शुभ संस्कारों का प्राबल्य रहता है तो मनुष्य का चरित्र अच्छा होता है, और यदि अशुभ संस्कारों का प्राबल्य रहता है तो बुरा। मन में इस प्रकार के बहुत से संस्कार पड़ने पर वे इकट्ठे होकर आदत या अभ्यास के रूप में परिणित हो जाते हैं। अतः मनुष्य में अच्छी आदतों का ही निर्माण किया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त चरित्र गठन के लिए इच्छा शक्ति का होना भी आवश्यक है। स्वामी विवेकानन्द ने इच्छाशक्ति को सर्वशक्तिमान् माना है और स्पष्ट किया है कि, ''क्या तुम उसकी सर्वशक्तिमत्ता को अस्वीकार कर सकते हो? जिसने तुम्हें इतने ऊँचे तक उठाया, वह तुम्हें और भी ऊँचा ले जा सकती है। आवश्यकता है चरित्र की, इच्छाशक्ति के सबल बनाने की।''

अतः प्रत्येक व्यक्ति स्वयं अपने चरित्र का निर्माण करे। शिक्षा का ध्येय व्यक्ति को इस योग्य बनाने के लिए प्रेरित करना होना चाहिए।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

मजूमदार, श्री सत्येन्द्र नाथ -*विवेकानन्द चरित्र,* रामकृष्ण मठ, नागपुर
विवेकानन्द साहित्य -अद्वैत आश्रम मायावती अल्मोड़ा जन्मशती संस्कार
विवेकानन्द स्वामी - कर्मयोग, रामकृष्ण मठ, धन्तोली नागपुर
पाण्डेय, राम सकल -*विश्व के श्रेष्ठ शिक्षा शास्त्री,* विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा
अन्वेशिका, रेडियन जर्नल आफ टीचर एजूकेशन

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777
भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 10,3-4
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 18 अक्टूबर 2016

मम्मट के दृष्टिकोण में "काव्य के हेतु"

डॉ. मनीषा शुक्ला*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *मम्मट के दृष्टिकोण में "काव्य के हेतु"* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *मनीषा शुक्ला* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

कविता करने की शक्ति ही काव्य का वास्तविक कारण है, यदि व्यक्ति स्वयं उद्यत न हो तो उससे जबरदस्ती काव्य की रचना नहीं करवा सकते। अतः मम्मट काव्य के प्रयोजन की चर्चा करने के बाद काव्य के हेतु की चर्चा करते हैं। इस प्रकार काव्य तथा उसके उपयोगी विषयों में अभिरुचि उत्पन्न करने के लिए काव्य के प्रयोजनों का प्रतिपादन करने के बाद ग्रन्थकार काव्य के प्रयोजक हेतुओं का वर्णन इस कारिका में करते हैं -

शक्तिर्निपुणता लोकशास्त्रकाव्याद्यवेक्षणात्। काव्यज्ञशिक्षयाभ्यास इति हेतुस्तदुद्भवे।।३।।

कारिकाकार मम्मट ने न केवल काव्य शक्ति पर कारिका का निर्माण किया अपितु उसकी व्याख्या वृत्तियों के माध्यम से की है। प्रस्तुत शोध पत्र में काव्य की कारिका एवं वृत्ति के साथ ही काव्य प्रकाश के अंशों को ज्यों का त्यों प्रस्तुत किया गया है।

शक्तिः कवित्वबीजरूपः संस्कारविशेषः यां विना काव्यं न प्रसरेत्, प्रसृतं वा उपहसनीयं स्यात्। लोकस्य स्थावर जङ्गमात्मकस्य लोकवृत्तस्य, शास्त्राणां छन्दोव्याकरणाभिधानकोशकलाचतुर्वर्गगजतुरगखड्गादिलक्षणग्रंथानाम्, काव्यानां च महाकविसम्बन्धिनाम्, आदि ग्रहणादितिहासादीनां च विमर्शनाद् व्युत्पत्तिः। काव्यं कर्तुं विचारयितुं च ये जानन्ति तदुपदेशेन करणे योजने च पौनः पुन्येन प्रवृत्तिरिति त्रयः समुदिताः, न तु व्यस्ताः, तस्य काव्यस्योद्भवे निर्माणे समुल्लासे च हेतुर्न तु हेतवः।।[१]

१- कवित्व का बीजभूत संस्कार-विशेष (प्रतिभा या) शक्ति (कहलाती) है, जिसके बिना काव्य (निकलता) बनता ही नहीं है। अथवा (निकलने, तुकबन्दी के रूप में कुछ) बन जाने पर (भी) उपहास के योग्य होता है। २- लोक अर्थात् स्थावरजङ्गमरूप संसार के व्यवहार के, शास्त्र अर्थात् छन्द, व्याकरण, संज्ञा-शब्दों (अभिधान) के कोश (अमरकोश आदि), कला (अर्थात् भरत, कोहल आदि प्रणीत नृत्य-गीत आदि चौसठ प्रकार की कलाओं के प्रतिपादक लक्षण-ग्रन्थों), चतुर्वर्ग (अर्थात् धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के प्रतिपादक ग्रन्थ), हाथी-घोड़े (आदि के लक्षणों के प्रतिपादक शालिहोत्र आदि रचित ग्रन्थ) एवं खड्ग आदि के लक्षण ग्रन्थों और

* प्रधान सम्पादिका, अन्वीक्षिकी शोध समग्र पत्रिका, वाराणसी (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

महाकवि सम्बन्धी (अर्थात् महाकवियों द्वारा रचे गये) काव्यों के, आदि (पद के) ग्रहण से (सूचित) इतिहास आदि के पर्यालोचन से उत्पन्न व्युत्पत्ति (विशेष प्रकार का ज्ञान) तथा ३- जो काव्य (की रचना) करना और उसकी विवेचना करना जानते हैं उनके उपदेश के अनुसार (अपने आप नवीन श्लोकादि के) निर्माण करने और (प्राचीन कवियों के श्लोकों में) जोड़-तोड़ करने में बार-बार प्रवृत्ति (अर्थात् अभ्यास) ये तीनों मिलकर (समष्टिरूप से) अलग-अलग नहीं, उस काव्य के उद्भव अर्थात् निर्माण और विकास में कारण हैं। अलग-अलग तीन कारण नहीं होते हैं।

यहाँ ग्रन्थकार ने (१) शक्ति, (२) लोकव्यवहार, शास्त्र एवं काव्य आदि के पर्यालोचन से उत्पन्न व्युत्पत्ति तथा (३) काव्य की रचना-शैली और उसके गुण-दोषों के जानने वाले विद्वानों की शिक्षा के अनुसार अभ्यास इन तीनों की समष्टि की काव्य-निर्माण की योग्यता प्राप्त करने का कारण माना है।

काव्य हेतु के संदर्भ मम्मट प्रतिवादित व्याख्या के अतिरिक्त वामन प्रतिपादित व्याख्या भी दर्शनीय है -

वामन ने भी इसी प्रकार (१) लोक, (२) विद्या तथा (३) प्रकीर्ण इन तीनों को काव्य का अङ्ग, काव्य-निर्माण की क्षमता प्राप्त करने का साधन बतलाया है -

[२]'लोको विद्या प्रकीर्णञ्च काव्याङ्गानि १, ३, १।'

[३]'लोकवृत्तं लोकः १, ३, २।'

[४]'शब्दस्मृत्यभिधानकोश-छन्दोविचिति-कला-कामशास्त्र-दण्डनीतिपूर्वा विद्याः १, ३, ३।'

[५]'लक्ष्यज्ञत्वमभियोगो वृद्धसेवावेक्षणं प्रतिभानमवाधानञ्च प्रकीर्णम् १, ३, ११।'

इस प्रकार वामन ने काव्य के कारणों का अधिक विस्तार के साथ विवेचन किया है। प्रथम अधिकरण के तीसरे अध्याय के २० सूत्र वामन ने इन काव्याङ्गों के निरूपण करने में व्यय किये हैं जिनको यहाँ मम्मटाचार्य ने केवल एक कारिका में कह दिया है। मम्मट ने वामन के लोक तथा विद्या दोनों को 'लोकशास्त्रकाव्याद्यवेक्षणात् निपुणता' के अन्तर्गत कर लिया है। 'प्रकीर्ण' में से 'शक्ति' को अलग कर दिया है और 'वृद्ध-सेवा' का 'काव्यज्ञशिक्षयाभ्यासः' में अन्तर्भाव करके मम्मट ने वामन के समान आठ काव्याङ्गों का मुख्य रूप से तीन काव्य-साधनों के रूप में प्रतिपादन किया है। देखा जाय तो कम अथवा अधिक किन्तु सभी व्याख्याकारों के विचार कहीं न कहीं मेल अवश्य खाते हैं। भामह का प्रतिपादन देखें -

वामन के पूर्ववर्ती आचार्य भामह ने भी काव्य-साधनों का निरूपण लगभग उसी प्रकार से किया है। उन्होंने लिखा है- [६]*शब्दश्छन्दोऽभिधानार्था इतिहासाश्रयाः कथाः। लोको युक्तिः कलाश्चेति मन्तव्या काव्यगैरमी।।९।। शब्दाभिधेये विज्ञाय कृत्वा तद्विपुपासनाम् । विलोकयान्यनिबन्धांश्च कार्यः काव्यक्रियादरः।।१०।।*

इन काव्य-साधनों की तुलना करने से प्रतीत होता है कि काव्य-साधन सभी आचार्यों की दृष्टि में लगभग एक-से ही हैं। परन्तु भिन्न-भिन्न आचार्यों ने उनके पौर्वापर्य अथवा विभाग आदि में थोड़ा-बहुत भेद करके उनका अलग-अलग ढंग से निरूपण कर दिया है। तत्त्वतः उनके विवेचन में अधिक भेद नहीं है।।३।

स्रोत

[१]*काव्य प्रकाश* -आचार्य मम्मट, कारिका-३, प्रथम उल्लास, पृष्ठ संख्या १६-१

[२]वामन-*काव्यालङ्कारसूत्र,* १,३, १-२-३ और ११

[३]वही

[४]वही

[५]वही

[६]भामह- *काव्यालङ्कार, १, ९-१०*

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777
भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 10,5-6
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 04 अक्टूबर 2016

प्लेटो :शिक्षा का महत्व

डॉ. मनोज कुमार अग्निहोत्री*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *प्लेटो :शिक्षा का महत्व* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र का लेखक मैं *मनोज कुमार अग्निहोत्री* घोषणा करता हूँ कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देता हूँ।

सारांश

प्लेटो एक महान् दार्शनिक, राजनीतिक, शिक्षाविद् एवं सामाजिक कार्यकर्ता थे। प्लेटो के अनुसार मनुष्य का सस्तिष्ट सदैव सक्रिय है अतः वातावरण में विद्यमान विषय उसके सम्मुख प्रस्तुत नहीं होते वरन वह उनके प्रति आकर्षित होते हैं और उनके अनुरूप अपने आप को ढालने का प्रयास करता है। प्लेटो ने आदर्श राज्य के निर्माण हेतु शिक्षा को महत्व पूर्ण साधन के रूप में मान्यता प्रदान की है। शिक्षा द्वारा नैतिक सद्गुणों पर जोर दिया तथा उदार वादी शिक्षा को समर्थन के साथ-साथ पूर्ण राजकीय नियंत्रण का समर्थन किया। प्लेटो की शिक्षा जीवन पर्यन्त चलती रहती है, जिसका अन्त सद्गुणों की प्रगति के रूप में होता है।

प्लेटो के राजनीतिक दर्शन में शिक्षा का महत्वपूर्ण स्थान है। उसकी मान्यता है कि राज्य प्रथम और सर्वोत्तम शिक्षण संस्थान हैं। श्रेष्ठ शिक्षा प्रणाली द्वारा कोई भी सुधार सम्भव हो सकता है। यदि राज्य शिक्षा की उपेक्षा करता है तो उसका महत्व नगण्य हो जाता है, चाहे वह अन्य कितने भी कार्य क्यों न करे। इसलिए डर्निग ने कहा कि प्लेटो के राज्य का प्रमुख कार्य शैक्षणिक है। प्लेटो के शिक्षा सिद्धान्त का महत्व निम्नलिखित बातों से स्पष्ट है :

क) शिक्षा का सिद्धान्त न्याय सिद्धान्त का तार्किक परिणाम; प्लेटो ने अपने आदर्श राज्य को न्याय सिद्धान्त पर आधारित किया है। इस सिद्धान्त की प्रतिष्ठा के एक प्रमुख साधन के रूप में भी उसने शिक्षा के महत्व को स्वीकार किया है। न्याय सिद्धान्त के अनुसार राज्य के प्रत्येक नागरिक की उसकी क्षमता एवं प्रशिक्षण के आधार पर कार्य क्षेत्र में कार्य हुए श्रेष्ठता को प्राप्ति के लक्ष्य की ओर निरन्तर गतिशील रहना चाहिए। ''एक सामान्य शिक्षा प्रणाली ही एक विशिष्ट कार्य के लिये वह प्रशिक्षण देगी, तथा इस कार्य के निःस्वार्थ भाव से सम्पादन करने के लिए वह प्रेरणा देगी जो कि न्याय की आवश्यकता है'' प्लेटो के शब्दों में, ''वास्तव में एक ''श्रष्ठ शिक्षा ही न्याय सिद्धान्त की सर्वश्रेष्ठ अभिरक्षक होगी।''

ख) नागरिकों को सद्गुणी बनाने के लिए शिक्षा की आवश्यकता; प्लेटो की शिक्षा सिद्धान्त उसकी मूलभूत मान्यता 'सद्गुण ही ज्ञान है'' पर आधारित है। उसका अभिप्राय यह है कि संसार में कुछ वस्तुनिष्ठ सत्य है जिसका ज्ञान आन्तरिक अनुभूति कल्पना या भाग्य से नहीं

* एस. एस. खन्ना महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश) भारत। E-mail : agni.mkumar@yahoo.com

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

होता, अपितु विवेक पूर्ण या तर्क संगत अनुसंधान से हो सकता है। यदि सद्गुण ही ज्ञान है तो इसे शिक्षा द्वारा ग्रहण किया जा सकता है, और इसलिए नागरिकों को सद्गुणी बनाने के लिए श्रेष्ठ शिक्षा का प्रबन्ध करना अपरिहार्य है।

ग) शिक्षा द्वारा प्राकृतिक क्षमता का विकास; सामान्यतया दो तत्वों प्रकृति तथा परिपोषण की, व्यक्ति के चरित्र निर्माण हेतु समान रूप से अनिवार्यता स्वीकार की जाती है। यद्यपि परिपोषण मानव प्रकृति का निर्माण नहीं कर सकती तथापि समुचित परिपोषण के अभाव में मानव प्रकृति के विकृत होने की अत्यधिक सम्भावना रहती है। साथ ही उसकी उपस्थिति होने पर ही मानव प्रकृति के अच्छे होने की आशा की जा सकती है। शिक्षा वह परिपोषण है, जिसके श्रेष्ठ तथा निकृष्ट होने पर मानव की प्राकृतिक क्षमता का समुचित विकास अथवा हास होता है।

घ) शिक्षा द्वारा आत्म चक्षु को प्रकाशोन्मुख करना; नेटल शिप का कथन है कि प्लेटो के अनुसार शिक्षा का ध्येय आत्म चक्षु को प्रकाशोन्मुख करना है। आत्मा में अनेक श्रेष्ठ वस्तुओं का आवास है इन्हीं को प्रकाशोन्मुख करना का है। आत्मा में अनेक श्रेष्ठ वस्तुओं का आवास है इन्हीं आत्मनिहित श्रेष्ठ वस्तुओं का बाहर लगाकर उन्हें सही दिशा में गतिमान करना प्लेटो के अनुसार शिक्षा का कार्य है। शिक्षा का ऐसा वातावरण तैयार करती है। जो आत्मा का अपने विकास के प्रत्येक स्तर पर सहायता करती है। शिक्षा के द्वारा आत्मा पल्लवित पुष्पित और सुरभित होती है।

ड़) शिक्षा का सामाजिक पहलू; प्लेटो की शिक्षा योजना का एक सामाजिक पहलू भी है। एक सामाजिक प्रक्रिया के रूप में शिक्षा व्यक्ति को समष्टि के साथ अपना समन्वय बैठाने से सहायता देगी। यह व्यक्ति में वह सत्यवादिता उत्पन्न करती है, जो उसमें आज्ञाकारिता तथा आत्म संयम आदि समष्टि हितकारी गुणों का विकास करती है। उसे छल, प्रपंच, पाखण्ड आदि से बचाकर उसका समुचित समाजीकरण करने का शिक्षा के अतिरिक्त दूसरा सफल साधन और कोई प्रतीत नहीं होता। शिक्षा के कारण समाज को विभिन्न इकाइयाँ सामाजिक चेतना के साथ एकरूपता स्थापित कर, सामाजिक हित की आवश्यकताओं को पूरा करने में जुट जाती है। प्लेटो ने इसे व्यक्ति के मानसिक रोगों का नैमिक उपचार भी माना है। प्रो0 बार्कर के शब्दों में ''शिक्षा सामाजिक सदाचार का मार्ग है'' सामाजिक सफलता का नहीं। यह सत्य तक पहुँचने का मार्ग है।

घ) शिक्षा का राजनीतिक पहलू - दार्शनिक शासक का निर्माण; प्लेटो के अनुसार शिक्षा विषयक कार्य राज्य के कार्यो में प्रमुख तथा महत्वपूर्ण स्थान रखता है। शिक्षा का महत्व इस बात में है कि यह नागरिकों को उनके राज्य के नैतिक जीवन में भाग लेने हेतु योग्य बनाती है। आदर्श राज्य में जो सर्वोच्च स्थान प्लेटो ने दार्शनिक शासन को प्रदान किया है एवं संरक्षक वर्ग को उत्पादक वर्ग की तुलना में जो महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ है उसका आधार शिक्षा ही है। प्लेटो का दार्शनिक शासक सर्वोच्च एवं सर्वश्रेष्ठ स्थान पर इसलिए प्रतिष्ठित है कि उसकी शासन करने की प्राकृतिक क्षमता का शिक्षा के द्वारा समुचित रूप में विकास हो चुका है। वार्क के शब्दों में, ''दार्शनिक शासक का शासन वास्तव में उसकी शिक्षा योजना का निर्गम एवं परिणाम है।''

छ) शिक्षा का दार्शनिक दृष्टि से महत्व; व्यक्तिगत, सामाजिक, तथा राजनीतिक महत्व के अतिरिक्त शिक्षा का एक दार्शनिक महत्व भी है। शिक्षा का अन्तिम लक्ष्य उस सत्य की खोज करना है जो काल तथा स्थान की पहुँच से बहुत दूर है, जो सृष्टि को सभी वस्तुओं का मूल कारण है। जिसकी ज्योति से समस्त चराचर प्रकाशित होता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

विश्व के श्रेष्ठ शिक्षा शास्त्री -पाण्डेय, डॉ. राम सकल

पाश्चात्य दार्शनिक प्लेटो से संबंधित दर्शन- ग्रन्थ

- *दि फिलासफी ऑफ प्लेटो*
- *फ्रीतो एण्ड फीड़ो*
- *प्लेटो का प्रजातंत्र*
- *प्लेटो दि मैन एण्ड हिज वर्क*

ग्रीक दर्शन, प्रयाग पुस्तक सदन, इलाहाबाद -त्रिपाठी, डॉ0 सी0एल0

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 10,7-10
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 23 अक्टूबर 2016

ऋग्वेद एवं कुमारसम्भवम् में वर्णित अग्नि देवता का स्वरूप

डॉ. सुमन दुबे*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *ऋग्वेद एवं कुमारसम्भवम् में वर्णित अग्नि देवता का स्वरूप* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *सुमन दुबे* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

ऋग्वेद एवं महाकवि कालिदास विरचित कुमारसम्भवम् महाकाव्य में अग्नि देवता के स्वरूप का वर्णन किया गया है। महाकवि कालिदास भारतीय संस्कृति के संवाहक हैं। उन्होंने ऋग्वेद में वर्णित अग्नि देवता के स्वरूप का अनुकरण अपनी कृति में किया है। कालिदास ने पौराणिक आधार पर भी अग्नि के स्वरूप का वर्णन किया है। वैदिक देवताओं में अग्नि का महत्त्वपूर्ण स्थान है। सम्पूर्ण सृष्टि का संचालन अग्नि से ही होता है। ऋग्वेद का प्रथम मंत्र ही अग्नि देवता को समर्पित है- *अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्। होतारम् रत्नधातमम।।* अर्थात् यज्ञ के पुरोहित, दीप्तिमान्, देवों को आहान करने वाले ऋत्विक् और रत्नधारक अग्नि की ऋषि स्तुति करता है। इस मंत्र में अग्नि के पौरोहित्य आह्वानकता, दैदीप्यता एवं रत्नधारकता ये चारों गुण एक साथ एक मंत्र में ही वर्णित है। इसलिए इस मंत्र को ऋग्वेद में अग्नि देवता का सारभूत मंत्र कहा जा सकता है। अग्नि ने सूर्य-रूप ऋतुओं का विभाग करके पृथिवी के सारे प्राणियों के हित के लिए पूर्व दिशा का यथाक्रम निष्पादन किया अर्थात् सूर्य-काल (ऋतु) और दिक्-दोनों को बनाने वाला है।[2]

अग्नि का मानव जीवन से घनिष्ट सम्बंध है। सम्पूर्ण गृहकृत्य के लिए अग्नि आवश्यक है। अग्नि सूर्य रूप से आकाश में और गार्हपत्यादि रूप से पृथिवी पर वर्तमान हैं। अग्नि ने सारे शस्यों में रहकर, उन्हें पकाने के लिए उनमें प्रवेश किया है। वे ही वैश्वानर अग्नि दिन और रात्रि में हमें शत्रु से बचावें।[3] ऐसी प्रार्थना की गई है। अग्नि एक ऐसा देवता है जो मनुष्यों के जन्म से मृत्यु पर्यन्त उसका साथ देता है। अग्नि को सारे मनुष्यों का गृहपति कहा गया है।[4] मनुष्य प्रतिगृह में अग्नि का संस्थापन करता है।[5]

अग्नि के उत्पत्ति काष्ठ, पाषाण, जल, वैद्युताग्नि से मानी गई है। काष्ठों से उत्पन्न दावाग्नि, जलों से उत्पन्न वाडवाग्नि, एवं द्युलोक से उत्पन्न वैद्युताग्नि का भी वर्णन है। यद्यपि जलों से अग्नि की उत्पत्ति नहीं होती है तथापि वाडवाग्नि को ही सम्भवतः अप से प्रादुर्भूत अग्नि माना जाता है। कुमा. में कालिदास ने भगवान शंकर के संभोग की उपमा बड़वानल से की

* [352/ 158] अलोपीबाग, इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

है। जैसे समुद्र के जल में रहने पर भी बड़वानल की प्यास कभी नहीं बुझा पाती है- *न सुरतोसुखेभ्यछिन्नतृष्णो बभूव ज्वलन इव समुद्रान्तर्गतस्तजलौघैः।*

विद्युत शक्ति की उत्पत्ति भी जलों के द्वारा होती है। बादलों के पारस्परिक टकराव से उत्पन्न आकाशीय विद्युत भी जलों से ही उत्पन्न माना जा सकता है, क्योंकि बादल भी तो जलों के ही रूप हैं।

ऋग्वेद के प्रथम मण्डल में अग्नि को दस युवतियों से उत्पन्न भी बताया गया है। ये दस युवतियाँ मनुष्यों के हाथों की दसों अगुलियाँ ही हैं।[7] अग्नि को 'सहसः पुत्र,[8] या 'शवसा सूनुः' (बलस्य पुत्रः)[9] अग्नि को 'सहसः पुत्र, भी कहा गया है क्योंकि अग्नि को उत्पन्न करने के लिए सहस अर्थात् शक्ति भी लगानी पड़ती है। अग्नि का धर्म है प्रकाशित होना। वह अङ्गारमय है, प्रकाशमय है। वे भास्वरज्वालों वाले हैं। उनका वर्ण भास्वर हैं। वे हिरण्यरूप हैं। वे सूर्य की भाँति चमकते हैं। उनकी प्रभा, उषा, सूर्य एवं विद्युत जैसी है।[10] अग्नि उत्तम धन प्रदाता हैं। अग्नि के माध्यम से यजमान को पुष्टि, यश और वीर पौत्रादि की प्राप्ति होती है। यह यज्ञों का रक्षक और सत्य का प्रकाशक है। कर्मफल को प्रदान करना भी अग्नि का ही कार्य है। अग्नि स्वयं प्रकाशवान होने से रात्रि को प्रकाशित करता है।[11]

पृथिवी स्थानीय देवताओं में अग्नि अग्रणी है। तैत्तिरीय ब्राह्मण में 'अग्निरग्रप्रथमोदेवतानामिति'[12] अर्थात् अग्नि अग्रणी देवताओं में प्रथम है। ऐतरेय ब्राह्मण में अग्नि को देवताओं का मुख कहा गया है- 'अग्निर्वैदेवानामुखम्।[13] अर्थात् अग्नि देवताओं का मुख है। अग्नि में जो आहुति प्रदान की जाती है वह समस्त देवताओं को प्राप्त होती है।

महा. कालिदास ने अपनी कृतियों में अनेक वैदिक देवताओं का वर्णन किया है। जिनमें इन्द्र, अग्नि, वायु, अप, उषा, रात्रि, चन्द्रमा, सूर्य आदि प्रमुख हैं। कुमा. में कालिदास ने मुख्य रूप से अग्नि देवता का वर्णन किया है। इसमें दो अरणियों के संघर्षण से अग्नि उत्पन्न होती है उसी प्रकार शिशु रूप में कार्तिकेय की उत्पत्ति होती है। अग्नि की उत्पत्ति में ऊपर की अरणि पति और नीचे की अरणि पत्नी होती है। उसी प्रकार कार्तिकेय शिव-पार्वती के सम्भोग से शिशु रूप में उत्पन्न हुए।[14] ऋग्वेद के प्रथम मंडल में आहारादि के पाक द्वारा मनुष्यों के पोषक और यज्ञ-शोभाकारी अग्नि को अरणि द्वारा नवशिशु की तरह उत्पन्न करते हैं।[15]

जिस प्रकार एक पिता अपने पुत्र के लिए कल्याण-भावना रखता है। उसी प्रकार अग्नि भी कल्याणकारी है। कुमा. के दशम सर्ग में अग्नि को सब प्राणियों के भीतर रहने वाला बताया गया है उसी से सब प्राणी उत्पन्न होते हैं। अग्नि ही संसार को जीवन और प्राण देने वाला है। अग्नि ही संसार का भला करने वाला और सब कुछ सहन करने में समर्थ है।[16] ऋग्वेद प्रथम मण्डल में अग्नि को प्रकट होकर अपने कर्म के द्वारा सम्पूर्ण जगत को व्याप्त करने वाला बताया गया है। वह देवों के पुत्र होकर भी उनके पिता हैं, क्योंकि वह पुत्र के समान देवों के दूत हैं और पिता के समान देवों को हव्य प्रदान करते हैं।[17]

ऋग्वेद प्रथम मण्डल में अग्नि और धूम का साहचर्य देखने को मिलता है। क्योंकि अग्नि और धूम का साहचर्य शाश्वत् है- 'यत्र धूम्रः तत्राग्निरिति।'[18] धूम अग्नि का लिंङ्ग अर्थात् प्रज्ञापक है। ऋषि कहता है- मैंने पास ही सूखें गोबर से उत्पन्न धूएँ को देखा। चारों दिशाओं में व्याप्त निकृष्ट धूम के बाद अग्नि को देखा।[19] ऋग्वेद चतुर्थ मंडल में अग्नि को प्रगल्भ, होमनि -पादक, हर्षयिता और प्रकृष्ट ज्ञानविशिष्ट गुण संयुक्त तथा यज्ञ में प्रजाओं के मध्य स्थापित वर्णित किया है। वे उदित सूर्य की तरह ऊर्ध्वमुख होते है; और स्तम्भ की तरह द्युलोक के ऊपर धूम को धारण करते हैं।[20] ऋग्वेद के पंचम मंडल में हव्यवाहक अग्नि के अन्तरिक्षव्यापी धूएं को उसका केतु स्वरूप प्रज्ञापक या अनुमापक वर्णित हैं।[21] ऋग्वेद के षष्ठ मण्डल में धूम युक्त अग्नि का स्वरूप इस प्रकार है- जो अग्नि दीप्ति-द्वारा स्वर्ग और पृथिवी को पूर्ण करते हैं, जो धुँए के साथ आकाश में उठते हैं, वही दीप्तिमान् और अभीष्ट वर्षी अग्नि अँधेरी रात में तम को नष्ट करते देखे जाते हैं। दीप्तिमान और अभीष्ट वर्षों में ही अग्नि रात्रियों के ऊपर अधिष्ठान करते हैं।[22] सप्तम् मण्डल में ऋषि यह कामना करता है अग्नि आज हमारी समिधा को ग्रहण करे तथा यज्ञ के निमित्त धुँआ देते हुए अतीव दीप्ति होवे। तप्त ज्वाला माला से अन्तरिक्ष का तट-प्रदेश स्पर्श करे और सूर्य की किरणों के साथ मिल जाये।[23]

कुमारसम्भवम् में भी अग्नि और धुएं का मनोहर वर्णन है। कुमार सम्भवम् के सातवें सर्ग के श्लोक 79-83 तक में विवाह के समय अग्नि के फेरे लेते हुए शिव-पार्वती की शोभा ऐसी लग रही है मानों रात और दिन दोनों मिलकर सुमेरू पर्वत का फेरा लगा रहें हों। चलते समय एक दूसरे को स्पर्श के कारण दोनों मन ही मन आनन्द लेते हुए अग्नि का फेरा लगा रहे

थे। जब तीन बार जलती हुई अग्नि का फेरा लगा रहे थे तब पुरोहित भी अग्नि में धान की खीलों का हवन करते चल रहे थे। पार्वती ने पुरोहित के कहने से खील के होम से उठे हुए सुगन्धित धुँएं को अपने हाथ की अँजली से उठाकर सूँघां वह उनके गाल के पास पहुँच कर क्षण भर के लिए उनके कानों का कर्णफूल बन जाता था। उस हवन के गरम धुँएं से पार्वती के गाल कुछ लाल हो गये, अंजन इधर-उधर फैल गया और कानों पर धरे जवे भी कुछ धुँधले पड़ गये। तब पुरोहित ने पार्वती से कहा, यह अग्नि तुम्हारे विवाह का साक्षी है।[24] कुमारसम्भवम् सर्ग-7, श्लोक 79-83 विवाह का साक्षी-अग्नि धुँएं का वर्णन स्वाभाविक है। कुमारसम्भवम् के प्रथम सर्ग के 51वें श्लोक में यह वर्णन है कि नारद की भविष्यवाणी से पार्वती के पिता हिमालय इतने निश्चिन्त हो गये कि उन्होंने दूसरा वर खोजने की चिन्ता ही छोड़ दी क्योंकि मन्त्र से दी हुई हवन सामग्री को अग्नि को छोड़कर और कोई नहीं ले सकता वैसे ही महादेव को छोड़कर पार्वती को और कौन ग्रहण कर सकता है। अग्नि में छोडी गयी हवन सामग्री का वर्णन उपयुक्त है। हिमालय की चोटी पर भगवान शिव ने अपनी ही दूसरी मूर्ति अग्नि को समिधा से जगाकर न जाने किस फल की इच्छा से तप करना प्रारम्भ कर दिया था। शिव जी को पति के रूप में प्राप्त करने की इच्छा से पार्वती ने कठोर तपस्या प्रारम्भ कर दिया। अग्नि के दाहकत्व की प्रबलता और पार्वती का मनोहारी वर्णन है। गर्मी के दिनों में अपने चारों ओर आग जलाकर उसी के बीच में खड़ी रहने लगीं।[25] अग्नि के सानिध्य में पार्वती ने शिव जी को पाने के लिए घोर तपस्या की।

कुमारसम्भवम् के नवम् सर्ग में संभोग-सुख में अग्नि के द्वारा बाधा पड़ जाने पर पार्वती ने क्रोधित होकर अग्नि को शाप दे दिया- जाओ, आज से तुम पवित्र-अपवित्र सभी वस्तुओं को खाया करोगे और संसार की वस्तुओं को जलाने का भयानक कार्य करोगे, कोढ़ी हो जाओगे और सदा धुँएं से भरे रहोगे।[26] जिस अग्नि की दाहकता में उन्होंने शिव हेतु तप किया उसी अग्नि के बाधक बनने पर उसे पार्वती ने शाप भी दिया। प्रस्तुत श्लोक में जो शाप पार्वती ने अग्नि को प्रदान किया वह तो सम्पूर्ण संसार के लिए वरदान सिद्ध हो गया। यदि अग्नि में यह गुण नहीं होता तो यह संसार प्रदूषण मुक्त कैसे हो पाता। कुमारसम्भवम् के दूसरे सर्ग में कालिदास ने वर्णन किया है कि तारकासुर ने यज्ञ में यजमान के द्वारा देवताओं को प्रदान की गई आहुति को अग्नि के मुख से छीन लिया।[27] तारकासुर को मारने में स्वयं ब्रह्मा और विष्णु भी अपने को असमर्थ मानते है।[28] विष्णु के द्वारा फेका गया चक्र उसके गले से टकराने पर मानों चिनगारियों की माला पहना हुआ लगता है। ऐसे में केवल कार्तिकेय के जन्म के द्वारा देवताओं का संकट समाप्त हो सकता है।[29] कुमारसम्भवम् के दूसरे सर्ग में पर्णकुटियों के बीच आँगन में आते हुए हिरणों से सींचे हुए जड़ वाले हरे-भरे पौधों से लौटकर आती हुई सन्दर दुधारू गौओं से और हवन की जाती हुई अग्नि से ये आश्रम सुहावने लगते हैं।[30] अग्नि के कारण पर्णकुटियाँ सौन्दर्यमयी हो जाती हैं।

कुमारसम्भवम् के अष्टम् सर्ग के इक्तालीसवें श्लोक में सूर्य की किरणों की गर्मी पी जाने वाले और सहस्रों के झुण्ड में रहने वाले बालखिल्य आदि ऋषि इस समय सूर्य के रथ के घोड़ों को भला लगने वाला सामवेद गा-गाकर उस सूर्य की स्तुति कर रहे हैं जिन्होंने इस समय अपना तेज अग्नि को सौंप दिया हैं।

ऋग्वेद में अनेक स्थानों पर अग्नि को देवताओं का दूत कहा गया है, वह देवताओं का प्राचीन दूत है- 'देवैः दूत्यम्, अग्निदूतम्, देवाः प्रत्नं दूतम् इत्यादि। इसी प्रकार कुमारसम्भवम् में इन्द्र ने अग्नि को दौत्यकर्म सौंपा है। कालिदास ने प्राकृतिक उपादानों के पहले भी 'मेघदूतम्' गीतिकाव्य में मेघ को दूत बनाया है।

इस प्रकार ऋग्वेद में तथा महाकवि कालिदास प्रणीत कुमारसम्भवम् महाकाव्य में अग्नि देवता उनके स्वरूप और सौन्दर्य का वर्णन प्राप्त होता है। कुमारसम्भवम् में शिव पुराण के आधार पर भी अग्निदेवता का स्वरूप-सौन्दर्य शिव-पार्वती की कथा के माध्यम से दृष्टिगोचर होता है।

ग्रन्थ सूची

[1]*ऋग्वेद संहिता,* मं. 1 अ.1 सू. 1मं.1

[2]*ऋग्वेद संहिता,* मं. 1 अ.15 सू. मं. 3

[3]*ऋग्वेद संहिता,* मं. 1 अ. 15 सू. 99 मं.2

[4]*ऋग्वेद संहिता,* मं. 1 अ. 15 सू. 99 मं. 4
[5]ऋग्वेद संहिता मं. 5 अ. 1 सू. 11 मं. 4
[6]*कुमारसम्भवम्,* सर्ग-8, श्लोक संख्या 91
[7]*ऋग्वेद संहिता,* मं. 1 अ. 15 सू. 95 मं. 1(दशेमंत्वष्टुर्जनपन्तगर्भमतन्द्रासोयुवतयोविभृत्रम्। तिग्मानीकस्वयशसंजनेषुविरोचमानंपरिषीनयन्ति।।)
[8]*ऋग्वेद संहिता,* मं. 1 अ. 6 सू. 26 मं. 10
[9]*ऋग्वेद संहिता,* मं. 1 अ. 6 सू. 27 मं. 2
[10]*ऋग्वेद संहिता,* मं. 10 अ. 8 सू. 91 मं. 4,5
[11]*ऋग्वेद संहिता,* मं. 10 अ. 7 सू. 88 मं. 2
[12]*तैतिरीय ब्राह्मण,* 2.4.3
[13]*ऐतरेय ब्राह्मण,* 1. 4
[14]*कुमारसम्भवम्,* सर्ग, श्लोक
[15]*ऋग्वेद संहिता,* मं. 5 अ. 1 सू. 9 मं. 3
[16]*कुमारसम्भवम्,* सर्ग-10, श्लोक संख्या 21, 22, 23
[17]*ऋग्वेद संहिता,* मं. 1 अ. 12 सू. 68 मं. 1-5
[18]*तर्कभाषा,* 1 अ. 12 सू. 69 मं. 1-5
[19]*ऋग्वेद संहिता,* मं. 1 अ. 22 सू. 164 मं. 43
[20]*ऋग्वेद संहिता,* मं. 4 अ. 1 सू. 6 मं. 2
[21]*ऋग्वेद संहिता,* मं. 5 अ. 1 सू. 11 मं. 3
[22]*ऋग्वेद संहिता,* मं. 6 अ. 4 सू. 48 मं. 6
[23]*ऋग्वेद संहिता,* मं. 6 अ. 9 सू. 2 मं. 1
[24]*कुमारसम्भवम्,* सर्ग -7, श्लोक संख्या 79-83
[25]*कुमारसम्भवम्,* सर्ग -1, श्लोक संख्या 51, 57
[26]*कुमारसम्भवम्,* सर्ग -9, श्लोक संख्या 9-16
[27]*कुमारसम्भवम्,* सर्ग -2, श्लोक संख्या 46
[28]*कुमारसम्भवम्,* सर्ग -2, श्लोक संख्या 49
[29]कुमारसम्भवम्, सर्ग -6, श्लोक संख्या 60
[30]कुमारसम्भवम्, सर्ग-6, श्लोक संख्या 38
[31]*कुमारसम्भवम्,* सर्ग -8, श्लोक संख्या 41

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 10,11-14
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 23 अक्टूबर 2016

भारतीय उच्च शिक्षा की चुनौतियाँ

श्रुति विग*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *भारतीय उच्च शिक्षा की चुनौतियाँ* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *श्रुति विग* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

सारांश

पिछले दो दशकों में भारतीय उच्च शिक्षा का बहुत तेज गति से विस्तार हुआ है। यह विकास मूल्यतः निजी क्षेत्र की पहल व योगदान के कारण हुआ। परन्तु यह विकास भी नियोजित व पूर्ण रूप से नहीं हो सका। भारतीय उच्च शिक्षा कई प्रकार के दोषों से युक्त है जिसके फलस्वरूप यह ऐसे स्नातकों की भीड़ का उत्पादन करती है जो अपना जीविकोपार्जन भी नहीं कर पाते। विभिन्न प्रकार के उत्पादन एवं सेवा क्षेत्रों में प्रशिक्षित मानव शक्ति की कमी है। अनुसंधान की गुणवत्ता निम्न होती जा रही है। संवर्द्धन तथा मान्यता से जुड़ी समस्यायें, वित्त की समस्या, आधारिक संरचना एवं पाठ्यचर्या की समस्या जैसे कई पक्ष है जिनके कारण भारतीय उच्च शिक्षा की गुणवत्ता में गिरावट आई है। प्रभावशाली विकास के बावजूद उच्च शिक्षण के बहुत ही कम ऐसे संस्थान है जो उच्च कोटी के माने जाते हैं। इस लेख में भारतीय उच्च शिक्षा की समस्याओं एवं चुनौतियों पर प्रकाश डाला गया है तथा कुछ सुझाव दिये गये हैं ताकि उच्च शिक्षा में सुधारात्मक कार्य किये जाए जिससे यह सभी युवाओं की पहुँच में हो, और उन्हें देश की उन्नति मे अपना कर्त्तव्य निभाने योग्य बनाया जा सके।

प्रस्तावना

भारतीय उच्च शिक्षा विश्व की सबसे प्राचीन एवं विशाल प्रणाली मानी जाती है। वैदिक शिक्षण प्रणाली में गुरूकुल, बौद्धिक शिक्षण प्रणाली में विहार और इस्लामिक शिक्षण प्रणाली में मखतब एवं मदरसों के द्वारा शिक्षण का कार्य किया जाता था। अंग्रेजों के शासनकाल में पश्चिमी एवं अंग्रेजी शिक्षा का उद्‌भव हुआ और उच्च शिक्षा को नई दिशा मिली। 1850 ई0 तक 27 कालेज स्थापित हो चुके थे और 1857 ई0 में 3 विश्वविद्यालयों की स्थापना की गई। 1947 ई0 तक 19 विश्वविद्यालयों एवं 100 से

* अतिथि प्रवक्ता, शिक्षाशास्त्र, जगत तारण गर्ल्स इण्टर कॉलेज, इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित, सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

अधिक कालेजों की स्थापना की गई।[1] स्वंतत्रता के पश्चात् इसकी गति और तीव्र हो गई। सन् 1980 में भारत में कुल 132 विश्वविद्यालय और 4738 कालेज थे जो कि वर्तमान समय में 18000 के ऊपर हो चुके हैं।

सबसे प्राचीन और विशालतम संगठन एवं प्रणाली होने के बावजूद भारतीय उच्च शिक्षण संस्थान विश्व के श्रेष्ठ शिक्षण संस्थानों में अपना स्थान नहीं बना पाया है। यह दुखःद एवं चेताने वाली बात है। यह दर्शाता है कि हम कहीं न कहीं गलत दिशा में जा रहे हैं।

भारतीय उच्च शिक्षा की चुनौतियाँ

- स्वतंत्रता पश्चात भारतीय उच्च शिक्षा में तीव्र गति से प्रगति हुई परन्तु इसके विकास, पहुँच, वितरण एवं फैलाव में एक असमानता सी अभी भी है। दादर, नगर हवेली, लक्षद्वीप और राष्ट्र के कुछ पिछडे एवं दुर्गम स्थानों में उच्च शिक्षण संस्थान स्वतंत्रता के 70 वर्ष पश्चात भी नहीं हैं या न के बराबर हैं। दूसरी ओर कुछ क्षेत्र ऐसे हैं जो शिक्षा के गढ़ या केन्द्र बन चुके हैं, जैसे- हरियाणा एवं बंगलोर जहाँ बड़ी संख्या में उच्च शिक्षण संस्थान है जो विविध प्रकार के कोर्स एवं प्रशिक्षण उपलब्ध कराते हैं।
- बड़ी संख्या में हमारे छात्र विदेशों में उच्च शिक्षा ग्रहण करने जाते हैं। जिससे उन्हें विश्व प्रसिद्ध एवं श्रेष्ठ शैक्षिक संस्थानों में पढ़ने का मौका मिलता है, साथ ही नया एवं उत्तम अनुभव भी। उन होनहार युवाओं को विदेशों में ही रोजगार भी मिल जाता है। हमारी शिक्षण व्यवस्था इन होनहार बच्चों को उनकी आवश्यकता एवं रूचि के अनुसार शैक्षिक अवसर एवं प्रोत्साहन नहीं दे पाती और ये युवा विदेशों में पलायन कर जाते हैं। विश्व में बड़े पैमाने पर दूसरे राष्ट्रों के श्रेष्ठ विश्वविद्यालय बाहर के देशों में अपने केन्द्र स्थापित कर वहाँ के छात्रों की शैक्षिक आवश्यकताएं पूर्ण करते हैं परन्तु हमारे देश में इस प्रक्रिया में बहुत अड़चने हैं जिसके कारण विदेशी शिक्षण संस्थान हमारे राष्ट्र में अपने केन्द्र स्थापित नहीं कर पा रही हैं। बड़े पैमाने पर विद्यालयों की संख्या और उच्च शिक्षण संस्थानों की संख्या में अतिविशाल अंतर पाया जाता है। उच्च शिक्षण संस्थान, विद्यालयी शिक्षा पूर्ण कर चुके सभी छात्रों को प्रवेश दे पाने में असमर्थ रहा है। उनकी आवश्यकता एवं रूचि के अनुसार विभिन्न प्रकार के कोर्सेस एवं प्रशिक्षण उपलब्ध कराने में भी पीछे रहा है।
- बढ़ती हुयी जनसंख्या की शिक्षा की मांग को पूरा करने में भारतीय उच्च शिक्षा असमर्थ रही है। इसके फलस्वरूप कई ऐसे लोग एवं संस्थाएँ शिक्षा के क्षेत्र में उतर आये जिन्हें न तो इस क्षेत्र की जानकारी या अनुभव था न ही इनका उनका उद्देश्य इस कमी को पूरा कर समाज और मानव कल्याण ही था। ऐसी संस्थाओं ने शिक्षण के कार्य को एक व्यापार एवं उद्योग बना दिया। आधे से भी अधिक उच्च शिक्षण संस्थान राज-नेताओं या उनके रिश्तेदारों द्वारा, भू-सम्पत्ति दलालों द्वारा, उद्योगपतियों द्वारा स्थापित एवं संचालित किये जा रहे हैं। उनका उद्देश्य समाज, राष्ट्र या मानव कल्याण नहीं है। उनकी मंशा गुणवत्ता में वृद्धि करना नहीं है, अपितु मुनाफा कमाना है।
- भारत में तकरीबन 100 करोड़ की जनसंख्या 17-19 वर्ष की युवा पीढ़ी की हैं। परन्तु इनमें से केवल 20 करोड़ का ही पंजीकरण उच्च शिक्षा में हो पाता है और केवल 3.5 करोड़ स्नातक युवा पीढ़ी जीविकोपार्जन हेतु किसी न किसी कार्य में जुड़ती है। विद्यालयी शिक्षा ग्रहण कर चुके बच्चों को सही मार्गदर्शन, प्रोत्साहन व वित्तीय सहायता नहीं दी जाती। उच्च शिक्षा ग्रहण कर चुके बच्चों के लिए निर्देशन एवं कैरियर परामर्श की व्यवस्था समुचित रूप से नहीं की गई हैं।
- वर्तमान समय में विज्ञान एवं तकनीकि प्रगति और वैश्वीकरण के कारण ज्ञान एवं सूचना में विस्तार हुआ है। सभी वस्तुयें, किताबें, कोर्सेस, विषय कुछ समय बाद पुराने, अप्रचलित या काल विरूद्ध हो जाते हैं। भारत में नये कोर्स, विषय या किताबों को पाठ्यचर्या में सम्मिलित करने में ही कई साल लग जाते हैं। हम नये युग के साथ नहीं चलते।
- शिक्षकों की नियुक्ति में भी गड़बड़ी होती है। अयोग्य लोगों की नियुक्ति कर दी जाती है। आरक्षण, भ्रष्टाचार, भाई भतीजावाद के कारण कई योग्य एवं सुपात्र युवाओं को मौका नहीं मिल पाता। इस कारण शैक्षिक स्तर में भी गिरावट आती है और छात्रों के भविष्य के साथ खिलवाड़ किया जाता है।

- विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, योजना आयोग एवं मानव संसाधन मंत्रालय जिस नीति ढाँचे का निर्माण करते हैं, उन नीतियों एवं नियमों का कार्यान्वयन उच्च शिक्षण संस्थानों के अप्रभावी प्रशासनिक एवं अनियोजित प्रबन्ध के कारण नहीं हो पाता। इस कारण उन नीतियों का उचित लाभ नहीं मिल पाता।
- उच्च शिक्षा बहुत मंहगी हो चुकी है। भारत जैसे देश में जहाँ अधिकतर जनसंख्या की प्रति व्यक्ति आय बहुत अच्छी नहीं हैं, ऐसी स्थिति में उच्च शिक्षा का खर्च प्रति छात्र लाखों में आ जाता है। फीस के अतिरिक्त, फार्म, हास्टल, खान-पान, किताबें, आने-जाने जैसे कई प्रकार के खर्चे उठाने पड़ते हैं। कई छात्र इसी कारण मनचाहा कोर्स नहीं कर पाते या उच्च शिक्षा नहीं ग्रहण कर पाते। ऐसी स्थिति में राज्य एवं केन्द्र सरकार का योगदान होता है कि वह पढ़ाई का खर्च स्वयं उठाये। जिस प्रकार से जनसंख्या एवं उच्च शिक्षा में पंजीकरण में वृद्धि आयी उस दर से सरकार का योगदान नहीं बढ़ा।[2] वर्तमान समय में फीस कई माध्यम से बढ़ाई गई है परीक्षा शुल्क, कान्वोकेशन, पंजीकरण, पुस्तकालय शुल्क, प्रवास शुल्क आदि कई प्रकार से छात्रों से पढ़ाई के नाम पर पैसे वसूले जाते हैं।
- प्रचलित मूल्यांकन प्रणाली रटन विधि को प्रोत्साहित करती है। पाठ्यक्रम का निरन्तर अद्यतनीकरण नहीं किया जाता। इस प्रकार की उच्च शिक्षा युवा पीढ़ी को अपने पैरों पर खड़ा होने लायक नहीं बना पाती।
- दूरस्थ एवं पत्राचार प्रणाली की लोकप्रियता एवं उसमें पंजीकरण बढ़ता जा रहा है और विद्यालयों एवं कालेजों में पंजीकरण घट रहा है। जो कि सही दिशा नहीं है। एक ओर नित नये कालेज खुल रहे हैं और दूसरी ओर कई संस्थान मान्यता न मिलने पर बंद हो रहे हैं। यह स्थिति दर्शाती है कि उच्च शिक्षा का प्रशासन, नियंत्रण एवं नियोजन करने में सरकार, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, उच्च शिक्षा आयोग विफल रहे हैं।[3]
- अधिकतर शिक्षण संस्थाओं में आधारित संरचना की दयनीय स्थिति है। सुविधाओं का अभाव है। सूचना प्रौद्योगिकी को उपयोग में नहीं लाया जाता है। शिक्षकों एवं छात्रो को नई तकनीक का उपयोग करने का प्रशिक्षण नहीं दिया जाता।

सुझाव

- किसी भी संस्थान का उत्तम प्रशासन कोई महत्व नहीं रखता, यदि उसके पास शिक्षित, अनुभवी व उत्साहित शिक्षक न हो।[4] योग्य शिक्षकों की नियुक्ति होनी चाहिए। कार्य आवर्तन होना चाहिए। सेवानिवृत्त हो चुके शिक्षकों को विशेष व्याख्यान के लिए आमंत्रित करना चाहिए। युवा पीढ़ी को मौका देना चाहिए कि वह नयी ऊर्जा के साथ संस्था को अपना योगदान दे।
- उच्च शिक्षण संस्थानों की बागडोर उत्साही, कर्मठ एवं नित्यावान लोगों के हाथों में होनी चाहिए। जिनकी दृष्टि तीव्र एवं दूरगामी हो। विश्वविद्यालयों के शिक्षकों तथा अधिकारियों कि नियुक्ति में राजनीतिज्ञ हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए।
- शैक्षिक प्रक्रियाओं में पारदर्शिता होनी चाहिए। नियंत्रण करने के लिए संस्था होनी चाहिए। कड़े नियम होने चाहिए स्थापना एवं गुणवत्ता के मापदण्डों को तय करने के लिए। गुणवत्ता की जाँच समय-समय पर की जानी चाहिए। मान्यता उचित गुणवत्ता वाले संस्थानों को ही दी जानी चाहिए।
- शिक्षण संस्थानों का उद्देश्य युवा पीढ़ी को भविष्य का निर्माता, अन्वेषक एवं प्रवर्तक बनाना होना चाहिए जिससे राष्ट्र का उचित विकास एवं उन्नति हो सके।
- यह सुनिश्चित करना चाहिए कि कोई भी हुनरमंद बच्चा उच्च शिक्षा से वंचित न रह जाए। स्कॉलरशिप, निर्देशन एवं परामर्श आदि प्रदान करना चाहिए ताकि व अपनी आवश्यकता एवं रूचि अनुसार विषय अथवा कोर्स का चयन कर उच्च शिक्षा पूर्ण कर सके।
- आई0सी0टी0 का प्रयोग कर, शिक्षण कार्य, परीक्षा, प्रबन्धन, अनुशासन एवं प्रशासन को प्रभावशाली बनाया जाना चाहिए। आधारिक संरचना एवं सुविधाओं को प्रदान करना चाहिए।
- विश्व स्तर के शिक्षण संस्थानों एवं केन्द्रीय विश्वविद्यालयों की संख्या को बढ़ाना चाहिए। नये विषयों एवं कोर्सेस को प्रस्तावित करना चाहिए। भविष्य पूरक नियोजन कर पाठ्यचर्या एवं शैक्षिक प्रणाली में बदलाव लाने चाहिए।

- उच्च शिक्षा के नियोजन एवं विकास के लिए साम्य/ निष्पक्षता, पहुँच/ फैलाव, गुणवत्ता और उत्तरदायित्व चार आधारभूत मार्गदर्शी सिद्धान्त होने चाहिये। जिससे भारत को और उसकी युवा पीढ़ी को आने वाले भविष्य एवं वैश्विक चुनौतियों के लिए तैयार किया जा सके।
- उच्च शिक्षा को बेहतर बनाना है तो आवश्यक है कि राष्ट्र की शैक्षिक कूटनीति न केवल उच्च शिक्षा के लिए हो अपितु वह प्राथमिक, माध्यमिक, स्नातक सभी पक्षों के लिये नियोजन करें। इन तीनों स्तरों का आपस में तालमेल होना चाहिए।
- भारत में उच्च शिक्षा के माध्यम से अधिकतर बच्चे स्नातक की डिग्री प्राप्त करते हैं जो कि उन्हें सीमित नौकरियों के लिए तैयार करता है। आवश्यकता है कि उन्हें तकनीकि शिक्षा के साथ व्यवसायिक शिक्षा भी दी जाए।
- वर्तमान समय की आवश्यकता है कि शिक्षण प्रणाली एवं ढाँचा ऐसा हो जिसमें छात्रों को रोजगार में स्थापन पर विशेष बल दिया जाए, आवश्यक कौशलों का विकास किया जाए, व्यक्तित्व के विकास पर बल दिया जाए, विश्लेषणात्मक चिंतन का कौशल, संप्रेषण का कौशल, प्रतिपादन का कौशल, नेतृत्व के गुण, समूह में काम करने का कौशल, सूचना प्रौद्योगिकी आदि क्षेत्रों में निपुण बनाने पर बल दिया जाए। पाठ्यचर्या उद्योग केन्द्रित हो, आभ्यासिक हो जिससे कि छात्रों के लिए पाठ्यक्रम अधिक उपयोगी बन सके।[5]
- वर्तमान के समाज की उच्च शिक्षा से अपेक्षाएं भिन्न हैं। जो प्राधिकारी नीति एवं नियम बनाते हैं उन्हें वर्तमान की स्थिति का ज़ायज़ा लेकर नीतियों में संशोधन करना चाहिए। ताकि वैश्विक स्तर की चुनौतियों का सामना करने के लिए नयी पीढ़ी सक्षम हो सके। इसके लिए आवश्यक है कि उच्च शिक्षण संस्थाएँ अंतर्विषयक कोर्सेस बनाए, विश्व की श्रेष्ठ संस्थाए मिलकर प्रोग्राम बनाए जिससे छात्रों की 21वीं सदी की शिक्षा की मांग को पूरा किया जा सके।[6]

उच्च शिक्षा युवाओं को विभिन्न प्रकार के कार्यों एवं क्षेत्रों के लिये तैयार करती है, साथ ही तकनीकि नवोन्मेष को बढ़ावा देती है। जिससे समाज व राष्ट्र की उन्नति होती है और आर्थिक विकास होता है। इसलिए यह आवश्यक है कि उच्च शिक्षा राष्ट्र एवं युवाओं की माँग को पूरा करें। वैश्वीकरण, सूचना प्रौद्योगिकी एवं बी.पी.ओ. अध्यवसाय के कारण भारत केवल उत्पादन केन्द्र न रहकर सेवा प्रदाता भी बन गया जिसके फलस्वरूप हर क्षेत्र में प्रशिक्षित एवं कुशल मानव संसाधन की आवश्यकता पड़ती है। इसलिए यह आवश्यक है कि शिक्षा का स्तर ऐसा हो जो युवाओं को वैश्विक चुनौतियों के लिए तैयार करें।

सन्दर्भ सूची

[1]*सी0ए0बी0ई0 कमीटी (2005 अ)* रिपोर्ट ऑफ द सेन्ट्रल एडवाईजरी बोर्ड ऑफ एजुकेशन (CABE) कमीटी आन आटोनॉमी आफ हाईअर एजुकेशन इंस्टीट्युशन्स, गवर्नमेन्ट आफ इण्डिया

[2]तिलक (2004) -*फीस आटोनॉमी एण्ड इक्यूटि*

[3]विभास कुमार (2013) -चैलेन्जेस एण्ड आपरच्युनिटीज इन हाईअर एजुकेशन सिस्टम इन इण्डिया; देहली विजनेस रिव्यू; वॉल 14, नं0-2

[4]र्हिच, डबल्यू, जेड एण्ड वेबर, एल.ई. (1999) -*चैलेन्जेस फेसिंग हाईअर एजुकेशन एट द मिलेनियम*

[5]ब्रिज़िस, डी. (2000) -*बैक टू द फ्यूचर : द हाईअर एजुकेशन करीकुलम इन द 21 सेन्चुरी;* कैम्ब्रिज जनरल आफ एजुकेशन, वाल 30, नं0-1, पेज- 37-55.

[6]राय, डी. (2007) -*कन्नेक्टिंग इन्टरप्राईज एण्ड ग्रेजुएट एम्लॉयबिलिटी चैलेन्जस टू द हाईअर एजुकेशन कल्चर एण्ड करीकुलम,* जर्नल : एजुकेशन ट्रेनिंग; वॉल 49, नं0- 8/9, पेज- 605- 619.

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777
भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 10,15-18
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 23 अक्टूबर 2016

प्लेटो का कला सौन्दर्य-दर्शन

डॉ. मनोज कुमार अग्निहोत्री*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *प्लेटो का कला सौन्दर्य-दर्शन* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र का लेखक मैं *मनोज कुमार अग्निहोत्री* घोषणा करता हूँ कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देता हूँ।

प्लेटो का सौन्दर्य-सिद्धान्त दर्शन के सिद्धान्तों पर आधारित है। उनके अनुसार एक लोक ज्ञप्ति अथवा (आइडिया) का है, दूसरा भौतिक (मैटर) से सम्बन्धित है। पहला यथार्थ है और दूसरा लोक पहले लोक का ही प्रतिबिम्ब है, अतः अयथार्थ है। पहला सत्य, अनश्वर तथा अपरिवर्तनशील है, दूसरा असत्य नश्वर और परिवर्तनशील है।

ज्ञप्तियाँ अथवा प्रत्यय वस्तुओं के सार तत्व हैं। भौतिक वस्तुएँ जिन्हें हम विशेष कह सकते हैं, उनके आवश्यक सामान्य गुणों का संग्रहीत रूप ही ज्ञाप्ति अथवा प्रत्यय है। जैसे हमने संसार में अनेक अश्वों को देखकर उनकी अवश्व-गत-विशेषताओं के आधार पर मन में एक ज्ञप्ति अथवा प्रत्यय को स्थिर किया, जो अश्व हैं अश्व का यह प्रत्यय संसार के किसी भी अश्व से पूरी तरह मिलता नहीं है फिर भी सामान्य रूप में सभी अश्वों के समान है। अतः ज्ञप्तियाँ सामान्य स्वरूप हैं, शाश्वत हैं। विशेष या लौकिक वस्तुएँ इन्हीं ज्ञप्तियाँ अथवा प्रत्ययों की प्रतिबिम्ब मात्र एव अपूर्ण प्रतिकृति मात्र हैं। प्रत्येक वर्ग की विशिष्ट वस्तुओं के लिये एक प्रत्यय है। लोक में कोई भी वस्तु ऐसी नहीं है जिसका कोई प्रत्यय न हो।

सभी प्रत्यय व्यवस्थित, संगठित और तर्क-संगत है जो चरम प्रत्यय शिव (Good) में सन्निहित है। शिव सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में व्याप्त हैं। भूत तत्व के सम्पर्क में आने पर कोई प्रत्यय अनेक विशेष रूप धारण कर लेता है। ये अनेक विशेष वस्तुएँ मिलकर एक सामान्य वर्ग बनाती हैं। प्रत्यों के अरोप से ही भूत तत्व भिन्न-भिन्न विशेष रूपों में दिखाई देता हुआ प्रकृति के लोक का निर्माण करता है। प्रत्ययों के अस्तित्व से ही विशेष वस्तुओं का अस्तित्व है।

इस प्रकार प्रत्यय प्रधान तत्व है और सभी वस्तुओं का कारण है। भूत तत्व निश्चेष्ट, जड़ तथा अप्रधान है और प्रत्यय को केवल आंशिक रूप में ही प्रकट करने में सक्षम है। अतएव यह भूत तत्व ही अपूर्णताओं परिवर्तनों तथा बुराइयों का कारण है।

आत्मा में प्रत्ययों का संचय रहता है। जब आत्मा शरीर में प्रवेश करती है तो वस्तुओं का इन्द्रिय-बोध इन प्रत्ययों को केवल आग्रत करने में सहायता करता है।

* एस. एस. खन्ना महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश) भारत। E-mail : agni.mkumar@yahoo.com

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

ज्ञान तीन प्रकार है:

- *प्रत्यय मूलक;* यह तर्क विधि से प्राप्त किया जा सकता है। इसकी सहायता से आत्मा को प्रत्ययों का साक्षात्कार करने में सहायता मिलती है।
- *इन्द्रिय बोध मूलक;* इससे केवल विशेष वस्तुओं के वाह्य स्वरूप को ही जाना जा सकता है। यथार्थ को नहीं।
- *अभिमत;* यह व्यक्ति के अपने विश्वास तथा प्रलोभनों पर आधारित रहता है अतः यह भी यथार्थ से दूर रहता है।

आत्मा की तीन विशेषताएं है -1. यह स्वयं गतिमान है और शरीर का भी संचालन करती है, 2. इसमें काम की मूल प्रेरणा हैं जो निम्न धरातल पर ऐन्द्रिक प्रेम की ओर आकर्षित होती है, परन्तु यथार्थ सौन्दर्य ओर शिव से आकर्षित होने पर यह अपने मूल निवास स्थान को फिर लौट जाती है, 3. यह मिश्रित और जटिल है, क्योंकि इसकी रचना मन और भूल तत्व, भेद और अभेद, खण्डता और अखण्डता तथा तर्कपूर्ण और तर्कहीन को मिलाकर हुई है।

जिस प्रकार अन्य वस्तुओं के प्रत्यय हैं उसी प्रकार सौन्दर्य भी एक प्रत्यय है। इसका प्रस्फुटन अनेक वस्तुओं की अंश-अंश सुन्दर आकृतियों में हुआ है। पर ये अलग-अलग वस्तुएँ सौन्दर्य नहीं हैं, केवल सुन्दरता-युक्त हैं। पूर्ण सौन्दर्य एक प्रत्यय है और संसार की सुन्दर से सुन्दर वस्तु भी उसको पूर्ण रूप से प्रकट नहीं कर सकती। हम एक कम सुन्दर वस्तु से अधिक सुन्दर वस्तु को देखते हुए क्रमशः सौन्दर्य के प्रत्यय का विकास करते जाते हैं इस प्रकार हम सौन्दर्य के प्रत्ययको प्रत्यक्ष करने में क्रमशः एक सीढ़ी से दूसरी सीढ़ी पर ऊपर चढ़ते है अतः सौन्दर्य के कारण ही वस्तुएँ सुन्दर प्रतीत होती है। यह किसी भी कृति में पूर्ण रूप में नहीं किन्तु सभी वस्तुएँ इस एक ही सौन्दर्य को भिन्न-भिन्न रूपो और विधियों से प्रकट करती है।

प्लेटो ने उक्त विचारो की पृष्ठ-भूमि में ही कला के सौन्दर्य पर विचार किया है। इस सम्बन्ध में प्लेटो ने तीन प्रश्न उठाये है - 1. क्या कला अनुकृति मात्र है?, 2. कला में तर्क रहता है अथवा नहीं?, 3. कलाआत्मा के उच्च स्तर पर निवास करती है अथवा निम्न स्तर पर?

प्लेटो ने काव्य तथा चित्रकला के प्रसंग में अनुकृति पर विचार किया है और यूनान में पहले से चले आये अनुकृत के सिद्धान्त का ही अधिक स्पष्ट रूप में प्रतिपादन किया है। काव्य में अनुकृति का स्वरूप बताते हुए वे कहते हैं कि कवि स्वयं विभिन्न पात्रों के रूप में जब बोलता है तो श्रोता अथवा पाठक यह विश्वास करता है कि पात्र ही बोल रहे हैं - यह अनुकृति है। कवि जब वर्णन करता है तब श्रोता या पाठक यह समझता है कि कवि ही बोल रहा है, पर जब किसी पात्र के रूप में वह कुछ कहता है तो यही समझा जाता है कि पात्र ही बोल रहा है। इस प्रकार भाषा और शैली के आश्रित काव्य की यह अनुकृति सीमित होती है। इसकी तुलना में नाटक की अनुकृति अभिनय, चेष्टाओं, स्वर-विन्यास आदि के कारण पूर्णतया होती है।

चित्रकला की अनुकृति केवल आंखों से दिखाई देने वाले किसी वाह्य रूप की अनुकृति है। यह बाहरी रूप प्रकृति या मानव निर्मित किसी वस्तु का हो सकता है। चित्रकला में हमें वस्तुओ की केवल वाह्य आकृति ही प्राप्त होती है, उसी प्रकार जिस प्रकार दर्पण में उसके सामने रखी वस्तु का प्रतिबिम्ब दिखाई देता है। प्रत्यय सत्य है। प्रकृति तथा भूत पदार्थ इसी प्रत्यय की अनुकृति अथवा अपूर्ण प्रतिबिम्ब मात्र हैं। अतएव चित्रकला में यदि इन्द्रियगोचर भौतिक रूपों की अनुकृति की जाती है अथवा यह वह किसी प्रत्यय की अपूर्ण अनुकृति का अनुकूल रूप है तो ऐसी कलाकृति छाया की छाया अथवा प्रतिबिम्ब का प्रतिबिम्ब है और यथार्थ से दो गुनी दूर है। प्राकृतिक पदार्थो अथवा बढ़ई आदि कारीगरों द्वारा निर्मित वस्तुओं के सामान चित्रकला-कृति उपयोगी भी नहीं है। यदि कलाकृतियाँ मनोवेग (भाव) उत्पन्न करने के उद्देश्य से बनाई गयी हैं तब भी व्यर्थ हैं क्योंकि इस उद्देश्य को प्रकृति पहले ही अधिक सुन्दरता से पूरा कर देती है।

अनुकरण करने वाला व्यक्ति वस्तु के यथार्थ को नहीं जानता। वह केवल बाहरी रूपों की ही अनुकृति करता है और दर्शकों को प्रभावित करने के लिये रंगों आदि से भ्रान्ति का सहारा लेता है। भ्रान्ति-कारण होने के कारण कला तर्कहीन है। अतः आदर्श लोकतंत्र में इस कला को कोई स्थान नहीं मिलना चाहिएं।

नाटक के पात्र यहाँ तक कि नायक आदि भी अपने सुख-दुख के भावों को नाटकीय तथा अतिरंजित रूप में मंच पर प्रदर्शित करने में सुख का अनुभव करते है जबकि संसार के सदाचारी और बुद्धिमान पुरूष दुःख-सुख को धैर्यपूर्वक सहन करते

हैं और दूसरों के सामने प्रकट नहीं करते। इस प्रकार नाटक में बुद्धिमान तथा शान्त स्वभाव के आदर्श पात्रों की अनुकृति करना दुश्कर है। नाटककार आदि का उद्देश्य मनोवेगों को जगाना मात्र है जो तर्कहीन होते हैं, अतः वे आत्मा के तर्कपूर्ण स्वभाव को दबा देते हैं। इस प्रकार काव्य तथा नाटक भावननाओं तथा वासनाओं को ही पुष्ट करते हैं। त्रासदी से हमें आनन्द मिलता है, उसका मूल कारण है कि नाटक के पात्र का दुःख अन्य व्यक्ति से सम्बन्धित होता है उससे सहानुभूति प्रकट करके हम अपने मन में संचित दुःख की अनुभूति के दबाव से भी छुटकारा अनुभव करते हैं। प्लेटो ने तो यहाँ तक कहा है कि काव्य में मूलतः एक उन्मादक प्रेरणा रहती है। यह ईश्वरीय उन्माद ही काव्य का प्राण है और सौन्दर्य की पवित्रता का कारण है। सम्भवतः प्लेटो की धारणा थी कि सौन्दर्योपभोग के अलौकिक उन्माद के द्वारा सौन्दर्य-सृष्टि तत्वज्ञान के समकक्ष बन चुकी है अतः सौन्दर्य तत्वज्ञान प्राप्त करने का एक उपाय है।

प्लेटो के अनुसार अनुकृति-प्रधान होने के कारण चित्रकला, कविता तथा नाटक दोषपूर्ण होते हैं, किन्तु अनुकरण शिक्षा और ज्ञान का भी एक महत्वपूर्ण साधन है, अतः जो वस्तुएँ कल्याणकारी हैं उनका अनुकरण करना श्रेयस्कर है।

प्लेटो के अनुसार आनन्द-प्राप्ति के केवल दो मार्ग है - नेत्र और श्रवणेन्द्रिय। सुन्दर पुरूष, चित्र, मूर्ति, रंग, दृश्य आदि देखने से तथा संगीत, काव्य या कथा सुनने से हमें आनन्द की अनुभूति होती है। कामेन्द्रिय, स्वादेन्द्रिय तथा स्पर्शेन्द्रिय के आनन्द को हम गहरा और वेगवान होते हुए भी सामाजिक रूप से प्रदर्शित नहीं कर सकते। सुन्दर वस्तु कल्याणकारी भी होती है अतः केवल नेत्र और श्रवण के अनुभव ही सुन्दर और आनन्ददायक हो सकते हैं क्योंकि ये लाभप्रद भी हैं। इस प्रकार जो वस्तु आन्तरिक रूप से लाभप्रद और आनन्दप्रद दोनों है, केवल वही सुन्दर हैं।

संसार में एक वस्तु की तुलना में दूसरी वस्तु अधिक सुन्दर हैं इसी प्रकार अन्य वस्तुएँ क्रमशः और भी अधिक सुन्दर हैं यही सासारिक सुन्दरता का क्रम है जो किसी चरम अथवा पूर्ण सौन्दर्य की ओर संकेत करता है। सुन्दर जीवन के सहारे सुन्दर सत्य की ओर उन्मुख होता है और सत्य से परम-सौन्दर्य की ओर बढ़ता है।

दृष्टि और ध्वनियों का सौन्दर्य आध्यात्मिक अवस्थाओं का संकेत देता है। संगीत मधुर धनियाँ उत्पन्न करता है। ये ध्वनियाँ हमारी आत्मा के परिवर्तनों को सूचित करती हैं। अतः संगीत ऐसा बौद्धिक आनन्द प्रदान करता है जिसका उद्देश्य आत्मा की विरोधी गतियों में सामंजस्य लाना है। लय अथवा संगति (Rhythm and Harmony) के सहारे हम अपनी मानसिक अव्यवस्थाओं और असन्तुलनों को व्यवस्थित और सन्तुलित करने की शक्ति तथा प्रेरणा प्राप्त करते हैं। रंगों तथा आकृतियों के रूपतामक सौन्दर्य से वास्तविक आनन्द उत्पन्न होता है। रूपात्मक सौन्दर्य का अर्थ यह नहीं है जो साधारणतः समझा जाता है - बल्कि यह ज्यामितीय आकृतियों का सौन्दर्य है जैसे सीधी रेखा, त्रिभुज, वर्ग तथा वृत्त आदि। ये रूप सुन्दर वस्तुओं के प्रतीक हैं। वृत्त पूर्ण गति का प्रतीक है, यह प्रज्ञा की गति का प्रतिनिधित्व करता है। त्रिभुज सामंजस्य का प्रतीक है। यह असन्तुलन से मुक्त है। ये पूर्ण आकृतियाँ है। साथ ही इनका कोई सांसारिरक प्रयोजन भी नहीं है। अतः ये परम सुन्दर हैं और हमारी व्यक्तिगत इच्छाओं से मुक्त है। इसी प्रकार के रूप और रंग हमें उचित आनन्द देते हैं और हमारी व्यक्तिगत इच्छाओं तथा भावनाओं से मुक्त भी होते हैं। इसी प्रकार शुद्ध और स्पष्ट ध्वनि भी हमें उचित आनन्द प्रदान करती है। केवल रेखा, वर्ण या शब्द के सामंजस्य से उत्पन्न होने वाले सौन्दर्य को तो प्लेटो जानते थे किन्तु किसी समय वस्तु के आन्तरिक ऐक्य और सामंजस्य से उत्पन्न होने वाले सौन्दर्य की ओर उनकी दृष्टि नहीं की गई हैं। आध्यात्मिक सौन्दर्य के साथ वे ऐहिक सौन्दर्य का सम्बन्ध स्थापित करने में असफल रहे हैं। इस प्रकार प्लेटो ने ज्यामितीय रूपों और शुद्ध रंगों को विशुद्ध सौन्दर्य का उदाहरण माना है जो लौकिक उपयोग से रहित है तथा प्रज्ञात्मक आनन्द प्रदान करने वाला है। यह संसार की अव्यवस्था, अबौद्धिकता, असन्तुलन तथा परिवर्तनशीलता के विरुद्ध न्याय, व्यवस्था, बौद्धिकता तथा सन्तुलन के आदर्श जगत् के निर्माण का प्रयत्न हैं। साधारण मनुष्य ने इस आदर्श जगत् को जानता है न आत्मा को। ऐसा व्यक्ति जिसे मूल सत्य का ज्ञान नहीं है, वह जीवन के मूलभूत तत्वों सत्य, शिव तथा सुन्दर को प्राप्त नहीं कर सकता। इन्द्रिय जगत् का ज्ञान निम्नस्तर का है। प्रज्ञात्मक ज्ञान ही आदर्श ज्ञान है क्योंकि वह आदर्श जगत् अर्थात् प्रत्यय-जगत् का ज्ञान कराता हैं कलाकार प्रज्ञा के ज्ञान पर आधारित प्रत्ययों का प्रयोग न करके 'विशेष' रूपों का प्रयोग करता है, यही उसकी त्रुटि और कमी है। इस भांति प्लेटो ने सांसारिक सौन्दर्य को निम्न-स्तरीय और अज्ञात सौन्दर्य को आदर्श मानकर कलाओं तथा कलाकारों की निन्दा की है।

प्लेटो का सौन्दर्य-सिद्धान्त एक दार्शनिक सौन्दर्य-सिद्धान्त है। यह प्रज्ञात्मक ज्ञान पर आधारित है। प्लेटो सौन्दर्य तथा नैतिकता का भी घनिष्ठ सम्बन्ध मानते है। उनके विचार से कलाएँ जीवन में शिक्षा देती है - मनुष्य में सद्गुणों के विकास में सहायक बनती है।

प्लेटो ने नाटक तथा काव्य के उदाहरण में त्रासदी के प्रसंग में श्रोता अथवा दर्शक के मन की संचित भावनाओं की निकासी से शुद्धीकरण की बात कहकर इस मनोवैज्ञानिक तथ्य की ही पुष्टि की है कि मनोविकारों की स्वतन्त्र अभिव्यक्ति से मन को शान्ति तथा कुष्ठाओं से मुक्ति मिलती है।

प्लेटो ने शारीरिक शिक्षा के लिए खेल तथा व्यायाम आवश्यक बताया है और मन के संस्कार के लिये संगीत। इस प्रकार उन्होंने ललित कला तथा व्यावहारिक कला के भेद का भी संकेत दिया है।

प्लेटो ने कला में नैतिकता अनिवार्य मानी है पर यह आवश्यक नहीं कि जो सुन्दर हो वह नैतिक भी हो। इसी प्रकार जो नैतिक है उसका सुन्दर होना भी अनिवार्य नहीं है। अनेक सुन्दर कलाकृतियाँ जो विश्व प्रसिद्ध है, फोटो की दृष्टि से अनैतिक मानी जायेगी। इस प्रकार प्लेटो ने ही सर्वप्रथम सत्य, शिव तथा सुन्दर की एकता पर विचार किया है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

विश्व के श्रेष्ठ शिक्षाशास्त्री - पाण्डेय, डॉ. राम सकल
पाश्चात्य दार्शनिक प्लेटो से संबंधित दर्शन - ग्रन्थ

- *दि फिलासफी ऑफ प्लेटो*
- *फ्रीतो एण्ड फीड्रो*
- *प्लेटो का प्रजातंत्र*
- *प्लेटो दि मैन एण्ड हिज वर्क*

त्रिपाठी, डॉ. सी. एल. -*ग्रीक दर्शन,* प्रयाग पुस्तक सदन, इलाहाबाद

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 10,19-21
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 08 सितम्बर 2016

प्राचीन भारत में पर्यावरण बोध

डॉ. ज़ेबा इस्लाम*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *प्राचीन भारत में पर्यावरण बोध* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *ज़ेबा इस्लाम* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

''शुद्ध वातावरण/ स्वच्छ पर्यावरण/ हो हमारा - आपका यहीं आचरण/ हर कहीं स्वच्छता,/ स्वच्छ नर, नीर हो,/ शुद्ध हो वायु, नभ/ नष्ट हर पीर हो। शुद्ध अंतःकरण,/ हम प्रकृति की शरण,/ सृष्टि की कामना,/ प्रेम का संचरण/ शुद्ध वातावरण,/ स्वच्छ पर्यावरण/ हो हमारा आपका यहीं आचरण।''

प्रकृति अर्थात् पंचमहाभूतों की सहज एवं साम्यावस्था मनुष्य के द्वारा जब इस साम्यावस्था को विश्रृंखलित एवं विखण्डित करने का प्रयास किया जाता है, तो विक्षोभ उत्पन्न होता है और परिणाम होता है, इन पंचमहाभूतों से निर्मित मनुष्य पशु-पक्षी तथा स्थावर उपादानों का विनाश। मनुष्य वर्तमान समय में इस धरा का सर्वाधिक हिंसक, क्रूर एवं शोषक प्राणी के रूप में परिवर्तित होता जा रहा है। उसकी भोग लिप्सा अपरिहार्य विभीषिका को सवंर्धित कर रही है। प्राचीन मनीषियों ने प्रकृति को माता की संज्ञा प्रदान की थी और इसके अनावश्यक दोहन के प्रति चैतन्य एवं अनथक विरमण की व्यवस्था कर दी थी।

ईशोपनिषद्[1] का प्रारम्भ ही इस उद्घोष से होता है- ''ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्चित् जंगत्यांजगत/ तेन व्यक्तेन भुञ्जीथाः मा गृधः कस्यस्विद्धनम्।।''

ऋग्वेद[2] के विश्वदेवा सूक्त से जो प्रार्थनायें प्राप्त होती हैं, वे अतीत, वर्तमान एवं अनागत सभी अवधि में सर्वत्र एवं सर्वप्राणि हिताय उपादेय एवं आचरणीय है। इस सूक्त के मन्त्रों में पंचमहाभूतों की प्रार्थना के साथ-साथ सभी दिशाओं में विर्कीण सरबुद्धि के ग्रहण करने का संदर्भ प्राप्त होता है। सभी के कल्याण की कामना पदे-पदे प्राप्त होती है।

वर्तमान समय की सबसे बड़ी त्रासदी यह है कि मनुष्य जड़ एवं स्थावर पदार्थों के शोषण के माध्यम से सामाजिक विकास के छद्म आवरण में अपनी कृत्सिप्त एवं स्वार्थ लिप्सा की पूर्ति करना चाहता है और कर भी रहा है। मनुष्य स्वयं में चैतन्य है, इसे वह भूल चुका है। प्रस्तुत लेख में पंचमहाभूतों के प्रति आर्ष दृष्टिकोण, समाष्टि कल्याण एवं पंचमहाभूतों को नष्ट करने के प्रति प्रायश्चित एवं दण्ड के रूप में प्रतिपादित किये गये नियमों एवं निर्देशों की प्रासंगिक एवं समाज संदर्भी विवेचना का

* प्राचीन इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

अभिमत प्रयास किया गया ही साथ ही साथ पर्यावरण प्रदूषण की वर्तमान स्थिति में इन सन्दर्भों की क्या उपयोगिता है इसको भी विश्लेषित करने की चेष्टा की गयी है।

संस्कृत साहित्य और प्रकृति वर्णन एक-दूसरे के परिपूरक हैं। सभी रचनाओं में पर्यावरण से सम्बन्धित प्रकृति-चित्रण को एक अन्यतम् स्थान दिया गया है। संस्कृत साहित्य में प्रकृति और प्राणी का शाश्वत् सम्बन्ध बताया गया है। इसका मुख्य उदाहरण है, विश्व की सबसे प्राचीन पुस्तक श्रृग्वेद जिसमें प्राकृतिक तत्वों को मूर्त रूप देकर विविध विषयों का वर्णन है, जो वैदिक काल में भी लोगों की आस्था के रूप प्रकृति प्रेम को दर्शाता है।

प्रकृति ही पर्यावरण है, जब प्रकृति विनष्ट होती है, तब अनेक विकृतियों के साथ प्राणी का भी विनाश होता है। पर्यावरण शब्द दो शब्दों के मेल परि+आवरण से बना है अर्थात् हमारे चारों ओर प्राकृतिक तत्वों का जो आवरण है, वहीं पर्यावरण कहलाता है। जैसे- वायु, जल, अग्नि, आकाश, चन्द्रमा, पृथ्वी, वनस्पति, नदी, पर्वत, पशु, पक्षी इत्यादि, और यहीं आवरण हम सभी जीवों के जीवन का आधार भी है। यजुर्वेद[3] (36/17) में पर्यावरणीय घटकों की स्तुति भी की गयी जो मनुष्यों द्वारा प्रकृति के समक्ष आभार प्रस्तुत करती है।

शास्त्रों के अनुसार सृष्टि पाँच महाभूतों के समूह से उत्पन्न मानी गयी है। ये तत्व हैं - पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश, और वायु। जो कि पर्यावरण के भी अति महत्वपूर्ण तत्व है। इन पाँच महाभूतों में से यदि किसी एक में भी किसी प्रकार की विकृति होती है, तो पर्यावरण का ह्रास स्वतः ही होने लगता है। पर्यावरण में इन पाँच तत्वों का सम्यक् सन्तुलन बहुत ही आवश्यक है, क्योंकि सृष्टि निर्माण ही इनके द्वारा हुआ है, इन पाँच तत्वों में परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है, एक में विकृति आने पर अन्य स्वतः ही प्रभावित होने लगता है।

यहाँ सबसे पहले संस्कृत साहित्य में पृथ्वी तत्व का पर्यावरण के सम्बन्ध में चिन्तन करें तो पुराणों[4] में पृथ्वी को स्वच्छ, सुन्दर, विमल, निर्मल कहा गया है। यहां पृथ्वी को देवी के रूप में प्रकाशित किया गया है और कहा गया है कि, सभी जीवों के जीवन का आधार पृथ्वी ही है, एक पृथ्वी ही है जो बोये हुए एक बीज को अनेक की मात्रा प्रदान करती है। 18 महापुराणों में से एक वामन पुराण[3] में भी भूमि अर्थात् पृथ्वी को स्वच्छ बनाये रखने के लिए स्वच्छ स्थान पर मलमूत्र आदि का त्याग वर्जित कहा गया है, किन्तु आज सभ्य माने जाने वाले समय में भी अविसर्जित पदार्थों के द्वारा अनेक प्रकार से भूमि व भूमिगत प्रदूषण बढ़ रहा है। जबकि हजारो वर्षों पूर्व रचे गये वेद पुराणों में पृथ्वी को देवी रूप में सम्मान दिया गया है तथा मानव और भूमि पुत्र व माता का सम्बन्ध बताया गया है। अथर्ववेद[5] में मन्त्रों द्वारा कहा गया है यथा - ''नमो मातरै पृथित्यै, माता भूमि पुत्रोऽहम् पृथित्याः पादस्पर्श क्षमस्व में।'' (अथर्ववेद 12/1/12)

दूसरा तत्व 'जल' पृथ्वी पर शक्तिवर्धक और सभी जीवों का प्राण है, इस जल तत्व की सहायता से ही पृथ्वी वृक्ष-लता -वनस्पति आदि का पोषण करती है। जल की मुख्य स्रोत पृथ्वी पर बहने वाली नदियों को भी देवी रूप में वर्णित किया गया है। आज जल का अति-दोहन और प्रदूषण हो रहा है। वामन पुराण[6] के अनुसार जो मानव जल को प्रदूषित करे उसे दुर्गन्ध युक्त तालाब में डाल दिया जाय ऐसा विधान है। पुराणों में रूद्रदेव को सशरीर रूप जल ही कहा गया है।

तीसरा तत्व अग्नि- जो तेज प्रकाश ऊर्जा के रूप में सर्वत्र विद्यमान है। अग्नि देव अपने सूर्य स्वरूप के द्वारा समस्त सृष्टि का पोषण करते हैं। प्राणियों के शरीर में अवस्थित जठराग्नि उनके द्वारा खाये हुए भोजन को पचाती है। अग्निरूपी सूर्य जल के वाष्पीकरण से बादलों की सहायता से वर्षा करते हैं। प्राचीन शास्त्रों में यज्ञ का विधान भी वर्णित है, जो वर्षा होने और स्वच्छ वातावरण के लिए सहायक कहा गया है।

संस्कृत साहित्य में सृष्टि या पर्यावरण के पाँच तत्वों में से एक आकाश तत्व का भी महत्वपूर्ण स्थान बताया है, पुराण[7] साहित्य में आकाश को भी महादेव का एक अन्य रूप माना है।

पांचवा तत्व है वायु। वायु यह हमारे शरीर में अमूर्त रूप से विचरण करती है और पर्यावरण का महत्वपूर्ण घटक भी है। संस्कृत शास्त्रीय ग्रन्थों में वायु का गुण 'गन्ध' कहा गया है, वाल्मीकि रामायण में भी स्वच्छ वायु का महत्व और पर्यावरण में इसकी अनिवार्यता बतायी गयी है। वायु पुराण[8] में भी वायु अर्थात् 'पवनदेव' का पूजन और उनकी महिमा बतायी गयी है।

पर्यावरण संरक्षण में हमारे चारों ओर रहने वाले अन्य जीवों का भी विशेष योगदान है, जोकि वैज्ञानिक रूप में भी सिद्ध हो चुका है। मानव-प्रकृति तथा अन्य जीव-जन्तु परस्पर एक-दूसरे के पूरक है। अतः पौराणिक शास्त्रों में पशुओं को भी देवरूप

में स्वीकार किया गया है, जैसे- गाय को 'गौ' माता और अनेक देवी-देवताओं के साथ उनका चित्रण भी मिलता है। पशुओं एवं पक्षियों की हत्या करना भी दण्डनीय बताया गया है, संस्कृत साहित्य में अहिंसा को सर्वश्रेष्ठ स्थान दिया गया है।

इस प्रकार पर्यावरण के घटकों के विषय में उनके संरक्षण हेतु उन्हें दैविक रूप प्रदान कर साहित्य में विशेष रूप से चिन्तन किया गया है। पर्यावरण के प्रत्येक तत्व को देव आदि रूप में सम्मान देकर इन प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग मानव को आभार के भाव से करना चाहिए न कि अधिकार भाव से। ऐसी शिक्षा संस्कृत साहित्य में जन-मानस को दी गई, इससे हम प्राकृतिक संसाधनों की अति दोहन की समस्या से भी बच सकते हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

[1]*ईशोपनिषद्*
[2]वही
[3]*ऋग्वेद,* यजुर्वेद, सामवेद, और अर्थववेद
[4]*पुराण-वामान,* वराह, अग्नि, स्कंद, गरूड़, पद्म,
[5]*ऋग्वेद,* यजुर्वेद, सामवेद और अर्थववेद
[6]*वामन पुराण*
[7]*महाकाव्य-* रामायण, महाभारत
[8]*पतंजलि का महाभाष्य,* महाभारत
[9]*वात्स्यायन का कामसूत्र*
[10]*चरक संहिता* - सुश्रुत संहिता, अव्यंग हृदय
[11]*विद्शाल भंजिका*
[12]भवभूति -*उत्तरामचरित, अर्थववेद*

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777
भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 10,22-27
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 27 अक्टूबर 2016

बौद्ध शिक्षा केन्द्र -विक्रमाशिला विश्वविद्यालय

डॉ. ज़ेबा नक़वी*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *बौद्ध शिक्षा केन्द्र -विक्रमाशिला विश्वविद्यालय* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *ज़ेबा नक़वी* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

डा0 राधाकृष्णन् ने शिक्षा को परिभाषित करते हुए कहा था कि, ''शिक्षा व्यक्ति और समाज के सर्वतोमुखी विकास की सशक्त प्रक्रिया है।'' शिक्षा की अर्थवत्ता इस तथ्य में समाहित है कि शिक्षा ही व्यक्ति समाज संस्कृति तथा सभ्यता के विकास की अपरिहार्य दशा है। वस्तुतः जो शिक्षा व्यक्ति के नैतिक, चारित्रिक एवं आध्यात्मिक विकास का मार्ग प्रशस्त नहीं करती, वह शिक्षा अधूरी और अर्थहीन कही जायेगी। प्राचीन भारत ने शिक्षा की इसी सकारात्मक भूमिका को अंगीकार किया था। उन्होंने इस सूत्र को आत्मसात कर लिया था कि ज्ञान से श्रेष्ठतर और कुछ नहीं है 'न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रं सिद्ध।' इसी आदर्श को प्राचीन भारतीय मनीषियों ने आत्मसात कर लिया था। भारतीय इतिहास इस बात का साक्षी है कि जब आधुनिक विश्व के अनेक देश प्रगति के अंधकार में भटक रहे थे भारत ने शैक्षिक उत्कर्ष के अनेक कीर्तिमान स्थापित कर लिये थे। इस तथ्य को उन 'गौरांग प्रभुओं' ने भी स्वीकार किया है, जिन्हें भारतीय शिक्षा के आधुनिक संस्करण के सृजन का श्रेय प्राप्त है। जैसा कि सुविज्ञ शिक्षाविद् डॉ0 थामस ने लिखा है-

''शिक्षा भारत में विदेशी नहीं है। ऐसा कोई भी देश नहीं है, जहाँ ज्ञान के प्रति प्रेम इतने प्राचीन समय में प्रारम्भ हुआ हो या जिसने इतना स्थायी और सशक्त प्रभाव को उत्पन्न किया हो। वैदिक युग के साधारण कवियों से लेकर आधुनिक युग के बंगाली दार्शनिक तक, शिक्षकों एवं विद्वानों की एक अविरल परम्परा रही है।'' इस प्रकार प्राचीन वैदिक युग से लेकर अद्यावधि तक शिक्षा का ज्योति कलश देदीप्यमान रहा है। पूर्व राष्ट्रपति स्वर्गीय अब्दुल कलाम आज़ाद के अनुसार- ''शिक्षा से मानव का व्यक्तित्व सम्पूर्ण, विनम्र और संसार के लिए उपयोगी बनता है। सही शिक्षा से मानवीय गरिमा स्वाभिमान और विश्वबन्धुत्व की बढ़ोत्तरी होती है, अंततः शिक्षा का उद्देश्य है- सत्य की खोज।'' भारत में शिक्षा का इतिहास हजारों वर्ष पुराना है। अपनी बु-आयामी उत्कृष्ट शिक्षा के कारण ही भारत लम्बे समय तक जगत्गुरु बना हुआ था जहाँ देश विदेश के लोग शिक्षा

* असिस्टेंट प्रोफेसर, मध्यकालीन इतिहास विभाग, सदन लाल साँवल दास खन्ना महिला पी.जी. कॉलेज [इलाहाबाद विश्वविद्यालय से सम्बद्ध] इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश) भारत। E-mail : zeba.naqvi 571@gmail.com

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित, सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

प्राप्ति के लिए आते थे, भारतीय शिक्षा की विरासत गौरवशाली होते हुए भी आज अपनी श्रेष्ठता प्रमाणित करने में असमर्थ है, अतः शोध पत्र लिखने का उद्देश्य अतीत के शैक्षणिक गौरव को प्रस्तुत कर लोगों में जागरूकता उत्पन्न की जाये।

विश्व में एशिया खण्ड ही एक ऐसा स्थल है जहाँ अनेक धर्मों और सम्प्रदायों का जन्म हुआ। पारसी, यहूदी, ताओ, कन्फ्यूशियस, सांख्य योग, बौद्ध, जैन जैसे धर्म इसी पावन एवं उर्वर भूमि में जन्में और इनकी वैचारिक उद्भावनाएँ ईसा पूर्व पाँच छः शताब्दियों में ही नवीन चेतना के रूप में प्रतिष्ठित हुई। इनमें से भारतवर्ष में प्रादुर्भूत बौद्ध धर्म व्यापक, मानवीयता, करुणा और नैतिकता का अधिक पोषक माना गया और इसका प्रसार शिष्टता एवं अत्यन्त आदर के साथ पूरे एशिया खण्ड में आरम्भ से ही होने लगा। इस धर्म में किसी सद्विचार का विरोध नहीं था, किसी जीवधारी का अहित चिन्तन नहीं था अपितु समन्वयात्मक विश्व कल्याण की भावना थी। इस देश में प्राचीन काल से यह भावना अनजानी न थी किन्तु कुछ शतकों के बीच लौकिक जीवन का नेतृत्व राजाओं और पुरोहितों श्रेष्ठियों और ऋत्विजों के अधीन हो गया था। ये लोग शक्ति धन और देवपूजा द्वारा अपने भोग और सुविधाएँ जुटाना ही अपने जीवन का लक्ष्य मानने में लगे थे। अतः जन सामान्य के कष्ट से तृप्त गौतम बुद्ध ने भरी तरुणाई में व्यक्तिगत सुख से मुँह मोड़कर मानवता के उद्धार में ही अपनी शान्ति एवं निर्वाण प्राप्ति की सिद्धि की ओर कृतज्ञ जनता उनके वचनामृतों से अपनी जीवन पद्धति निर्धारित की। भारत का यह धर्म सन्देश यूनानी, तूरानी, चीनी, जापानी, आदि शासकों में भी शिरोधार्य हुआ।[1] इस आधुनिक नये युग में भी बुद्ध उपदिष्ट धर्म को मानने वाले विदेशी लोगों की संख्या भारतवासी हिन्दुओं से कहीं अधिक है और वे सब इस देश को पुण्य भूमि मानते हैं।

बौद्ध धर्म के विकसित होने पर ही संगठित शिक्षण संस्थाओं के निर्माण की ओर ध्यान दिया गया। संगठित शिक्षण संस्थाओं का जन्म पहले बौद्ध बिहारों के रूप में हुआ था। इन विहारों में बौद्ध भिक्षु और भिक्षुणियाँ रहते थे। कालान्तर में यह बौद्ध विहार विद्याध्ययन के केन्द्र के रूप में विकसित हुआ और अन्ततः इनकी परिणति विश्वविद्यालय के रूप में हुई। प्राचीन काल में नालन्दा, विक्रमशिला, वल्लभी, उदन्तपुरी आदि विश्व प्रसिद्ध बौद्ध विश्वविद्यालय थे।[2] भारत के सांस्कृतिक इतिहास में विक्रमशिला एक अविस्मरणीय पृष्ठ है, जिसे हम बार-बार दोहराना चाहते है। शिक्षा ज्ञान और संस्कृति से जुड़ा विख्यात विक्रमशिला विश्वविद्यालय हमें भारतीय इतिहास के उन खोये हुए पृष्ठों की ओर ले जाता हैं जो कभी हमारे गौरव निधि थे।

तिब्बती इतिहासकार तारानाथ, मिन्हाज-उस-सिराज की कृति तबक़ात-ए-नासिरी, आर्कियोलॉजिकल सर्वे रिपोर्ट तथा अन्य द्वितीयक स्रोतों के विवरणों से ज्ञात होता है कि विक्रमशिला विश्वविद्यालय भारत के प्राचीन बौद्ध शिक्षा देने वाले विश्वविद्यालयों में एक था। वज्रयान सिद्धान्तों के अध्ययन एवं शिक्षा देने के कारण इसने अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त की। भारत ही नहीं प्रत्युत एशिया के विभिन्न देशों से यहाँ ज्ञान पिपासु छात्र अध्ययन के लिए आते थे। तारानाथ[3] के अनुसार आठवीं शताब्दी में पालवंश के राजा धर्मपाल ने विक्रमशिला विहार की स्थापना की।[4] इतिहासकारों में मतभेद है कि विक्रमशिला वास्तव में कहाँ पर स्थित है, तिब्बती स्रोतों के अनुसार ये पहाड़ी चट्टान के ऊपर गंगा नदी के तट पर मगध (बिहार) में बसा हुआ है। अलेक्जेण्डर कनिंघम[5] जिन्होंने प्राचीन भारत में बहुत से पुरास्थलों की खोज की है उन्होंने कहा कि ये एक गाँव सिलाव के पास है जो बड़ागाँव के समीप है। बनर्जी शास्त्री ने चिन्हित किया कि हुसालगंज से तीन मील दक्षिण पूर्व में क्योर[6] स्थित है। लेकिन दोनों स्थलों के समीप गंगा के न होने से उसके प्रमाणीकरण में शंका उत्पन्न होती है। राजेन्द्रलाल मित्रा[7] और सतीश चन्द्र विद्याभूषण[8] ने पहचान की कि ये भागलपुर में सुल्तानगंज में स्थित है। इसमें सन्देह कम है क्योंकि सुल्तानगंज गंगा नदी के बांये तट पर स्थित है। नन्दलाल डेज के अनुसार विक्रमशिला भागलपुर से 24 मील पूर्व पत्थरघाट में स्थित है जो कि सही प्रतीत होती है।[9] पत्थरघाट कहलगाँव की सीमा में आता है जो कि गँगा नदी के बायें तट पर स्थित है, बहुत से बौद्ध पत्थर, मूर्तियाँ, टेराकोटा की तांत्रिक यक्ष यक्षणियाँ पाई गई है। फ्रैंकलिन का यह मानना है कि पत्थर घाट का नाम संस्कृत के सिला संग्रमा से बना है। एन0पी0 चक्रवर्ती[10] ने विहार का क्षेत्र वटेश्वर और पत्थरघाट के समीप बताया। परिणामस्वरूप पत्थरघाट और उसके आसपास के क्षेत्र संरक्षित स्थल के रूप में घोषित कर दिये गए। हैमिल्टन[11] ने एंटीचक[12] गाँव में मिले अवशेषों का ऐतिहासिक दृष्टि से निरीक्षण किया। अब तक के ओल्डमैन पहले व्यक्ति है जिन्होंने 1930 में एन्टीचक में मिले अवशेषों को विक्रमशिला विहार से जोड़कर देखा।

विक्रमशिला अपने समय का सर्वश्रेष्ठ विहार था। विक्रमशिला विश्वविद्यालय पूर्ण नियोजित व आवासीय था। जिसमें आजकल के संस्थान के समान छह कालेज या संस्थान थे जो एक केन्द्रीय हाल में छह फाटकों से सम्बद्ध थे। इस हाल को विज्ञान-गृह

कहते थे। छहों में द्वार पण्डित थे। छः फाटक छः सस्थानों का नेतृत्व करते थे, इन संस्थानों में व्याख्यान के लिए महत्त्वपूर्ण हाल होते थे। ये सारे संस्थान मजबूत चहारदीवारी से घिरे थे।[13] विक्रमशिला विश्वविद्यालय के मध्य में एक मन्दिर था जिसमें महाबोधि की मूर्ति थी। अन्य मन्दिरों की संख्या 108 थी।[14] विश्वविद्यालय में नालन्दा की भाँति बहुत सम्पन्न पुस्तकालय भी था। वहाँ पर व्याकरण, तर्कशास्त्र, दर्शन, न्याय कला, आयुर्वेद और साहित्य की अलभ्य पुस्तकों का संग्रह था। यहाँ पर प्रारम्भिक बौद्ध दर्शन के साथ-साथ तन्त्रवाद पर भारी संख्या में संग्रह उपलब्ध है।[15] 400 वर्षों तक शिक्षा केन्द्र के रूप में इसने अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त की थी। तिब्बती विद्वानों के लिए एक अतिथि गृह था जहाँ तिब्बत से ज्ञान पिपासु भारतीय पण्डितों के चरणों में बैठकर अध्ययन करने आते थे।[16] चहारदीवारी के बाहर मुख्य द्वार पर एक 'धर्मस्व' था, जिसमें देर से आने वाले अतिथि और पथिक निवास करते थे।

बंगाल के राजा धर्मपाल ने विक्रमशिला को संरक्षण प्रदान किया और 108 उच्च अध्यापकों की नियुक्ति की और सैकड़ों सहायक अध्यापक थे कुछ लोगों का मानना है कि 114 की नियुक्ति की।[17] सुदूर मंगोलिया तक से छात्र यहाँ शिक्षा प्राप्त करने के लिए आते थे। छात्रों के लिए आवास और भोजन की व्यवस्था विश्वविद्यालय की ओर से की जाती थी। ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि बारहवीं शताब्दी तक विक्रमशिला में विद्यार्थियों की संख्या 3000 तक हो चुकी थी।[18] विश्वविद्यालय का प्रबन्धन एक बोर्ड द्वारा होता था। नालन्दा और विक्रमशिला दोनों का प्रबन्ध एक ही बोर्ड के हाथों में था, जो कि पाल राजाओं द्वारा गठित किया गया था। इस बोर्ड तथा समीति के सदस्य द्वारपण्डित होते थे। इसका अध्यक्ष महास्थविर कहा जाता था जो आजकल के कुलपति के समकक्ष था। भिक्षु प्रोफेसर बहुत ही सादा जीवन व्यतीत करते थे।[19] यह विश्वविद्यालय तन्त्र साधना का प्रसिद्ध केन्द्र था महायान शाखा क माध्यमिक तथा योगाचार सिद्धान्तों के विभाग ख्याति प्राप्त थे। तिब्बत के अनेक छात्र यहाँ आते थे।

यहाँ शिक्षण का माध्यम संस्कृत भाषा थी। पाठ्य विषय मुख्यतः व्याकरण, तर्कशास्त्र, तन्त्रशास्त्र, वेद, उपनिषद् तथा दर्शनशास्त्र थे। विक्रमशिला को उत्तर भारत में तांत्रिक बौद्धधर्म का गढ़ माना जाता था। यहाँ के आचार्यों में अनेक उच्च कोटि के तांत्रिक थे। विक्रमशिला का पाठ्यक्रम जितना व्यवस्थित था, उतना अन्य किसी भारतीय विद्यापीठ का नहीं था। यहाँ के स्नातकों को समावर्त्तन के अवसर पर बंगाल के शासकों की ओर से उपाधि या प्रमाण-पत्र दिये जाते थे तिब्बती स्रोत हमें जानकारी देते हैं कि जेतारि और रत्नवज्र ने राजा महिपाल और कनक के हाथों से डिग्री प्राप्त की थी।[20] स्थानीय विशिष्ट विद्वानों की स्मृति को सर्वदा ताज़ी बनाये रखने के लिए विहार की कक्ष की दीवारों पर उनके चित्र बना दिये जाते थे। नागार्जुन और अतिश को यह सम्मान प्राप्त हुआ था।[21]

नालन्दा की भाँति विक्रमशिला के दरवाजें पर प्रवेश द्वार पर ही द्वारपण्डित होते थे जो किसी भी प्रवेश की पात्रता की परीक्षा लेकर ही अन्दर प्रवेश करने देते थे। विश्वविद्यालय में कुछ दिन अध्यापन करने के बाद जब शिक्षक अपनी योग्यता सिद्ध कर देते थे तो किसी विद्वान शिक्षक को द्वारपंडित बनाया जाता था। तिब्बत परम्परा के अनुसार विक्रमशिला में द्वारपंडित को गो-स्रम कहा जाता था। कनक या चणक का शासन काल ईसवी सन् 955-983 तक था, इस काल में विक्रमशिला में निम्न द्वारपंडित थे[22]- रत्नाकर शान्ति को पूर्वी द्वार पर द्वारपंडित नियुक्त किया गया, इन्होंने ओदन्पुरी विश्वविद्यालय से शिक्षा ग्रहण की थी, बाद में ये विक्रमशिला आ गये और यहाँ पर अध्ययन किया। विक्रमशिला में इनके शिक्षक थे आचार्य जेतारि। कुछ समय पश्चात् श्रीलंका के राजा के निमंत्रण पर ये श्रीलंका चले गये और वहाँ पर उन्होंने बौद्ध धर्म की शिक्षा दी और प्रचार-प्रसार किया। इन्हें महाचार्य की उपाधि दी गई थी। वागीश्वरकीर्ति विक्रमशिला विश्वविद्यालय के पश्चिमी द्वार के द्वारपंडित थे, ये बनारस के मूल निवासी थे, ये तारादेवी के उपासक थे और संस्कृत में तन्त्रविधा पर एक ग्रन्थ भी लिखा था, इन्हें दीपंकर श्रीज्ञान अपने साथ तिब्बत ले गये और वहाँ पर इन्होंने बौद्ध दर्शन एवं तन्त्रविद्या का प्रचार किया कनक ने इन्हें भी महापंडित की उपाधि दी थी। नारोपा विक्रमशिला में कुछ समय शिक्षक थे। इसके पश्चात् इन्हें उत्तर द्वार पर द्वारपंडित नियुक्त किया गया। नारोपा शास्त्रार्थ में कुशल थे। वाक्चातुर्य इनमें गज़ब का था। इन्हें बौद्ध धर्म के प्रति अटूट निष्ठा थी और ये धर्म के प्रचार-प्रसार में ही रुचि लेते थे। प्रज्ञाकरमति विक्रमशिला विश्वविद्यालय के दक्षिण द्वार के द्वारपंडित थे। संस्कृत में कई पुस्तकें लिखी। दो पुस्तकें इनकी तिब्बती भाषा में थी। तिब्बत में इनके दार्शनिक ज्ञान की बड़ी प्रशंसा थी। रत्नवज्र विक्रमशिला विश्वविद्यालय के प्रथम केन्द्रीय द्वार के ये द्वारपंडित नियुक्त हुए। इनका मूल निवास स्थान कश्मीर था ये कश्मीर से विक्रमशिला आए और उच्च कोटि की विद्वता प्राप्त की। इन्होंने तिब्बती भाषा का गहन अध्ययन किया और तिब्बत आकर अनेक ग्रन्थों का

तिब्बती भाषा में अनुवाद किया। बौद्ध दर्शन का प्रचार- प्रसार तिब्बत में किया। रत्नव्रज को राजा कनक के हाथ से महापंडित की उपाधि मिली थी। ज्ञानश्रीमित्र विक्रमशिला के द्वितीय केन्द्रीय द्वार के द्वारपंडित थे, महापंडित ज्ञान श्रीमित्र बंगाल के निवासी थे, इन्होंने संस्कृत के अनेकों ग्रन्थों की रचना की थी तीन तर्कशास्त्र की पुस्तकों के भी रचयिता थे।

इस प्रकार ये स्पष्ट हो जाता है कि विक्रमशिला के द्वारपंडित साधारण चौकीदार नहीं थे बल्कि उच्चकोटि के विद्वान और प्रशासकीय गुणों के परिचायक थे। दसवीं, ग्यारहवीं और बारहवीं शताब्दी में भारतीय समाज में अनेक प्रकार के मत प्रचलित थे लेकिन उन सब पर तांत्रिक पद्धतियों का प्रभाव था। वैष्णव, शैव, शाक्त, जैन, बोद्ध सभी तान्त्रिकों के प्रभाव में थे। बौद्ध धर्म धीरे-धीरे ह्रासोन्मुख था। ब्राह्मण और क्षत्रिय वैष्णव धर्म के समर्थक थे। वैष्णवों पर श्रावकों का प्रभाव बढ़ रहा था और शूद्रों में ही बौद्ध धर्म लोकप्रिय था। संघों में यद्यपि व्याभिचार फैला हुआ था। किन्तु कुछ वज्रयानी सिद्ध महायान की प्रतिष्ठा को बढ़ाने में संलग्न थे। बौद्ध धर्म की महायान शाखा के प्रचार-प्रसार का कार्य नालन्दा, विक्रमशिला और ओदन्पुरी विश्वविद्यालय के छात्र एवं अध्यापक कड़ी लगन से कर रहे थे। तिब्बती स्रोतों से हमें विक्रमशिला के शिक्षा मनीषियों के विषय में जानकारी प्राप्त होती है।[23] नारोपा जो द्वारपंडित भी थे। नालन्दा में नारोपा प्रसिद्ध तत्वज्ञानी और प्रभावशाली आचार्य थे उन्होंने अपने एक शिष्य को सिंघल में महायान की स्थापना के लिए भेजा था उस शिष्य का नाम था रत्नाकर शान्ति। रत्नाकर शान्ति ने ओदन्तपुरी में दीक्षा ली थी और वे विक्रमशिला के आचार्य थे, नारोपा बौद्ध दर्शन की महायान शाखा की बारीकियों से परिचित थे और उस दर्शन को विक्रमशिला में बड़ी कुशलता से पढ़ाते थे। जातकों में नारोपा के ज्ञान की प्रशंसा की गई है। श्रीलंका के साहित्य में भी नारोपा का यश वर्णित है। नारोपा के प्रसिद्ध शिष्य रत्नाकर शान्ति थे। ये कुछ समय तक विक्रमशिला के कुलपति थे। शिक्षण भी करते थे। अपनी सत्यनिष्ठा और सफल शिक्षण के लिए विख्यात थे। बौद्ध धर्म के प्रचार में बड़ी रुचि लेते थे। रत्नाकर शान्ति ने देशभर में बौद्ध धर्म का झंडा गाड़ दिया था, किन्तु विहारों में प्रचलित भ्रष्टाचार से वे अत्यधिक पीड़ित थे। उनकी गिनती चौरासी सिद्धों में होती थी, किन्तु वे कितने विक्षुब्ध थे, इसका अनुमान उनके 'साध्य-चिन्तन' से लगता है। रत्नाकर शान्ति की जो मनः स्थिति थी आज विश्वविद्यालयों के चिन्तनशील आचार्यों की भी मनोदशा वैसी ही समझ पड़ती है। उन्हें अनेकानेक सामयिक आन्दोलनों के प्रचार के लिए देशभर में भेजा जाता है और वे जनसंख्या-शिक्षण, अभिक्रमित अधिगम, अनुदेशन-सामग्री, मूल्यांकन- प्रविधि जैसी अनेकानेक शब्दावली गढ़कर प्रशिक्षण संस्थानों में झण्डा गाड़ने का प्रयत्न करते हैं। रत्नाकर शान्ति के समय में भी अघोरवज्र कालसमयवज्र जेतारि आदि आचार्य, इसी प्रकार के कार्यों में व्यस्त थे। उन्हें साधारण जनता के सुख-दुःख से कोई सहानुभूति नहीं थी। मगध में दुर्भिक्ष पड़ा लोग त्राहि-त्राहि करने लगे, जनता दाने-दाने को मोहताज थी और विक्रमशिला के महाश्रमण प्रसन्न थे कि लोक को बौद्ध धर्म से बैर करने का दण्ड मिल रहा है। रत्नाकर शान्ति से यह सब सहा नहीं गया और विहारों की अतुल सम्पत्ति को उन्होंने जनता में बटवा दिया। उन्हें संघ के अनुशासन की मिथ्या धारणा में असक्ति नहीं थी। आज के कुछ विचारक रत्नाकर शान्ति के समान वर्तमान परिस्थितियों पर सोचते तो हैं किन्तु उनमें सत्य को स्वीकारने का साहस नहीं है। इन्होंने संस्कृत में तेरह पुस्तक लिखी और बौद्ध धर्म का प्रचार सीलोन में भी किया। दीपंकर श्रीज्ञान का जन्म सन् 980ई0 में हुआ था इनका मूल नाम चन्द्रगर्भा था। ये जेतारि के शिष्य थे। ओदंपुरी विश्वविद्यालय के शिक्षक आचार्य शीलरक्षित ने इनका नाम दीपंकर श्रीज्ञान रखा। इन्हें दीपंकर आतिश भी कहा जाता था। इनकी ख्याति 'गुच्छ ज्ञानवज्र' के नाम से भी थी क्योंकि ये तन्त्रशास्त्र के सिद्ध ज्ञाता थे। विक्रमशिला विश्वविद्यालय के तन्त्र विभाग में कुछ दुर्बलताएँ आने लगी थी और कुछ भ्रष्टाचार पनपने लगा था। शालीन और संतुलित व्यक्तित्व के स्वामी आचार्य श्री दीपंकर तन्त्र. के अघोरी और निकृष्ट क्रियाकलापों तथा इसके चमत्कारिक प्रयोगों के विरूद्ध थे। यही कारण है कि इन्होंने मैत्रीगुप्त नामक एक बौद्ध तांत्रिक साधक को विक्रमशिला से निष्कासित कर दिया था। मैत्रीगुप्त अपनी तन्त्रविद्या की शक्ति के बल पर दूध को मदिरा में परिवर्तित कर देता था और चर्म पर बैठकर गंगापार कर जाता था। बौद्ध धर्म के विकास में तिब्बत का महत्त्वपूर्ण स्थान है और तिब्बत में बौद्ध धर्म की नींव को मजबूत करने और इसे पुनर्स्थापित करने में विक्रमशिला के आचार्यों की भूमिका श्लाघनीय है- जिनमें श्रीज्ञान दीपंकर का स्थान विशिष्ट है। आचार्य दीपंकर श्रीज्ञान आतिश 1042ई0 में नेपाल होते हुए विक्रमशिला से तिब्बत गये। उनके साथ करीब तीन दर्जन विद्वान भी तिब्बत गये। तिब्बत जाकर आतिश ने तिब्बती बौद्ध धर्म में कई महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किये। इस परिवर्तन और परिमार्जन के उपरान्त बौद्ध धर्म को तिब्बत के राष्ट्रीय धर्म के रूप में मान्यता मिली। उन्होंने अपने उपदेशों का आधार योगाचार परम्परा को बनाया, हीनयान और

महायान के उपबन्धों पर समन्वित दृष्टिकोण बनाया तथा जादूगरी के करतबों को हतोत्साहित कर भिक्षुकों के माहात्म्य को पुनर्स्थापित किया। आतिश अपने साथ 'लामावाद' को भी तिब्बत ले गये जिसकी जड़े विक्रमशिला में विकसित तांत्रिक महायान बौद्ध धर्म में सन्निहित थी। वे तिब्बत में लामावाद के सबसे बड़े सुधारक माने जाते हैं। उन्होंने वंशवादी एवं इतर तत्वों को दूरकर बौद्ध धर्म में मानो एक प्रकार से पुनर्जागरण ही ला दिया। तिब्बती बौद्ध धर्म के इतिहास में आतिश का आगमन सबसे बड़ी घटना मानी जाती है। आतिश के उपदेश मानवीय तत्वों पर आधारित होते थे। उनके संदेश का सार था 'इस क्षणभंगुर संसार के दुःखों को सहना अत्यन्त दुश्कर कार्य है। अतः मनुष्य को समस्त जीवित प्राणियों की भलाई के लिए मेहनत करना चाहिए। तिब्बत में आतिश की मान्यता इस बात से समझी जा सकती है कि वहाँ उन्हें मंजुश्री का अवतार माना जाता है और भगवान् बुद्ध तथा पद्मसंभव के बाद उनकी ही गणना होती है। आचार्य श्रीज्ञानदीपंकर आतिश का विक्रमशिला से अत्यन्त लगाव था। अपने तिब्बत प्रवास में भी वे विक्रमशिला को भूल नहीं पाये। विक्रमशिला के कुछ समय दीपंकर श्रीज्ञान विद्यमान थे। ये विक्रमशिला में रहते हुए भी अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के प्रोफेसर थे। इन्होंने लगभग 200 ग्रन्थों की रचना की थी, कुछ ग्रन्थों का अनुवाद भी किया था।[24] उस समय नेपाल तिब्बत एवं चीन की राजनीति में रुचि ली थी। एक प्रकार से वे शिक्षक-राजनीतिज्ञ थे। जेतारि विक्रमशिला विश्वविद्यालय के छात्र थे। बाद में इनकी नियुक्ति इसी विश्वविद्यालय में शिक्षक के पद पर हो गई। इसके बाद ये तन्त्र विभाग के आचार्य बने। दसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में ये विक्रमशिला के प्रमुख आचार्य थे। इन्होंने लगभग 100 पुस्तकों की रचना की थी। जो तन्त्र पर थी। ये रत्नाकर शान्ति और दीपंकर श्रीज्ञान जैसे महान शिक्षकों के शिक्षक थे। ये अपने छात्रों के प्रश्नों का सदा युक्तिपूर्वक उत्तर देते थे। छात्रों को प्रश्न करने के लिए प्रेरित भी करते थे। अभयंकर गुप्त का नाम विक्रमशिला के प्रसिद्ध शिक्षकों में आता है। ये बंगाल के रहने वाले थे। राजा रामपाल के शासनकाल में ये विक्रमशिला में पढ़ाते थे। तन्त्र के ये अधिकारी विद्वान थे। इन्होंने संस्कृत में 27 ग्रन्थों की रचना की थी और सात पुस्तकों का तिब्बती भाषा में अनुवाद किया था। वैरोचन रक्षित का काल 728 ईसवीं से 864ई0 के मध्य था। इन्होंने पद्मसम्भव से शिक्षा ग्रहण की थी। इन्हें महाचार्य या महापंडित की उपाधि मिली थी। ये बाद में तिब्बत चले गये और पद्मसम्भव के साथ बौद्ध धर्म का प्रचार करने में जुट गये। तथागत रक्षित का जन्म व प्रारम्भिक शिक्षा उड़ीसा में हुई। विक्रमशिला में आकर उच्च अध्ययन किया और वहीं पर तन्त्र के आचार्य नियुक्त हो गये। संस्कृत में इन्होंने नौ ग्रन्थों की रचना की और ग्यारह पुस्तकों का तिब्बती भाषा में अनुवाद किया इन्हें महापंडित की उपाधि मिली थी।

प्रजानकरामति विक्रमशिला विहार के चौकीदार थे इन्होंने कई पुस्तकें लिखी इनमें से दो तिब्बत में हैं। इन सबके अतिरिक्त जनाश्री, रत्नवज्र, वीर्यसिम्हा, रत्नाकीर्ति, शाक्यश्रीभद्र आदि विक्रमशिला के प्रमुख आचार्य एवं विद्वान थे। इस प्रकार विक्रमशिला विश्वविद्यालय के आचार्यों की विद्वता व ख्याति भारत की सीमा को पार कर तिब्बत, मध्य एशिया, चीन, मंगोलिया व जापान तक पहुँच गई थी। इस विश्वविद्यालय के अन्तिम आचार्य थे- शाक्यश्रीभद्र। 1203ई0 में बख्तियार खिलजी के नेतृत्व में मुसलमानों इस विहार को नष्ट कर दिया।[25] यहाँ के हजारों छात्र और अध्यापकों का कत्ल कर दिया गया। शाक्यश्रीभद्र कुछ साथियों के साथ जान बचाकर किसी प्रकार तिब्बत भाग गए। इस प्रसिद्ध विहार का ऐसा दुःखद अन्त हुआ। अब इसके खण्डहर ही शेष हैं। नालन्दा विश्वविद्यालय के बाद अब प्राचीन विक्रमशिला विश्वविद्यालय का गौरव भी लौटैगा। शिक्षा जगत में प्राचीन काल से अपनी पहचान रखने वाले नालन्दा विश्वविद्यालय को एक बार फिर जीवन्त करने में मिली सफलता के बाद बिहार सरकार ने राज्य में ही अस्तित्व में रहे विक्रमशिला विश्वविद्यालय को यर्थात् में लौटाने की कोशिश शुरू कर दी है।[26] पटना विश्वविद्यालय की एक रिसर्च टीम ने 1960-1969ई0 तक विक्रमशिला क्षेत्र में खुदाई करवाई। दूसरी बार खुदाई सौ एकड़ जमीन पर विक्रमशिला के खण्डहरों पर वी.एस. वर्मा के निर्देशन में आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया द्वारा की गई। बड़ी संख्या में बुद्धिस्ट तथा हिन्दू स्तूप लायब्रेरी के बगल में एअर कण्डिशन जैसी सुविधाओं से युक्त पाये गये। राष्ट्रीय लोक समता पार्टी, जो एन.डी.ए. के एक घटक दल है, के जनरल सेक्रेटरी कुशवाहा जी ने नितीश कुमार की गवर्नमेन्ट को विक्रमशिला के प्राचीन गौरव को लौटाने के लिए कोई भी शुरूआत करने का कहा।[27]

सन्दर्भ

[1]डा0 गोविन्द चन्द्र पाण्डेय -*बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास,* पृष्ठ संख्या 4

[2]*मझिम निकाय,* भाग-1, पृष्ठ संख्या 377

[3]*तारानाथ ने अपना मूल कार्य तिब्बती भाषा में किया। वह 1575ई0 में पैदा हुए। इनकी कृति पहले रूसी भाषा में 1869ई0 में फिर जर्मन व जापानी भाषा में मुद्रित हुए। लामा चिमन्या (विश्वभारती, कलकत्ता) अलका चट्टोपाध्याय ने अंग्रेजी में अनुवाद किया, देवी प्रसाद चट्टोपाध्याय ने इसका सम्पादन किया और 1970ई0 में इन्स्टीट्यूट ऑफ एडवान्स स्टडीज़, शिमला से ''तारानाथस हिस्ट्री ऑफ बुद्धिज़्म इन इण्डिया'' नामक शीर्षक से प्रकाशित हुई आरम्भिक विक्रमशिला के इतिहास पर इसमें प्रमाणिक अन्य पुस्तक नहीं मिलती।*

[4]जितेन्द्र कुमार वशिष्ट -*भारतीय शिक्षा का इतिहास,* दिल्ली, 2005, पृष्ठ संख्या 55

[5]*आर्कियोलॉजिकल सर्वे रिपोर्ट, 1862,* कनिघंम VIII, पृष्ठ संख्या 75

[6]*क्योर : विक्रमशिला का पुरास्थल है,* जर्नल ऑफ बिहार रिसर्च सोसाइटी, 1929, XV, पृष्ठ संख्या 269-76

[7]*जर्नल ऑफ एशियाटिक सोसाइटी रिसर्चर्स, 1864,* कलकत्ता XXXIII, पृष्ठ संख्या 360-74

[8]*जर्नल ऑफ एशियाटिंक सोसाइटी ऑफ बंगाल,* 1909

[9]पूर्ववत्

[10]आर0के0 चौधरी -*दा यूनिवर्सिटी ऑफ विक्रमशिला बिहार रिसर्च सोसाइटी,* पटना, 1975, पृष्ठ संख्या 3

[11]हैमिल्टन -*ऐज एकाउन्ट ऑफ दा डिस्ट्रिक्ट ऑफ भागलपुर 1810-11,* बिहार एण्ड उड़िसा रिसर्च सोसाइटी पटना, 1929, बी0एस0 वर्मा -*फरदर एक्सकेवेशनस ऐट एन्टीचक,* जर्नल ऑफ बिहार पुराविद परिषद्, वाल्यूम-II, पृष्ठ संख्या 154-7, 1-97

[12]*एन्टीचक गाँव* (कहलगाँव रेलवे स्टेशन के समीप पत्थरघाट) भागलपुर जिले में स्थित है।

[13]पी0एन0 बोस -*इण्डियन टीचर्स ऑफ बुद्धिस्ट मोनास्ट्रीज़,* मद्रास, 1923, पृष्ठ संख्या 30

[14]मालती सारस्वत, नीता सिन्हा एवं मदन मोहन -*भारतीय शिक्षा का इतिहास,* इलाहाबाद, 2013, पृष्ठ संख्या 60

[15]*पूर्ववत्*

[16]एस0सी0 दास -*इण्डियन पण्डित्स इन दा लैण्ड ऑफ स्नो,* कलकत्ता, 1893, पृष्ठ संख्या 58

[17]डी0जी0 ऐप्टे -*यूनीवर्सिटी इन एन्शियेन्ट इण्डिया,* एजूकेशन एण्ड साइकोलॉजी एक्सटेन्शन नं0 11, महाराजा सायाजीराव, यूनिवर्सिटी ऑफ बड़ोदा, पृष्ठ संख्या 47-48

[18]पूर्ववत्, पी0एन0 बोस, पूर्ववत्, पृष्ठ संख्या 127

[19]पी0एन0 बोस, पूर्ववत्, पृष्ठ संख्या 35

[20]पी0एन0 बोस, पूर्ववत्, पृष्ठ संख्या 47-61

[21]जितेन्द्र कुमार वशिष्ट, पूर्ववत्, पृष्ठ संख्या 56

[22]एस0सी0 विद्याभूषण -*हिस्ट्री ऑफ मेडिवल स्कूल ऑफ इण्डियन लॉजिक,* कलकत्ता, 1909, तारानाथ, हिस्ट्री ऑफ बुद्धिज़्म, पृष्ठ संख्या 395

[23]पी0एन0 बोस, पूर्ववत्, पृष्ठ संख्या 32-105

[24]*पूर्ववत्*

[25]*रावर्टी ट्रान्सलेशन ऑफ तबक़ात-ए-नासिरी,* वाल्यूम-I, 1881, पृष्ठ संख्या 552

[26]*Khabar, ndtv.com/*topic/vikramshila-university, रविवार, सितम्बर, 1914

[27]*www.news18.com/*news/bihar/centre-working-to-rebuild-ancientvikramshila- univrsity-upendrakushwaha 716315.htm/

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777
भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 10,28-33
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 15 नवम्बर 2016

स्वामी विवेकानन्द के शैक्षिक विचारों की वर्तमान परिप्रेक्ष्य में प्रासंगिकता

दीप्ति सजवान* एवं डॉ. अनोज राज**

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *स्वामी विवेकानन्द के शैक्षिक विचारों की वर्तमान परिप्रेक्ष्य में प्रासंगिकता* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखक *दीप्ति सजवान एवं अनोज राज* घोषणा करते हैं कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेते हैं, क्योंकि हमने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देते हैं। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह हमारी मौलिक कृति है। हम शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देते हैं। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देते हैं।

सारांश

भारतवर्ष आदिकाल से महापुरूषों की जन्मभूमि माना गया हैं। इन सभी महान आत्माओं ने भारतीय सांस्कृतिक विरासत को अपनी आध्यात्मिक विचारधाराओं से विकसित किया। इन सभी ने धर्म प्रचार के कार्य के साथ-साथ शिक्षा के समाधान हेतु भी अपने मौलिक विचार प्रस्तुत किये। ऐसे ही बहुआयामी व्यक्तित्व, महान आध्यात्मवेत्ता, ओजस्वी वक्ता, अप्रतिम प्रतिभा के स्वामी, आलौकिक गुणों से युक्त, नव-जागरण के अग्रदूत, समन्यवादी दृष्टि से युक्त भारत की महान विभूति स्वामी विवेकानन्द थे जिन्होंने वेदान्त को लोक जीवन का सबल बनाया और सर्वसाधारण की शिक्षा, युवा शिक्षा व स्त्री शिक्षा पर बल देते हुए शिक्षा द्वारा समाज को नवीन शिक्षा देने के प्रयास किये व समाज से सम्बन्धित विभिन्न समस्याओं पर चिंतन मनन करते हुए, उनके समाधान हेतु अनेक सुझाव दिये जो आज भी प्रासंगिक हैं।

शब्द कुन्जी : स्वामी विवेकानन्द, शिक्षा दर्शन, चरित्र-गठन, जन-शिक्षा, स्त्री-शिक्षा, युवा-शिक्षा और धार्मिक-शिक्षा।

प्रस्तावना

''कभी-कभी समय की दीर्ध अवधि के बाद एक ऐसा मनुष्य हमारे इस ग्रह में आ पहुँचता है जो असंदिग्ध रूप से दूसरे किसी मण्डल से आया हुआ एक पर्यटक होता है जो उस अति दूरवर्ती क्षेत्र की जहाँ से वह आया हुआ है महिमा, शक्ति और दीप्ति का कुछ अंश इस दुःखपूर्ण संसार में लाता है, वह मनुष्यों के बीच विचरता है लेकिन वह इस मर्त्यभूमि का नहीं है। वह एक तीर्थयात्री है, एक अजनबी है। वह केवल एक रात के लिए ही यहा ठहरता है, और इस मर्त्यभूमि को धन्य कर देता है।" (भगिनी क्रिस्टिन)।

* शोध छात्रा, शिक्षाशास्त्र विभाग, हिमगिरी जी विश्वविद्यालय, देहरादून (उत्तराखण्ड) भारत। (सदस्य सम्पादक मण्डल)
** विभागाध्यक्ष, शिक्षाशास्त्र विभाग, हिमगिरी जी विश्वविद्यालय, देहरादून (उत्तराखण्ड) भारत

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

ब्रह्मस्थानन्द (2012) के अनुसार- ''धन्य है वह देश, जिसने उनको जन्म दिया है। जो उस समय इस पृथ्वी पर जीवित थे और धन्य हैं वे कुछ लोग- धन्य, धन्य-धन्य जिन्हें उनके पवित्र चरणों में बैठने का सौभाग्य मिला था।''

इस धन्य पृथ्वी पर ऐसे ही बालक नरेन्द्रनाथ दत्त या नरेन का जन्म कलकत्ता महानगर में सन 1863 ई0 को 12 जनवरी पौष सक्रान्ति के दिन प्रातः 6 बजे कर 33 मिनट 33 सेकेण्ड मे एक सम्भ्रान्त एवं प्रतिष्ठित परिवार में हुआ (सक्सेना 2004)। उनके पिता का नाम विश्वनाथ दत्त व माता का नाम भुवनेश्वरी देवी था। नरेन के व्यक्तित्व पर सर्वाधिक प्रभाव उनकी माता जी का पड़ा। उनकी माता श्रीमती भुवनेश्वरी देवी बड़ी बुद्धिमती गुणवती धर्मपरायण एवं परोपकारी थी उनकी इस प्रवृत्ति का बाल्यकाल से ही नरेन्द्र पर भी पड़ा जिसके परिणामस्वरूप वे आगे चलकर स्वामी विवेकानन्द कहलाए (पलोड़ 2012)। 17 वर्ष की अवस्था में वे रामकृष्ण के सम्पर्क में आये। प्रारम्भ में वे श्री रामकृष्ण की विचारधारा का विरोध कर रहे थे लेकिन उन से मिलने के पश्चात् वे शीध्र ही उनकी विचारधारा से प्रभावित होकर उनके परमभक्त बन गये। स्वामी विवेकानन्द ने श्री रामकृष्ण के सन्देश और विचारों को देश-विदेश में फैलानें में वही कार्य किया जो सेण्ट पॉल नें ईसा मसीह के सन्देश को फैलाने में किया था। उन्होंने रामकृष्ण द्वारा अनुभव किये गये वेदान्त के सिद्धान्तों का भारत व अमेरिका में प्रचार-प्रसार किया। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि वेदान्त का द्वार समस्त प्राणियों के लिये खुला रहे, जाँति-पाँति, रंग-भेद, आचार-विचार और स्त्री पुरूष का भेदभाव किसी के लिये बाधक न हो (मदान 2013)। स्वामी विवेकानन्द ने वेदान्त के उपदेशों का भारत में ही नहीं वरन् एशिया, यूरोप और अमेरिका में भी व्यापक रूप से प्रचार किया। उन्होंने अपने गुरू श्री रामकृष्ण परमंहस के विचारों और उपदेशों के प्रचार के लिए और जगत् के कल्याण के लिये 1 मई 1897 को उन्होंने रामकृष्ण मठ का निर्माण कराया (पचौरी 1998)। अपने अल्पकालीन जीवन में मानव कल्याण के लिये स्वामी जी ने जो आध्यात्मवाद तथा भारतीय दर्शन के मौलिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया, जो इस ब्रह्माण्ड में हमेशा उपस्थित रहेंगे।

स्वामी विवेकानन्द द्वारा प्रतिपादित विचारधारा से जनमानस को अवगत कराने के उद्देश्य से तथा वर्तमान परिप्रेक्ष्य में उनके विचारों की प्रासंगिकता को जाँचने के उद्देश्यानुसार उनके विचारों का विवेचन निम्नलिखित रूप से प्रस्तुत किया जा रहा है :

जीवन दर्शन; स्वामी जी अत्यधिक चेतनशील थे, उनके मन में अनेक प्रश्न उठते रहते थे जिनका उत्तर या तो वे स्वयं ढूंढ लेते या उन उत्तरों को प्राप्त करने में अपने गुरू रामकृष्ण जी का सहयोग लेते थे। उनके जीवन दर्शन के प्रमुख तत्व थे- ईश्वर या बह्म, जगत, मानव, आध्यात्मिक विश्वकेता और सत्य ज्ञान (सक्सेना 2014)।

शिक्षा दर्शन; 21वीं शताब्दी के इस दूसरे दशक में जहाँ सम्पूर्ण विश्व व्यवसायिक शिक्षा व कौशल विकास की गुणवत्ता के प्रति चिन्तित व युद्धरत दिखाई देता है (अनिल 2015)। वहीं दूसरी तरफ इस चिन्ता से निजात हेतु व इस व्यवसायिक शिक्षा व कौशल विकास में विजय हेतु विवेकानन्द का शिक्षा दर्शन मानव का मार्ग दर्शन करता है। विवेकानन्द जी का शिक्षा दर्शन हमें उपाय प्रदान करता है, कि किस प्रकार व्यवसायिक कुशलता को प्राप्त किया जा सके? व कौशलों का विकास कैसे किया जाये? विवेकानन्द जी वर्तमान शिक्षा प्रणाली के आलोचक और व्यवहारिक शिक्षा के प्रबल समर्थक थे। उनका मानना है कि वर्तमान शिक्षा मनुष्य को जीवन संग्राम के लिए कटिबद्ध नही करती बल्कि उसे शक्तिहीन बनाती है (सिंह 2009)।

स्वामी जी छात्रों को धार्मिक व आध्यात्मिक शिक्षा देने के पक्षधर थे, उनका मानना था कि शिक्षा व्यक्ति के धर्म एंव व्यक्तिगत अनुभवों पर आधारित होनी चाहिये (माथुर 2009)। असम्बद्ध सूचनाओं तथा तथ्यों को रट लेना शिक्षा नहीं है। यदि शिक्षा का अर्थ जानकारी एकत्रित करना होता तो पुस्तकालय सबसे बड़े सन्त कहलाते तथा विश्व-कोष महान ऋषि बन जाते। उनका मानना था कि हमें ऐसी शिक्षा व प्रशिक्षण की आवश्यकता है, जिसका उद्देश्य मानव का निर्माण करना है। स्वामी जी ने यूरोप के अनेक नगरों का भ्रमण किया और देखा कि वहाँ के समाज नें शिक्षा के माध्यम से अनेक भौतिक उपलब्धियाँ प्राप्त की हैं, जिससे उन्होंने अनुमान लगाया की भारत की निर्धनता का एक मात्र कारण अशिक्षा है। विवेकानन्द युवाओं को व्यवसायिक, कौशलयुक्त शिक्षा देने का समर्थन करते थे, जिससे वे अपने जीवन का निर्वाह कुशलता पूर्वक कर सकें।

स्वामी जी भारत की एकता, अंखण्डता के लिये जीवन पर्यन्त प्रयासरत् रहे साथ ही वे विदेशी भाषा की शिक्षा के समर्थक थे, यही नही वे मातृभाषा को प्रधानता देने की आवश्यकता सदैव अनुभव करते थे। उनका मानना था बालक को प्राथमिक स्तर पर शिक्षा देने का सर्वन्तिम साधन मातृभाषा है, क्योंकि मातृभाषा बालक के हृदय की भाषा है, लेकिन यदि व्यवसायिक ज्ञान की प्राप्ति करनी है तो हमें पाश्चात्य भाषा का ज्ञान अनिवार्य रूप से होना चाहिये। संस्कृति व भाषा के महत्व को स्पष्ट करते हुए उनका विचार था कि यदि हमें अपनी संस्कृति को पहचानना है, जानना है तो समस्त भाषाओं की जननी, सस्कृत भाषा का ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है। 'सस्कृत' भाषा हमारी सस्कृति की

पहचान है। समस्त धार्मिक ग्रन्थों, वेद, पुराण, उपनिषद् की रचना संस्कृत भाषा में ही कि गई है, यदि संस्कृत भाषा का ज्ञान होगा तो जीवन के गूढ़ रहस्यों को हम अपने वैदिक ग्रन्थों के माध्यम से जान सकते हैं।

विवेकानन्द के इन विचारों की तुलना यदि वर्तमान समाजिक विचारों से की जाये तो ज्ञात होता है कि कालावधि में परिवर्तन के साथ-साथ, विचारों में भी भारी परिवर्तन आये हैं। आज समाज पाश्चात्य रंग-ढ़ंग मे डूबा हुआ है, व लघुसमाज का प्रतिनिधित्व करने वाली संस्था 'विद्यालय' में अंग्रेजी माध्यम से शिक्षण कार्य सम्पन्न कराये जा रहे हैं। मातृभाषा और राष्ट्र भाषा को मात्र विषय के रूप में प्रयोग में लाया जा रहा है, यही कारण है कि छात्र अपनी संस्कृति व मूल्यों से दूर होते जा रहे हैं। विवेकानन्द कहते हैं कि- हमें अपने ज्ञान के विभिन्न अंगो के साथ-साथ अंग्रेजी भाषा और पाश्चात्य विज्ञान का भी अध्ययन करने की आवश्यकता है। हमें प्राविधिक शिक्षा और उन सब विषयों का ज्ञान प्राप्त करने की आवश्यकता है जिनसे हमारे देश में उद्योगों का विकास हो और मनुष्य नौकरियां खोजने के बजाये अपने स्वंय के लिये पर्याप्त धन का अर्जन कर सके व अपने बुरे वक्त के लिये कुछ बचा भी सके (पाठक एवं त्यागी 2008)।

विवेकानन्द शिक्षा का अर्थ एवं उद्देश्य मानव निर्माण मानते हैं, व कहते हैं कि प्रत्येक राष्ट्र के गठन का मूल कारण शिक्षा ही रही है जो राष्ट्र जितना शिक्षित होगा विश्व में उतना ही गौरव पूर्ण स्थान प्राप्त करेगा। शिक्षा, लौकिक व अलौकिक सद्गुणों से मानव को आत्म-चेतना हेतु तैयार करती है। जब मानव आत्म चेतन हो उठता है, तब उसके अन्दर यह भावना आती है- उठो, जागो, तब तक न रूको जब तक कि परम लक्ष्य प्राप्ति न कर लें (सक्सेना 2004)।

मानव की अन्तर्निहित पूर्णता को अभिव्यक्त करना ही शिक्षा है। ज्ञान मानव के स्वभाव में निहित है कोई भी ज्ञान बाहर से नही आता है सब मानव की अन्तर आत्मा में उपस्थित है। (ब्रह्मस्थानन्द, पुष्प 26) ज्ञान की प्राप्ति हेतु हमें वेदों की और लौटना पड़ेगा, क्योंकि वेद हमारी अमूल्य निधि है व प्राचीन काल से वेद हमारी अप्रतिम संस्कृति के सूचक रहे हैं। वेदों के अध्ययन के द्वारा छात्रों में स्व की भावना उत्पन्न की जा सकती है जिसका माध्यम गुरू को बनना होगा। गुरू को अपनी साधना के माध्यम से छात्र के अहंकार, अज्ञानता और उसकी कृत्रिमता को समाप्त करना होगा। विवेकानन्द जी का मानना था कि गुरू-गृहवास-गुरू के साक्षात् सम्पर्क में रहने से ही छात्र को सच्ची शिक्षा प्राप्त हो सकती है। बाल्यकाल से ही ज्वाज्वल्यमान, उज्जवल, चरित्रयुक्त, तपस्वी, महापुरूष के सानिध्य में रहना चाहिए जिससे की उच्चतम् ज्ञान का जीवन्त आदर्श सदैव दृष्टि के समक्ष बना रहे (विदेहात्मानन्द 2013)।

गुरू के प्रति आदर्शवादी दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हुये उन्होंने कहा कि माली का कार्य केवल उस पौधे को वायु, जल व पोषण उपलब्ध कराना होता है उसकी वृद्धि तो उसमें छिपी शक्ति के माध्यम से ही होती है। सारा ज्ञान हमारे भीतर निहित होता है पर उसे एक दूसरे ज्ञान के द्वारा जाग्रत करना पड़ता है (विदेहात्मानन्द 2013)। गुरू की परिभाषा देते हुये विवेकानन्द कहते हैं कि जिस व्यक्ति की आत्मा से दूसरी आत्मा में शक्ति का संचार होता है वह गुरू कहलाता है।

विवेकानन्द जी ने गुरूकुल जैसी संस्थाओं को खोलने पर बल दिया क्योंकि गुरू के सम्पर्क में रहकर ही बालक का पूर्ण विकास सम्भव है। शिक्षा से सम्बन्धित दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हुये उन्होंने शिक्षा दर्शन के सूत्र प्रस्तुत किये :

- ⇨ हमें आवश्यकता है एक ऐसी शिक्षा की जिससे हमारा चरित्र गठन हो, मानसिक दृढ़ता बढ़े, बुद्धि का विकास हो और आत्मर्निभरता प्रदान हो सके।
- ⇨ हमें आवश्यकता है एक ऐसी शिक्षा की जो हमें विदेशी अधिकार से मुक्त रहकर अपने निजी ज्ञान भण्डार व अंग्रेजी भाषा और पाश्चात्य विज्ञान का अध्ययन करने के लिये प्रेरित करे।
- ⇨ समस्त शिक्षा व प्रशिक्षणों का अन्तिम उद्देश्य मानव का विकास करना हो।
- ⇨ पुस्तकों से ज्ञान संचय करना कभी भी शिक्षा नही रही है अतः छात्रो के ऊपर पुस्तकीय ज्ञान ना थोपा जाए बल्कि बालक में निहित पूर्णता को बाहर निकालने का प्रयास किया जाए।
- ⇨ संघर्ष शक्ति और स्वावलम्बन को शिक्षा प्रक्रिया में महत्वपूर्ण स्थान दिया जाए।

चरित्र-गठन सम्बन्धी अवधारणा; समस्त शिक्षा विचारकों के समान स्वामी विवेकानन्द ने भी चरित्र निर्माण को शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य माना। मनुष्य का चरित्र उसकी विभिन्न प्रवृत्तियों की समष्टि है, भलाई और बुराई दोनों का चरित्र-गठन में समान भाग रहता है और कभी-कभी तो सुख की अपेक्षा दुःख ही बड़ा शिक्षक होता है। विवेकानन्द का मानना था कि जो शिक्षा चरित्र का निर्माण नहीं करती वो निरर्थक है। चरित्र का अर्थ है- इच्छा को सशक्त बनाकर उसे उचित दिशा प्रदान करना व नागरिकों में नैतिकता की भावना का विकास करना (निर्वेदानन्द पुष्प 152)। विवेकानन्द जी कहते हैं- ''कि मेरी समस्त भावी आशा उन नवयुवकों में केन्द्रित है जो चरित्रवान हों, बुद्धिमान हों, लोक सेवा हेतु अपना सर्वस्व न्यौछावर करने वाले और आज्ञापालक हों, जो मेरे विचारों को लक्ष्यबद्ध करने हेतु अपने प्राणों का उत्सर्ग खुशी -खुशी कर दे। स्वामी जी का मानना था कि व्यक्ति का अच्छा व बुरा चरित्र केवल उसे ही प्रभावित नहीं करता बल्कि उसके सम्पर्क में आने वाले प्रत्येक व्यक्ति को प्रभावित करता है, इसलिए बालक को ऐसी मूल्य प्रधान शिक्षा दी जाये जिससे बालक के चरित्र का निर्माण हो, और वह राष्ट्र के कल्याण में अहम् भूमिका प्रस्तुत करे।

वर्तमान शिक्षा व्यवसाय पर आधारित शिक्षा है। वह छात्रों में व्यवसायिक गुण उत्पन्न कर उसे व्यवसाय अथवा धन अर्जन के योग्य बनाती है, परन्तु जीवन जीने की कला सिखाने में यह शिक्षा पूर्ण रूप से सफल नहीं है। वर्तमान शिक्षा एवं शिक्षा नीतियां बालक का सर्वांगीण

विकास करने का सशक्त संदेश देती हैं परन्तु बोझिल शिक्षा नीतियों व पुस्तकीय ज्ञान के कारण बालक का सर्वांगीण विकास करने में सफल नहीं है। बोझिल शिक्षा के कारण ही बालकों में मूल्यों का ह्रास हो रहा है। यही कारण है कि आज का युवा अपने पथ से भटक रहा है और आधुनिक राष्ट्र के नायक मानते हैं कि राष्ट्र का विकास हो रहा है। विवेकानन्द जी का मानना था कि किसी देश की महानता केवल उसके संसदीय कार्यों से नहीं होती बल्कि उसके नागरिकों की महानता से होती है। अतः नागरिकों को महान बनाने के लिए उनका नैतिक अथवा चारित्रिक विकास परम् आवश्यक है (सक्सेना 2009)।

अतः हमें ऐसी ही शिक्षा की आवश्यकता है जो बालक को ब्रह्मचर्य पालन करने योग्य बनाये व ब्रह्मचर्य व्रत के माध्यम से बालक का बौद्धिक तथा आध्यात्मिक विकसित हो तथा वह मन, वचन और कर्म से पवित्र बन जाये।

जन-शिक्षा सम्बन्धी विचार; विवेकानन्द जन-साधारण की शिक्षा के प्रबल समर्थक थे। उनका मानना था कि आम लोगों की उन्नति से ही राष्ट्र की उन्नति सम्भव है। जन साधारण की उपेक्षा जातीय पाप है और यही हमारे राष्ट्र की अवनति का मुख्य कारण भी है। यदि भारत को पुनर्जीवित करना है तो हमें आवश्यकता है, आम लोगों को शिक्षित करने की (लोकेश्वरानन्द 1991)। वर्तमान समय में आम जनता के साक्षरता प्रतिशत में वृद्धि हुयी है परन्तु यदि वास्तविक शिक्षा का जिक्र किया जाये तो आज भी सर्वांगीण विकास करने वाली शिक्षा का अभाव है। आज की शिक्षा ने साक्षरता का रूप धारण कर लिया और मात्र हस्ताक्षर करने से ही हम शिक्षा का आंकलन करने लगे हैं। भारत की आम जनता शिक्षित हो गई है और साक्षरता का स्तर ऊँचा हुआ है, परन्तु शिक्षा के स्तर में ठहराव आ गया है जिसके कारण जनसाधारण आज भी अशिक्षित, पद्दलित व विभुक्षित है।

विवेकानन्द जी का विचार था कि ''मानवता का आदर करो, गिरे हुये लोगों को आगे बढ़ने के अवसर दो, शिक्षा कोई एकाधिकार की वस्तु नहीं है। उसे सर्वसाधारण तक पहुँचाने की व्यवस्था करो।'' सर्वसाधारण को शिक्षित बनाने हेतु उन्होंने यह सुझाव दिया कि इस कार्य को कर करने के लिये कुछ सन्यासियों को चुनना चाहिये जो घूम-घूमकर शिक्षा को प्रचार व प्रसार करे। जनसाधारण को शिक्षा मातृभाषा के माध्यम से दी जाये। उनका मानना था कि हमारे निम्नतम वर्गों के लिए एकमात्र सेवा कार्य है कि शिक्षा के द्वारा उनके खोये हुये व्यक्तित्व को पुनः स्थापित करना। वर्तमान समय में ऐसे ही ओजस्वी विचारों की आवश्यकता है जिससे समाज के निम्न वर्ग का उत्थान हो सके।

स्त्री-शिक्षा के सम्बन्ध में विचार; प्राचीन काल से ही भारत भूमि में स्त्री का स्थान पूजनीय रहा है। विवेकानन्द जी नारी स्वतन्त्रता के प्रबल समर्थक थे (पाठक एवं त्यागी 2008)। उनका मानना था कि स्त्रियों की शिक्षा का प्रसार किये बिना उन्नति का कोई उपाय नहीं है। उनके समय में नारी की स्थिति अत्यधिक दयनीय हो उठी थी और उन पर अत्याचार की सीमा बढ़ चुकी थी नारी को उनके अधिकारों से वंचित रखा जा रहा था। विवेकानन्द जी नारी की इस दशा को देखकर अत्यधिक द्रवित हो गये और उन्होंने कहा जब तक स्त्री व पुरूष दोनों में भेदभाव रखा जायेगा तब तक देश उन्नति नहीं कर सकता। जीव में एक ही आत्मा का वास है फिर स्त्री के साथ ऐसा भेद-भाव क्यों? स्त्रियां भी पुरूष के समान क्षमताये रखती हैं। स्त्रियाँ भी विदुषी होती हैं, इसका उदाहरण भारत की महान विदुषियाँ गार्गी, मैत्रेयी, अपाला, घोषा आदि हैं। जिन्होंने अपनी विद्वद्ता का परिचय महान प्रकाण्ड विद्वानों को शास्त्रार्थो में पराजित करने से दिया है। संयम व पवित्रता भारतीय नारी का जन्मजात गुण है। संयम व पवित्रता की आदर्श सीता रही है, जो पवित्र, समर्पित, चिर दुःखिनी होते हुये भी भारतीय नारी का सर्वोच्च उदाहरण है (बोधसारानन्द)। वर्तमान समय में नारी की भूमिका में भारी बदलाव आये हैं। आज की नारियाँ, पुरूषों के समान शिक्षा का अधिकार रखती हैं, लेकिन फिर भी कार्यबल में भारतीय महिलाओं की हिस्सेदारी ब्रिक देशों (ब्राजील, रूस, भारत, चीन) में सबसे नीचे है। यहाँ तक की हम नाइजीरिया, मलेशिया व सोमालिया जैसे देशों से भी पीछे हैं। हमारे कुल कार्यबल में महिलाओं की हिस्सेदारी कुल 29 फीसदी है (रमन 2014)। इसका कारण है- आधुनिक समय में उत्तम शिक्षा का अभाव। आज भी स्त्री असुरक्षा, कठोर सामाजिक बंधन व संकुचित विचाधाराओं से कुंठित है।

आज की स्त्री सफलता की ऊँची उड़ान भरने लगी है, परन्तु समाज की परम्पराओं से आज भी उसके पंख बोझिल हैं। वर्तमान समाज में सानिया मिर्जा, पी0वी0 सिंधु, साइना नेहवाल, साक्षी, मेरी कॉम, सुषमा स्वराज, प्रतिभा पाटिल, समृति ईरानी, लता मंगेशकर, आशा भोंसले, किरण बेदी, बछेन्द्री पाल, सुष्मिता सेन, पी0टी0 ऊषा, मिताली राज, ऐश्वर्य रॉय, सुनीता विलियम्स, ममता बनर्जी, उर्वशी रौतेला आदि जैसी विभिन्न क्षेत्रों में ख्याति प्राप्त स्त्रियां हैं। यद्यपि वर्तमान में मात्र कुछ स्त्रियों की सफलता के माध्यम से यह आंकलन नही किया जा सकता कि राष्ट्र की प्रत्येक नारी शिक्षित हो गयी है। आज सफल स्त्रियों की संख्या की अपेक्षा औसत से अधिक महिलायें शिक्षा के अधिकार से वंचित हैं व अपने लक्ष्यों के निर्धारण से भी अनभिज्ञ हैं (सजवाण 2015)।

विवेकानन्द जी का मानना था कि जब स्त्रियां शिक्षित होंगी तभी वीर पुत्रों को जन्म देंगी जिससे राष्ट्र का विकास होगा। उनका मानना था कि देश उसी अनुपात में उन्नति करेगा जिस अनुपात में वहाँ की स्त्रियां शिक्षित होगी। उनका विश्वास था कि इतिहास फिर करवट लेगा तथा फिर वही स्वर्ण युग आयेगा जब स्त्री के विषय मे हमारा चिंतन बदलेगा और समाज की उन्नति में स्त्रियां, पुरूषों के समान योगदान देंगी (बाबू 2014)।

युवा-शिक्षा सम्बन्धी विचार; विवेकानन्द के ओजस्वी विचारों से प्रभावित होकर पाश्चात्य अनुरागी ने कहा है कि वे ''आयु में कम, परन्तु ज्ञान में असीम थे'' (ब्रह्मस्थानन्द 2009)। उनके प्रभावशाली विचारों का आज के युवाओं के जीवन में विशेष महत्व है। उन्होंने देश के निर्माताओं को ऐसी शिक्षा ग्रहण करने के लिये प्रेरित किया जो उनका सम्पूर्ण विकास कर उन्हे पूर्णता प्रदान करे। युवाओं को सम्बोधित करते

हुये वे कहते थे ''तुम ईश्वर की संतान हो और अमर आनंद के भागी हो, पवित्र और पूर्ण आत्मा हो। अपने को दुर्बल मत समझो, उठो, साहसी बनो, वीर्यवान बनो और राष्ट्र का उत्तरदायित्व अपने कंधो पर ले लो और याद रखो की तुम, स्वयं अपने भाग्य के निर्माता हो, समस्त ज्ञान तुम्हारे अन्दर समाहित है।'' युवाओं से व्यवहारिक बातें कहते हुये उन्होंने कहा कि- ''में तुम्हें तुम्हारा गौरव याद दिलाना चाहता हूँ, कई बार मुझसे कहा जाता है कि अतीत पर नजर डालने से मन की अवनति होती है, फल कि प्राप्ति नहीं परन्तु यह सत्य है कि अतीत की नीव से ही भविष्य का निर्माण होता है। अतः कर्म करो, अतीत की ओर देखो और भारत को ऊँचा उठाओ" (बोधसारानन्द 2010)।

हे युवकों ! आगे बढ़ो ! धन रहे या ना रहे लोगों की सहायता मिले ना मिले, तुम्हारे पास भगवत प्रेम है आगे बढ़ो। कोई तुम्हारी गति नहीं रोक पायेगा। लोग चाहे कुछ भी सोचे, तुम कभी भी अपनी पवित्रता, नैतिकता व भगवत प्रेम का आदर्श छोटा मत करना और लक्ष्य प्राप्ति तक जागते रहना, चलते रहना। विवेकानन्द युवकों को सशक्त संदेश देते हुये कहते हैं कि मेरे अन्दर जो आग जल रही है, वह तुम्हारे अन्दर जल उठे, तुम्हारा मन निष्पात हो, तुम निष्कपट बनो, तुम संसार के रणक्षेत्र में वीर गति को प्राप्त करो- विवेकानन्द की तुमसे यही प्रार्थना है? (लोकेश्वरानन्द 1991)।

किसी भी देश के 'युवा' उसका भविष्य होते हैं। उन्ही के हाथों में देश की उन्नति की बागडोर होती है। आज के परिदृश्य में हमें ऐसे 'युवाओं' की आवश्यकता है जो नई ऊर्जा एवं शक्ति से ओत-प्रोत हों व देश के विकास में अपना योगदान दे सकें। आज के समय में चारों ओर भ्रष्टाचार, बुराई, अपराध का बोलबाला है जो देश की प्रगति के मार्ग को अवरूद्ध कर रहा है। ऐसे में देश की 'युवा' शक्ति को जागृत करना और उन्हे देश के प्रति कर्त्तव्यों का बोध कराना अत्यन्त आवश्यक है।

आधुनिक शिक्षा ने 'युवाओं' को व्यवसाय की चकाचौंध से इस प्रकार सम्मोहित कर दिया है कि वे वास्तविक शिक्षा का अर्थ समझ पाने में सक्षम नहीं हैं। शिक्षा ने केवल साक्षरता का स्वरूप धारण कर लिया है। कुछ डिग्रियाँ व उपाधियाँ प्राप्त करने के पश्चात युवा वर्ग अपने आप को शिक्षित समझने लगा है। वर्तमान शिक्षा ने उन्हें व्यवसायों के अवसर प्रदान कर आत्मनिर्भरता तो प्रदान की है परन्तु उनके मूल्यों को शिथिल कर दिया है। वर्तमान समय में युवाओं को विवेकानन्द जी के ओजस्वी विचारों की अत्यन्त आवश्यकता है जो उन्हे ऊर्जावान व ध्येयवादी बनाने और युवा वर्ग को राष्ट्रनिर्माण हेतु प्रेरित करने व आत्मबल प्रदान करने में सहायक होंगे।

धार्मिक-शिक्षा सम्बन्धी विचार; स्वामी जी धार्मिक शिक्षा के प्रबल समर्थक थे परन्तु धार्मिक शिक्षा के विषय में उनके विचार अन्यन्त उदार थे। वे धर्म को किसी सम्प्रदाय से न जोड़कर मनुष्य जीवन के शाश्वत् मूल्यों को अपनाने पर बल देते थे (मदान 2013)। उनका मानना था की संसार के समस्त धर्म एक हैं और सभी धर्मो का उद्देश्य एक है 'ईश्वर की प्राप्ति'। इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए सभी धर्म अपने भिन्न-भिन्न मार्ग अपनाते हैं। विवेकानन्द का मानना था कि यदि भारत में सुधार व उन्नति की आवश्यकता है तो सबसे पहले धर्म की उन्नति करनी होगी। भारत को समाजवादी व राजनीतिक विचारों से विकसित करने से पहले आध्यात्मिक विचारों को विकसित करना होगा। धर्म 'शिक्षा' की आत्मा है, परन्तु धर्म की परिधि 'सांस्कृतिक' न होकर 'व्यापक' है (सक्सेना 2004)। वास्तविक धर्म 'सिद्धान्त' अन्धविश्वासों में नहीं है। धर्म तो अनुभूति अर्थात आत्मा का साक्षात्कार है। उनका मानना था कि कोई भी व्यक्ति धार्मिक ग्रन्थों का अध्ययन करके धार्मिक नहीं बन सकता है (शर्मा 2008)। वह साधना 'एकाग्रता' चिन्तन-मनन के माध्यम से ही परमात्मा का अनुभव कर सकता है और यह आन्दानुभूति हृद्य द्वारा ही हो सकती है। वर्तमान शिक्षा केवल बुद्धि के विकास पर आधारित है। यह बालक को बौद्धिक विकास प्रदान करती है परन्तु इसमें हृद्य का परिष्कार नहीं किया जाता। यह हमारे मनस का विकास करती है परन्तु मन का तिरस्कार और परमात्मा को प्राप्त करने के लिए मन और मनस दोनों में आपसी सम्बद्धता का होना आवश्यक होता है। अतः मानव के बौद्धिक विकास के साथ-साथ आध्यात्मिक विकास भी आवश्यक है जिसकी प्राप्ति धार्मिक शिक्षा के द्वारा ही सम्भव है।

वर्तमान समय में परिवर्तन की आँधिया समाज को सभ्य बनाने के लिये प्रयत्नशील हैं, परन्तु समाज को सकारात्मक दृष्टिकोण प्रदान करने हेतु आज भी शिक्षा को जूझना पड़ रहा है। विवेकानन्द जी शिक्षा को धर्म से सम्बंद्ध करने का विचार प्रस्तुत करते हैं, परन्तु वर्तमान समय में धर्म के अर्थ में परिवर्तन आ गया है। आज समाज में धर्म सम्प्रदायों तक सीमित हो गया है। धर्म केवल मन्दिरों, मस्जिदों, गुरूद्वारों व गिरिजाघरों की सीमाओं तक ही रह गया है। मानव की विचारधारा धर्म के प्रति संकीर्ण हो गयी है, आज धर्म आत्म-साक्षात्कार का विषय न होकर कर्मकाण्डों पर आधारित हो गया है। अशिक्षा का ही दुष्प्रभाव है कि समाज में प्रायः हर दूसरे दिन धर्म के नाम पर द्वेष उत्पन्न होता रहता है, जिसके परिणामस्वरूप लड़ाई, दंगे-फसाद और खून-खराबा आम बात हो गयी है।

विवेकानन्द के सपनों का भारत आज भी उस वास्तविक शिक्षा को प्राप्त करने के लिये प्रायसरत् है जिसकी नीव धर्म पर आधारित हो। जो बालकों को हृद्य का प्रशिक्षण प्रदान कर उसके बौद्धिक विकास हेतु तैयार करे। शिकागो विश्व धर्म सम्मेलन में स्वामी जी ने कहा था- ''मुझे गर्व है कि मैं हिन्दू धर्मावलम्बी हूँ जो सहिष्णुता और विश्व बन्धुत्व की शिक्षा देता है।" जिससे स्पष्ट है कि वे ऐसे धर्म की शिक्षा के समर्थक थे जो मनुष्यों को सहिष्णुता और विश्व बन्धुत्व की शिक्षा दे। वर्तमान समय में हमें ऐसी ही महान विचारों की आवश्यकता है जिससे जन कल्याण हो सके।

मूल्यांकन

स्वामी विवेकानन्द जी द्वारा प्रतिपादित शिक्षा दर्शन एक उच्चकोटि का शिक्षा दर्शन था जिसने न केवल मनुष्य के शारीरिक, सामाजिक, चारित्रिक, धार्मिक एवं आध्यात्मिक विकास पर ही बल नहीं दिया बल्कि स्त्री शिक्षा, जन शिक्षा, धार्मिक शिक्षा व युवा शिक्षा की विस्तृत व्याख्या प्रस्तुत की। स्वामी जी के शिक्षा सम्बन्धी विचारों में प्राचीन व आधुनिक विचारों का समन्वय है। उन्होंने अपने समय की समस्याओं पर गहन चिंतन किया और उनके समाधान के लिये अनेक सुझाव दिये जो वर्तमान समय की शैक्षिक समस्याओं को सुलझाने में भी कारगार सिद्ध हो सकते हैं। विवेकानन्द जी की जन शिक्षा, स्त्री शिक्षा, युवा शिक्षा व धार्मिक शिक्षा सम्बन्धी विचारों को आज भी हम साकार रूप नहीं दे पाये हैं। उनका शिक्षा दर्शन आज एक शताब्दी के बाद भी हमारे लिये आदर्श और प्रेरणा का स्त्रोत बना हुआ है और उसे मूर्त रूप देने के लिये हम सतत् प्रयत्नशील हैं।

अतः उपरोक्त विवेचना के माध्यम से इस विषय की पुष्टि सार्थक सिद्ध होती है कि विवेकानन्द जी के शैक्षिक विचारों की प्रासंगिकता वर्तमान समय के लिए मूल्यवान तभी है जब उनके विचारों का समावेश शिक्षा व्यवस्था में करके शिक्षा को व्यवहारिक रूप प्रदान किया जाएगा।

सन्दर्भ सूची

बोधसारानन्द -*स्वामी विवेकानन्द : एक सचित्र जीवनी,* कोलकाता : अद्वैत आश्रम, पृष्ठ संख्या 8,93

बाबू, अनिल (2015) -भारतीय आधुनिक शिक्षा : स्वामी विवेकानन्द के शैक्षिक दर्शन की प्रासंगिकता, ISSN 0972-5636, दिल्ली : एन0सी0ई0आर0टी0, पृष्ठ संख्या 90,95

ब्रह्मस्थानन्द, स्वामी (2009) -*मेरा भारत अमर भारत,* नागपुर : रामकृष्ण मठ, पुष्प 186, पृष्ठ संख्या 1

ब्रह्मस्थानन्द, स्वामी (2012) -*विवेकानन्द साहित्य संचयन,* नागपुर : रामकृष्ण मठ, पृष्ठ संख्या 7

ब्रह्मस्थानन्द, स्वामी (पुष्प 26) -*शिक्षा,* नागपुर : रामकृष्ण मठ, पृष्ठ संख्या 1,13

ब्रह्मस्थानन्द, स्वामी (1993) -*विवेकानन्द साहित्य,* पंचम खण्ड, कोलकाता : अद्वैत आश्रम, पृष्ठ संख्या 179

लोकेश्वरानन्द, स्वामी (1991) -*सबके स्वामीजी,* कोलकाता : रामकृष्ण मठ, पृष्ठ संख्या 51

लाल व पलोड़ (2012) -*शैक्षिक चिन्तन व प्रयोग* मेरठ : आर0 लाल, पृष्ठ संख्या 281

मदान, पूनम (2013) -*उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक,* आगरा : अग्रवाल पब्लिकेशन, पृष्ठ संख्या 231

माथुर, के0पी0 (2009) -*शिक्षा दर्शन व शिक्षाशास्त्री,* आगरा : आर0एस0 इन्टरनेशनल, पृष्ठ संख्या 24

माथुर, एस0एस0 (2009), आगरा : विनोद पुस्तक मन्दिर, पृष्ठ संख्या 91

निर्वेदानन्द, स्वामी (पुष्प 152) -*हमारी शिक्षा,* नागपुर : रामकृष्ण मठ, पृष्ठ संख्या 73

पचौरी, गिरीश (1998) -*शिक्षा के दार्शनिक आधार,* मेरठ : आर0 लाल, पृष्ठ संख्या 424

रमन, रघु (2014) -समाचार पत्र (हिन्दुस्तान ''औरतों की सुरक्षा के आर्थिक पहलू"), देहरादून : नगर संस्करण, पृष्ठ संख्या 14

सक्सेना, एन0आर0 स्वरूप (2009) -*शिक्षा दर्शन तथा महान शिक्षाशास्त्री,* मेरठ : सूर्या पब्लिकेशन, पृष्ठ संख्या 22

सक्सेना, एस0 (2004) -*मदान शिक्षाशास्त्री,* आगरा : साहित्य प्रकाशन, पृष्ठ संख्या 33

शर्मा, ओ0पी0 (2008) -*शिक्षा के दार्शनिक आधार,* आगरा : विनोद पुस्तक मंदिर, पृष्ठ संख्या 166

सिंह, एन0पी0 (2009) -*शिक्षा के दार्शनिक आधार,* मेरठ : आर0 लाल, पष्ठ संख्या 238

सजवान, दीप्ति (2015), *इण्टरनेशनल रिसर्च जरनल ऑफ मैनेजमेन्ट सोशियोलॉजी एवं ह्यूमनटीज़,* ''विवेकानन्द जी की स्त्री शिक्षा सम्बन्धी विचारों का वर्तमान परिप्रेक्ष्य में अध्ययन", पृष्ठ संख्या 76,77

त्यागी एवं पाठक (2008) -शिक्षा के दार्शनिक सिद्धान्त, आगरा : विनोद पुस्तक मंदिर, पृष्ठ संख्या 191

विदेहात्मानन्द, स्वामी (2013) -शिक्षा का आदर्श, नागपुर : रामकृष्ण मठ, पृष्ठ संख्या 25

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 10,34-37
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 20 अक्टूबर 2016

अपभ्रंश युगीन जैनेतर साहित्य

डॉ. नीतू दुबे*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *अपभ्रंश युगीन जैनेतर साहित्य* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *नीतू दुबे* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

प्राकृत धम्मपद के उकारान्त शब्दों और 'पउम चरिउ' में प्राप्त होने वाले कुछ शब्द रूपों को देखकर अपभ्रंश की आरम्भिक अवस्था का अनुमान लगाया जा सकता है। छठवीं शताब्दी में रचित 'वासुदेवहिंडी' में भी अपभ्रंश का प्रभाव दिखता है। विक्रम की आठवीं, नवी, दशवी शतीयां अपभ्रंश साहित्य का समृद्ध युग मानी जाती हैं। जैनेतर कवियों के अंतर्गत आने वाले बौद्ध सिद्ध कवि इसी युग के प्रतिभाशाली कृतिकार हैं।

जैन धार्मिक, प्रबंधक एवं मुक्तक काव्यों के अतिरिक्त इस कालावधि ने भक्ति का रास्ता चुना। जिसमें अनेक धार्मिक प्रबंध एवं मुक्तक काव्य जैनेतर कवियों द्वारा भी लिखा गया है।[1] जबकि धर्मिक या साम्प्रदायिक मुख्य रूप से जैनियों द्वारा लिखा गया है। पर अधिकतर रचनायें जैन कवियों से अलग पनप रही है। बौद्ध सिद्धों की भक्तिपूर्ण धारा से उदभुत हुई है।

सबसे पहले पं. हरप्रसाद शास्त्री ने सन् 1916 मे 'हाजार वद्दरेर पुराण बांगला भाषाय बौद्धगानओं दोहा' नाम से उनकी रचनाओं का संग्रह बंगीय साहित्य परिषद् कलकत्ता से प्रकाशित करवाया था।[2] इधर हिन्दी जगत को इस साहित्य का परिचय कराने का श्रेय महापंडित राहुल सांकृत्यायन जी का है। तिब्बती ग्रंथों के आधार पर संशोधित रूप से इन सिद्धों को रचनाओं पर विचार किया गया है। इन सिद्धों की रचनाओं में अनेक दोहों और पदों का संग्रह राहुल जी के हिन्दी काव्य धारा संग्रह में मिलता है।

सिद्ध साहित्य से हमारा तात्पर्य बज्रयानी धारा के उन सिद्ध आचार्यों में है। जिसमें अपभ्रंश के दोहे तथा चर्यापद के रूप उपलब्ध है। इन सिद्धों की रचनायें दो रूपों में प्राप्त होती है। प्रथम में धार्मिक सिद्धान्तों और मत तत्वों आदि का प्रतिपादन मिलता है। तो दूसरे में उपदेश और खंडन मंडन प्रधान साहित्य आता है। इनसे संबंधित दोहों और पदों के लेखक बज्राचार्य सिद्ध उस 84 सिद्ध परम्परा के अंतर्गत आते हैं। जो भारतीय अनुश्रुतियों में बहुत लोकप्रिय है। इन सिद्ध कवियों की संख्या 84 मानी गयी है। ये सिद्ध कवि चमत्कार प्रदर्शन कर अपना सिद्धियों से लोगों को चकित करते रहते थे। इन सिद्धों के दो

* विभागाध्यक्ष, संत हिरदाराम कन्या महाविद्यालय, भोपाल (मध्य प्रदेश) भारत

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

रूप मिलते हैं। बज्रयान और सहजयान। इन्होंने इन बज्रयान और सहजयान संबंधी विचारों को ही अपनी रचना का विषय बनाया।[3]

यह बज्रयान कहॉ से आया इसके विषय में यह ध्यातव्य है कि बौद्धधर्म क्रमशः हीनयान और महायान दो धाराओं में विभक्त है इनमें भगवान बुद्ध के निर्माण के विषय से मतभेद है। इसी निर्वाण के विस्तृत स्वरूप ने अपने में महासुखवाद नामक तत्व को भी समेट लिया। जिसके परिणामस्वरूप बज्रयान की उत्पत्ति हुई। बज्रयान से तात्पर्य है बज्र अर्थात् शून्यावस्था के माध्यम से निर्वाण प्राप्त करना और यह बज्रयान की धारा ने तत्कालीन सामान्य जनता को आकर्षित किया साथ ही इसमें ऐसी हिडर्थक भाषा का प्रयोग किया जो योगाचार और ब्रजयान दोनों के लिए उपयुक्त थी, इसी कारण यह भाषा सन्ध्या भाषा कहलायी जो दिन और रात के बीच की संधि रेखा थी। और अंग्रेज़ी अनुवाद लैग्वेज ऑफ ट्वालाइट किया है।[4]

इसी बज्रयान की एक शाखा सहजयान के नाम से प्रसिद्ध हुई इसके विषय में सिद्धों का विश्वास था कि साधना करते समय चित्त का विक्षुब्ध होना उचित नहीं है।

पर इन दोनों यान (सहजयान और बज्रयान) का लक्ष्य एक हीथा महासुख की प्राप्ति परन्तु सहजयोग में जीवन के परिष्कार और सुधार की भावना अधिक थी। दोनों सम्प्रदायों ने सत्गुरू की महत्ता को स्वीकार किया है।

इन सिद्धों ने मनुष्य दो विषयों को अपनी रचना का केन्द्र बनाया/ रहस्यमयी भाषा में सिद्धान्तों का विवेचन, सहज योग, गुरू कर महत्ता का वर्णन, तन्त्र, मन्त्र के प्रति खंडनात्मक दृष्टिकोण और धर्म के बाह्याडम्बरों का सहित विरोध। धर्मवीर भारती ने इन सिद्धांतों को महत्ता बताते हुए कहा है, इन सिद्ध कवियों की रचना अपने काल का स्तम्भ है हालांकि काव्यगत दृष्टि से ये भले उच्च कोटि की न मानी जाये परंतु इसमें उस प्रवाहमय सरिता का वेग है जो अपने आप में अनुपम सौन्दर्य और प्रभाव लिये हुए है।[4]

इन सिद्धों की समय सीमा निर्धारण में विद्वानों में मतभेद रहा है। राहुल सांकृत्यायन ने इनका काल 800 ई. से 1200 ई. तक माना है। भाषा के आधार पर डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी ने इनकी समय सीमा 1000 ई. से 1200 ई. तक निर्धारित की है।[5]

सिद्धों की संख्या चौरासी मानी गई है। राहुल जी ने दन सिद्धों की नामावली भी प्रस्तुत की है। आरंभ में ये चौरासी ही थी पर बाद में इनकी परम्परा टूट गई। वर्ण रचनाकर में भी 84 सिद्धों का ही उल्लेख मिलता है इससे सिद्धों को प्राचीनतम का आभास होता है। इन सिद्ध कवियों के नाम इस प्रकार है - ''लुहिपा, लीलापा, विरूपा, डोभिपा, शबरीपा, सरहपा, कंकालीपा, मीनपा, गोरक्षपा, चौरंगीपा, वीणापा, शांतिपा, तंतिपा, चमरिपा, खड़गपा, नागार्जुन कण्डपा, कर्णरिपा, थगनपा, नारोपा, शीलपा, तिलापा, छलपा, भद्रपा, दोखांबिपा, अजागिपा, कालपा, धोभीपा, कंकणपा, कमरिपा, डोगिपा, भदेया, तंघेपा, कुक्कुरिपा, कुचपा, धर्मपा, महीपा, अचिंतिपा, भल्लहपा, नीलनपा, भूसुकुपा, इंद्रभूति, मेकोपा, कुणालिपा कमरिपा, जालंधरपा, राहुलपा, धर्वरिपा, धोकरिपा, मेदिनीपा, पंकजपा, घंटापा, जोगीपा, चेलुकपा, गुडारिपा, निर्गुणपा, जयानंद, चर्पटीपा, चपकपा, भिखनपा, भालिपा, कुमरिपा, चंवरिपा, माण्भ्रदपा, (योगिनी) कनखलापा (योगिनी) कलकलपा, कंतालोपा, लहुरिपा, उधरिपा, उधरिपा, कपालपा, किलपा, सागरपा, सर्वभक्षपा, नागबोधिपा, दारिकपा, पुतालिपा, पनहपा, कोकालिपा, अनंगपा, लक्ष्मीकरा (योगिनी) समुदपा, भालिपा।[7] सिद्धों के नाम के पीछे लगा हुआ ''पा'' शब्द इनके सम्मान का घोतक है।

सिद्धों की भाषा के विषय में भी विद्वानों में मतभेद रहा है। मनुष्यता इनकी भाषा पूर्वी अपभ्रंश मानी जाती है पर श्री विनय तोष ने इनकी भाषा को उडिया श्री हरप्रसाद शास्त्री ने बंगला और पं. राहुल सांकृत्यायन ने मगही स्वीकार किया है। परन्तु डॉ. प्रबोधचन्द्र बागची इनकी भाषा अपभ्रंश मानते हैं और डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी भी सिद्धों की भाषा अपभ्रंश ही कही है। इन चौरासी सिद्ध कवियों में से कुछ मुख्य सिद्धाचार्यों का विवेचन दृष्टव्य है।

सरहपा : पं. राहुल सांकृत्यायन ने सरह को आदि सिद्ध बताया है। और इनकी समय सीमा डॉ. विनय तोष भटटाचार्य ने वि.सं. 690 निर्धारित की है। और पं. राहुल जी ने इन्हें 760 ई. का माना है। इनका दूसरा नाम राहुलभद्र और सरोजबज्र भी मिलता है। एक किवदन्ती के अनुसार एक शर (बाण) बनाने वाली कन्या के साथ रहने के कारण इनका नाम सरह पड़ा। कवि शबरपाद इनके प्रथम शिष्य थे इनकी प्रमुख कृतियाँ है- कायाकोष, अभृतबज्रगीति, चित्तकोष,

अज बज्र गीति, हाकिनी-गुरू बज्रगीति, दोहाकोष उपदेशगीति, दोहाकोष, तत्वोपदेश, शिखर दोहाकोष, महामुद्रोपदंश-दोहाकोश, सरहपाद गीतिका ये सभी बज्रयान पर लिखे गये ग्रंथ हैं।

सिद्धाचार्यों की सबसे बड़ी विशेषता है गुरू की महिमा का वर्णन करना। गुरू के बिना जीवन शून्य है, व्यर्थ है ऐसा ही एक उदाहरण दृष्तव्य है - 'गुरू उवए से अमिअ रसु धाव न पीअउ जेहिं। बहुसत्थत्य मरूहथलहि तिसिए मरिअउ तेहि''।।

इन सिद्ध कवियों का पूरा-पूरा प्रभाव भक्तिकाल में संतकवियों पर दिखता है। सिद्धों ने सहजमार्ग के लिए किया पर सूर आदि भक्त कवियों ने शक्ति के सन्दर्भ में किया।

शबरपा : ये सरहपाद के शिष्य थे। लुइपा इनके शिष्य थे। संभवतः शबरों (भीलों) के समान रहन सहन होने के कारण इन्हें शबर पाद कहा गया है। तन्जूर में इनके द्वारा रचित ग्रंथों की संख्या 56 बताई गई है। ये बज्रयोगिनी साधना के प्रवर्तक भी बताये गये हैं।

लुइपा : लुइपा को तन्जूर में भोगाली कहा गया है।[8] ये शबरपाद के शिष्य हैं। इनके द्वारा रचित सात ग्रंथों का निर्देश राहुल जी ने तंजूर में किया है।

दारिकपा : ये उड़ीसा के राजा थे। बाद में लुइपा से दीक्षा ग्रहण करने के कारण उनके शिष्य हो गये। सिद्धि प्राप्ति के उपरांत इनका नाम दारिकपा पड़ा इनके 10 ग्रंथों का उल्लेख तंजूर में मिलता है। जिनमें से संभवतः तीन अपभ्रंश भाषा में अनुदित है।[9]

डोम्बिया : ये दारिकपा की शिष्या सहजयोगिनी के शिष्य बताये गये हैं। इनके द्वारा रचित ग्रंथ सहज सिद्धि से यह बात ज्ञात होती है कि इन्होंने कौलपद्धति का विशेष प्रचार किया था।

काम्बलाम्बरपा : ये डोम्बिपा के समकालीन गुरू सहजयोगिनी चिन्ता के शिष्य बज्रघण्टा के शिष्य माने जाते हैं। ये चक्रसम्पर तन्त्र के अनुयायी थे तथा इनका संबंध तीर्थक वैष्णवों से भी था। इनके द्वारा उचित 11 ग्रंथों के अनुवाद मिलते हैं। जिनमें से तीन ग्रंथ अपभ्रंश में थे।

कण्हपा : इनके नाम को लेकर विद्वानों में मतभेद है। कर्नाटक प्रदेश में एक ब्राहमण कुल में जन्म लेने के कारण इनको कर्णण ओर शरीर का रंग काला होने के कारण कृष्णपा या कण्डपा कहा जाता हे। ये जालन्धर पाद के शिष्य थे। इनके शिष्यों में 8 शिष्य महासिद्ध हुए है। ये शैव सम्प्रदाय के अत्यधिक निकट थे।

शान्तिपा : ये सिद्धों में सर्वश्रेष्ठ माने जाते हैं। ये अपनी विहता के कारण कालकाल सर्वस भी माने जाते हैं। इनका समय 1000 ई. के लगभग माना जाता है। इन्होंने सहजमार्ग की प्रशंसा करते हुए कहा है कि यह मार्ग स्वसंवेदन और स्वानुभूति का मार्ग है।

तान्तिपा : राहुल जी ने ढेण्ढ़णपा को ही तान्तिपा मान लिया है। ससक्यकुबुम् के अनुसार ये उज्जैन के तन्वुवाय थे। तंजूर में इनका एक ही ग्रंथ मिलता है वह है 'चतुयोगिभावना''।

भद्रपा : कण्हपा के शिष्यों में महीपा, भद्रपा, तथा मधनपा भी बताये गये हैं, और तीनों के चर्यापद प्राप्त हैं।

महीधरपा : 16वें चर्यापद के लेखक महीधरपा को महीपा या माहिलपा भी कहा तंजूर में इनके बहुत सारे ग्रंथ मिलते है। जिनमें से वायुतत्व दोहा गीतिका यह अपभ्रंश में है।

धामपा : 47वीं चर्या के लेखक धर्मपा है। इनके ग्रंथ तंजूर में मिलते हैं।

चारिलपा : इनका नाम न तो तंजूर में मिलता है और न यह नाम बज्रयान सिद्धों की सूची में है। किन्तु नाथ सिद्धों की सूची में इनका नाम 64वां है।

गुण्डुरीपा : इनको ससक्यकबुम में डिसू नगर का बहेलिया बताया गया है।[11]

ढ़ण्ढ़णपा : इनका नाम तिब्बती उच्चारण में शास्त्री महादेय ने घेतन बताया है। राहुल जी ने इन्हें तान्तिपा माना है।

इस प्रकार उपर्युक्त विवरण से अपभ्रंश कालीन सिद्ध कवियों और उनकी रचनाओं का उल्लेख मिलता है। इस जैनेतर बौद्ध साहित्य के अतिरिक्त और भी लौकिक प्रबंध एवं मुक्तक काव्य जैनेतरों द्वारा लिखा गया। जिसमें अददहमाण कृत संदेशरासक सर्वप्रमुख है। यह धर्म निरपेक्ष लौकिक प्रेमभावना को व्यक्त करने वाली एक मूसलमान कवि द्वारा लिखा गया अपभ्रंश काव्य है। यह एक संदेश काव्य है इसका अंत बड़ा मार्मिक है। दूसरी भाषा बोलचाल की अपभ्रंश है।

संदर्भ

[1]*हिन्दी जैन साहित्य बृद्ध इतिहास* -शितिकंठमिश्र, पृष्ठ संख्या 59
[2]*अपभ्रंश साहित्य हरिवंश कोछड़,* पृष्ठ संख्या 300
[3]*प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य तथा उनका हिन्दी साहित्य पर प्रभाव* -राम सिंह तोम, पृष्ठ संख्या 171
[4]*सिद्ध साहित्य* -धर्मवीर भारती, 268, 269
[5]*सिद्ध साहित* -धर्मवीर भारती, पृष्ठ संख्या 304
[6]डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी -*ओरिजिन एंड डेवलपमेंट ऑफ बंगाली लंग्वेज,* पृष्ठ संख्या 123
[7]*हिन्दी साहित्य का साहित्य* -आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ संख्या 6
[8]*दोहाकोश सिद्ध सरहपाद*
[9]*अपभ्रंश,* हरिवंश कोछड़, पृष्ठ संख्या 310
[10]*सिद्ध साहित्य* -धर्मवीर भारती, पृष्ठ संख्या 31 (द्वितीय सं. 1968)
[11]*सद्ध साहित्य* -धर्मवीर भारतीय, पृष्ठ संख्या 310

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777
भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 10,38-40
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 23 अक्टूबर 2016

छायावाद में आत्माभिव्यक्ति

डॉ. निशा यादव*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *छायावाद में आत्माभिव्यक्ति* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *निशा यादव* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

भारतेन्दु युग के साहित्य में जिन प्रवृतियों के अंकुर फूटे थे, द्विवेदी युग में उनका विकास हुआ। द्विवेदी युग के काव्य की इतिवृतात्मकता और उपदेशात्मक प्रवृति के प्रतिक्रिया स्वरूप उदय हुआ छायावाद का। छायावाद विशेष रूप से हिन्दी साहित्य के रोमांटिक उत्थान की वह काव्यधारा है जो लगभग सन् 1920 ई. से सन् 1936ई. तक प्रमुख युगवाणी रही। छायावादी रचनाओं में उच्चकोटी का कवित्व और अनुभूति की तीव्रता विद्यमान है। छायावाद नामकरण का श्रेय मुकुटधर पांडेय को जाता है।[1]

छायावादी कवियों ने मूलतः सौंदर्य और प्रेम की व्यंजना की है। पूर्ववर्ती कवियों ने जहां राधा, पदमिनी, तथा उर्मिला के माध्यम से प्रेम की व्यंजना की है, वहीं इन कवियों ने निजी प्रेमानुभूति की व्यंजना की है।

आधुनिक हिन्दी काव्यधारा के विकास में छायावाद का महत्वपूर्ण स्थान है। इस काव्यधारा ने जयशंकर प्रसाद, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, सुमित्रानंदन पंत तथा महादेवी वर्मा जैसे महान रचनाकार दिये हैं। छायावादी कवियों ने रहस्य भावना से संबंधित कविताएं लिखीं, शुद्ध प्रकृति प्रेम की कविताएं भी लिखीं, जिनमें 'स्व' अभिव्यक्ति भी थी। छायावादी काव्य मूलतः मुक्ति का, स्वंतत्रता का काव्य है। अपने स्व को उन्मुक्त भाव से व्यक्त करने की इच्छा भी वस्तुतः मुक्ति की कामना का ही प्रतिफलन है।

आरंभ में छायावादी कवियों ने अपनी प्रणय-भावना को अभिव्यक्ति दी, बाद में अपने जीवन के दूसरे दुख-दर्दों को भी वाणी दी। इस दृष्टि से निराला की ''सरोज स्मृति'' कविता विशेष उल्लेखनीय है। इस कविता के माध्यम से निराला ने अपनी पुत्री सरोज की मृत्यु पर लिखे शोक गीत में अपने जीवन की तकलीफों, आर्थिक कष्टों और अपनी लड़की के विवाह में आने वाली कठिनाइयों का अत्यन्त कारूणिक वर्णन किया है।

'धन्ये, मैं पिता निरर्थक था,/ कुछ भी तेरे हित न कर सका!/ जाना तो अर्थागमोपाय,/ पर रहा सदा संकुचित काय/ लखकर अनर्थ आर्थिक पथ पर/ हारता रहा मैं स्वार्थ समर।'[2]

* असिस्टेंट प्रोफेसर (आमंत्रित) कन्या गुरुकुल महाविद्यालय देहरादून [गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय] हरिद्वार (उत्तराखण्ड) भारत। (सदस्य सम्पादक मण्डल)

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

'अर्थ के अभाव में निराला पुत्री की चिकित्सा नहीं करवा पाए। वह अकाल मृत्यु की शिकार हुई, इसकी गहरी वेदना निराला की ''सरोज स्मृति'' रचना में स्पष्ट दिखाई देती है।'[3]

कविवर निराला जीवनभर आर्थिक संघर्षों से जूझते रहे। ''अणिमा'' और ''बेला'' तथा ''राम की शक्तिपूजा'' आदि कई रचनाएं उनकी आंतरिक कटुता, ग्लानि और क्षोभ से प्रेरित भी परिलक्षित होती हैं।

'धिक् जीवन जो पाता ही आया है विरोध,/ धिक् साधन जिसके लिए सदा ही किया शोध।'[4]

राम के द्वारा कही गई इन पंक्तियों में निराला अपने व्यैक्तिक जीवन संघर्ष को व्यक्त कर रहे हैं। निराला जी को अपने जीवन में निरंतर विरोध झेलने पड़े। यहां ऐसा प्रतीत हो रहा है कि राम की व्यथा निराला की व्यथा बन गई है।

छायावादी कवियों ने ''मैं'' द्वारा अपने भावों को व्यक्त किया है। अपनी निजता को आत्मीय ढंग से वाणी दी। अपने मन की पीड़ा को भी इन छायावादी कवियों ने शब्द दिये हैं। सुमित्रानंद पंत द्वारा रचित ''उच्छवास'' नामक कविता इस कथन के समर्थन में पेश की जा सकती है, पंत ने अपनी ''प्रिया'' को मन-मंदिर में बसाकर उसे पूजने का उल्लेख निम्न पंक्तियों में किया है।

'विधुर उर के मृदु भावों से तुम्हारा कर नित नव श्रृंगार। पूजता हूं मैं तुम्हें कुमारी, मूंद दुहरे दृग द्वार।।'[5]

सुमित्रानंदन पंत प्रकृति के सुकुमार कवि कहे जाते हैं। इसकी अभिव्यक्ति भी पंत जी ने अपने काव्य के माध्यम से की है। प्रकृति सुंदरी ने कवि को इतना मोहित कर रखा है कि वह प्रकृति सौंदर्य को छोड़कर नारी सौंदर्य की ओर उन्मुख ही होना नहीं चाहता।

'छोड़ द्रुमो की मृदुछाया/ तोड़ प्रकृति से भी माया/ बाले तेरे बाल जाल में/ कैसे उलझा दूं लोचन/ भूल अभी से इस जग को।'[6]

प्रकृति ने पंत जी के व्यक्तित्व निर्माण में विशेष भूमिका निभाई है। पंत इसे स्वीकार करते हुए लिखते हैं कि यह शायद पर्वत प्रांत के वातावरण का ही प्रभाव है कि मेरे भीतर विश्व और जीवन के प्रति एक गंभीर आश्चर्य की भावना पर्वत की तरह निश्चल रूप में अवस्थित है। प्रकृति के सहचर्य ने जहां एक ओर मुझे सौंदर्य प्रेमी और कल्पनाजीवी बनाया वहां दूसरी ओर जनभीरू भी बना दिया।'[7]

छायावादी काव्य में जो स्वानुभूति की प्रधानता है, वह प्रसाद के काव्य में दिखने को मिलती है। छायावाद में स्वानुभूति प्रत्यक्ष रूप से प्रकट हुई है। जो व्यक्तिगत प्रणय से लेकर करूणा और आनंद तक फैली हुई है। ''आंसू'' प्रसाद जी की एक श्रेष्ठ गीत सृष्टि है, जिसमें प्रसाद की व्यक्तिगत जीवनाभूति का प्रकाशन हुआ है। कवि के व्यक्तित्व का जितना मार्मिक प्रकाशन इस काव्य में हुआ है, उतना अन्यत्र दिखायी नहीं देता। अनेक स्थलों पर वेदना में डूबा हुआ कवि अपनी अनुभूति को उसके चरम ताप में अंकित करता है। आंसू काव्य में कवि की पीड़ा की अभिव्यक्ति कुछ इस प्रकार हुई।

'जो घनीभूत पीड़ा थी मस्तक में स्मृति से छायी। दुर्दिन में आंसू बनकर वह आज बरसने आयी।।'[8]

इन पंक्तियों के माध्यम से प्रसाद जी ने अपने जीवन के रीतेपन और मौन व्यथा को अभिव्यक्त किया है। छायावादी चतुष्ट्य में महत्वपूर्ण स्थान रखने वाली महादेवी वर्मा का काव्य भी ''स्व'' की अभिव्यक्ति से अछूता नहीं रहा। महादेवी वर्मा की कविताओं में आत्मभिव्यंजन की प्रवृति उपलब्ध होती है। वेदना की जो प्रधानता उनके काव्य में देखने को मिलती है, उस पर उनके जीवन की छाया है, ऐसा कहना अनुपयुक्त न होगा। महादेवी का संपूर्ण काव्य आत्मपीड़ा की ही अभिव्यक्ति है। लेकिन उन्होंने अपनी आत्मपीड़ा को रहस्यवाद के माध्यम से व्यक्त किया है। महादेवी के गीतों में उनके हृदय की संचित करूणा, वेदना एवं पीड़ा ही मुखरित हुई है। ये अनुभूतियाँ उनके व्यैक्तिक जीवन से भिन्न नहीं कही जा सकती हैं। निश्चय ही महादेवी जी के काव्य में आत्माभिव्यंजकता का प्राधान्य है।

'मैं नीर भरी दुख की बदली/ परिचय इतना इतिहास यही/ उमड़ी कल थी मिट आज चली।'[9]

महादेवी वर्मा ने मन की पीड़ा को इतने स्नेह और श्रृंगार से सजाया कि वह जन-जन की पीड़ा के रूप में स्थापित हुई।

उपर्युक्त अध्ययन के आधार पर कहा जा सकता है कि छायावाद व्यैक्तिक अनुभूतियों की अभिव्यक्ति का काव्य है। आत्माभिव्यक्ति और आत्म प्रसार का काव्य है। कवियों ने काव्य में अपने सुख-दुख, उतार-चढ़ाव और आशा-निराशा की अभि-व्यक्ति खुलकर की है। उन्होंने समस्त संसार को अपनी भावनाओं में रंगकर देखा। जयशंकर प्रसाद का ''आंसू'' तथा सुमित्रानंदन

पंत का ''उच्छवास'' व्यक्तिवादी अभिव्यक्ति के सुंदर निदर्शन हैं। डॉक्टर शिवदान सिंह चौहान ने इस संदर्भ में अपने विचार कुछ इस तरह व्यक्त किये हैं।

'कवि का ''मैं'' प्रत्येक प्रबुद्ध भारतवासी का ''मै'' था, इस कारण कवि ने विषयगत दृष्टि से अपनी सूक्ष्मातिसूक्ष्म अनुभूतियों को व्यक्त करने के लिए जो लाक्षणिक भाषा और अप्रस्तुत रचना शैली अपनायी, उसके संकेत और प्रतीक हर व्यक्ति के लिए सहज प्रेषणीय बन सके।

वास्तव में व्यक्तिगत सुख-दुख की अपेक्षा अपने से अन्य के सुख दुख की अनुभूति ने ही नये कवियों के भावप्रवण और कल्पनाशील हृदयों को स्वच्छंदतावाद की ओर प्रवृत किया। कवि निराला ने अपने काव्य में ''मैं'' शैली की अभिव्यक्ति कुछ इस प्रकार की है।

'मैनें मैं शैली अपनायी,/ देखा एक दुखी निज भाई।। दुख की छाया पड़ी हृदय में/ झट उमड़ वेदना आयी।'[10]

अतः निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि आत्माभिव्यक्ति छायावादी काव्य की महत्वपूर्ण शैली रही है। आत्माभिव्यक्ति शैली को छायावाद के चतुष्ट्य जिसमें जयशंकर प्रसाद से लेकर सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, सुमित्रानंदन पंत तथा महादेवी वर्मा ने अपने काव्य में महत्वपूर्ण स्थान दिया।

संदर्भ ग्रंथ

[1]*हिन्दी साहित्य का अद्यतन इतिहास* -डॉ0 मोहन अवस्थी, पृष्ठ संख्या 249
[2]*सरोज स्मृति* -सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, पृष्ठ संख्या 1
[3]*पंत एवं निराला का तुलानात्मक अध्ययन* -डॉ0 मंजूला जैन, पृष्ठ संख्या 32
[4]*राम की शक्ति पूजा* -सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, पृष्ठ संख्या 4
[5]*उच्छवास* -सुमित्रानंदन पंत, 1920
[6]*मोह* -सुमित्रानंदन पंत 1918
[7]*पर्यायलोचन निबंध पंत ग्रंथावली,* भाग-छह, पृष्ठ संख्या 260
[8]*आंसू,* जयशंकर प्रसाद, पृष्ठ संख्या 1
[9]*मैं नीर भरी दुख की बदली,* महादेवी वर्मा
[10]*अधिवास,* सूर्यकांत त्रिपाठी निराला

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777
भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 10,41-44
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 22 नवम्बर 2016

"एक नये समाज का स्वप्न है सुनहली सुबह के गीत [गुरुवेन्द्र तिवारी का रचना संसार]"

डॉ. प्रभा दीक्षित*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *"एक नये समाज का स्वप्न है सुनहली सुबह के गीत [गुरुवेन्द्र तिवारी का रचना संसार]"* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *प्रभा दीक्षित* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

कवि गुरूवेन्द्र की काव्य-साधना से मैं एक लम्बे समय से परिचित रही हूँ। उन्होंने निरन्तर प्रयास करके काव्य क्षेत्र में जो महारत हासिल की है उसकी प्रशंसा की जानी चाहिये। 'सुनहरी सुबह के नाम' काव्य-संग्रह उनकी सुदीर्घ साहित्य-साधना का ही प्रतिफल है जिसमें उन्होंने मानवीय प्रेम और संघर्ष के द्वंद्व को शब्द देने का सार्थक प्रयास किया है।

गुरूवेन्द्र जी की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे कभी हार नहीं मानते न जीवन में न कविता में। एक लम्बी उपेक्षा सहकर भी उन्होंने काव्य के क्षेत्र में अपना एक विशिष्ट स्थान बनाया। वे अपने अभावग्रस्त जीवन के बावजूद भी कभी सैद्धान्तिक विचलन के शिकार नहीं हुए और कांटों की संगति में फूल चुनने का प्रयास करते रहे। इसलिये उनके व्यक्तिगत जीवन और रचनात्मक जीवन में जैसी एकरूपता दिखाई देती है वैसी प्रायः आज के दौर के बहुत कम रचनाकारों में दिखाई देती है।

अपनी काव्य-कृति 'सुनहली सुबह के नाम' की भूमिका में वे स्वयं स्वीकार करते हैं- ''...मानसिक सामाजिक व पारिवारिक विडम्बनाओं का संघर्ष ही मेरी साहित्यिक रूचि को ऊर्जा देता रहा है।''[१] आर्थिक स्थितियों, भी प्रतिकूल रहीं। ''वैसे मैंने अपने..., रचनाकार को कभी समाज का कोई अदना व्यक्ति नहीं माना और ना ही अपने लेखन को विशिष्ट पाठकों, समालोचकों तथा ट्रेण्ड श्रोताओं तक ही सीमित रखने का प्रयास किया।''[२] वे अपने लेखन का उद्देश्य स्वान्तः सुखाय तो मानते हैं परन्तु उनकी रघुनाथगाथा भारत के आम आदमी के शोषण, दोहन व संघर्षों की अमर गाथा है। देखें उन्हीं के शब्दों में- ''रघुनाथ गाथा मेरी दृष्टि में भारत की लाखों करोड़ों वह जनता रही है जो अभावों व विडम्बनाओं में जी रही है।''[३]

* प्राचार्या, श्री स्वामी नागा जी बालिका डिग्री कॉलेज [भरूआसुमेरपुर] हमीरपुर (उत्तर प्रदेश) भारत। (आजीवन सदस्य)

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

सैद्धान्तिक रूप से गुरूवेन्द्र जी जनवादी लेखक संघ के सक्रिय सदस्य रह चुके हैं किन्तु वर्तमान में वे स्वयं को समाजवादी कहते हैं। अपने देश के लिए वे विदेशी साम्यवाद की अपेक्षा स्वदेशी समाजवाद (लोहियावाद) के पक्षधर हैं। अपने संवादों और वार्तालाप में वे इस सत्य को अक्सर दोहराते दृष्टिगत होते हैं। प्रसिद्ध समीक्षक विजयबहादुर ने नागार्जुन के जनवाद की समीक्षा करते हुए लिखा है कि 'वे देशी बीमारियों के इलाज के लिए विदेशी नश्तर का प्रयोग नहीं करते हैं।'' यह कथन गुरूवेन्द्र जी के सामाजिक दर्शन के सम्बन्ध में भी कहा जा सकता है। वे कला को समाज के लिये घोषित करते हुए लिखते हैं- ''मैंने कला जन-मानस के लिये, के स्वरूप को ही आत्मसात किया है। इसका मुझे गर्व है। मुझे अपने प्यारे देश भारत की सदियों पुरानी निश्छल मानवता के प्रति लगाव, देश का वातावरण, अपनी सभ्यता संस्कृति के प्रति आस्था व देश के गांव, खेत खलिहान, सोंधी माटी की गंध, बाग बगीचे, हरी भरी हरियाली, लिपे पुते मकान, गलियारे पगदण्डियाँ, प्राकृतिक छटा, तीज त्योहार, लोगों का अवनपव से प्यार रहा है और आज भी है।''[४] मेरा मानना है कि अपने राष्ट्र और इसके सांस्कृतिक भौगोलिक परिवेश से प्रेम या आसक्ति तो हर कवि और कलाकार को होती है। प्रकृति की हरी भरी गोद और रिश्तों की आत्मीयता प्यार-दुलार हर संवेदनशील मन की आकांक्षा होती है। गुरूवेन्द्र जी इसके अपवाद नहीं हैं। वे बेहद सीधे सरल, निश्छल व स्नेही व्यक्ति हैं। गुरूवेन्द्र जी के व्यक्तित्व में सादगी और स्पष्टता इस हद तक है कि वे अपने मित्रों द्वारा आसानी से छले जाते रहे हैं और इसका उन्हें एहसास भी नहीं होता वे जितने अच्छे कवि हैं उससे भी बेहतर भी अच्छे इंसान हैं। एक सीधा सच्चा इंसान जब गीत जैसी संवेदनात्मक विधा के माध्यम से कविता की बारादरी में कदम रखता है तो अपने साथ कितनी सकारात्मक ऊर्जा लेकर भास्वरित होगा, सुधी पाठक सहज ही इसकी कल्पना कर सकते हैं। यह उनकी सरलता ही है कि इतनी लम्बी रचनायात्रा के बावजूद ७० वर्ष की आयु में पहली बार अपनी गीत कृति 'सुनहरी सुबह के नाम' लेकर पाठकों के समक्ष अपने चुनिंदा ४२ गीतों के साथ उपस्थित हुए हैं। उनके ये गीत उनकी रचनायात्रा के जीवन्त दस्तावेज हैं। अनुभव और कल्पना के सोपानों पर चढ़कर जब वे 'सुनहरी सुबह के नाम' एक पाती लिखते हैं तो निश्चय ही विश्व मानवता के लिये एक सुनहरा पन्ना खोलते हैं। एक सुनहरा उजास बिखेरते हैं। निराशा और हताशा के अंधेरे में डूबी पीड़ित शोषित मानवता को एक नई आशा व नवीन आत्मविश्वास का संदेश देते हैं।

''पर कटे पंक्षियों सी/ भीड़ को मेरा सलाम'' लिखकर वे देश के सबसे निचले पाये के आदमी की निरीह एवं विवश त्रासदी को तो शब्द प्रदान करते ही हैं, साथ ही उसे 'सलाम' कहकर उस पर अपनी दृढ़ आस्था और सघन विश्वास भी व्यक्त करते हैं।

उनकी जन-प्रतिबद्धता और सामाजिक सरोकारों के प्रति आस्था कहीं भी उनके काव्य के शिल्पगत सौंदर्य को बाधित करती नहीं दृष्टिगत होती। शिल्पगत अनेक अनूठे प्रयोग इस गीत कृति में स्थान-स्थान पर दृष्टिगत होते हैं जो उनके गीतों की व्यंजना और भाव प्रवणता में श्रीवृद्धि करते हैं, देखें -''पर कटे पंछियों सी बढ़ी/ भीड़ को मेरा सलाम। कट गई पतंग जैसी/ डोरी हो गई गुमनाम।''[५]

यहाँ 'परकटे पंछियों सी बढ़ी भीड़' 'कट गई पंतग जैसी डोरी' इत्यादि बिम्ब प्रयोग 'आम आदमी की त्रासद विवशताओं को घनीभूत करने में सफल हुए हैं। उपरोक्त बिम्बों के प्रयोग से इस गीत की व्यंजना द्विगुणित हो गई है। इसी प्रकार एक अन्य प्रयोग उनकी जनपक्षधरता और संकेतात्मकता के लिये चिह्नित किया जा सकता है।

''जिसमें अभिमानी विद्युत का उजियारा है। अल्मारी में सूरज पीछे अंधियारा है। ऊँचाई कैदी है ईटों की बाहो में,/ उस पर लटका हर विज्ञापन आवारा।''[६]

हर ऊँचाई कितनी भी गगनचुम्बी क्यों न हो वह नींव की ईटों पर ही निर्भर करती है। गुरूवेन्द्र जी ने यहाँ भी निचले पाये के आदमी को रेखांकित करते हुए यह कहने का प्रयास किया है कि सामाजिक निर्माण के में श्रमिक वर्ग का ही मुख्य योगदान होता है जिसके आधार पर गगनचुम्बी इमारतों की अस्मिता चिह्नित की जा सकती है।

वर्तमान समय में हर विज्ञापन बाजारवादी उपभोक्ता संस्कृति के लिये आर्थिक रूप से जीवनदायी है जिसकी आवारगी आम आदमी के जीवन को और अधिक त्रासद बनाती है। इस तरह गुरूवेन्द्र जी सच्चे अर्थों में समाजवादी

(जनवादी) कहे जा सकते हैं। कभी हार न माननेवाली अपराजेय जीजिविषा के धनी गुरूवेन्द्र जिस सहजता से अपने जीवन संघर्षों को स्वीकारे हैं उसमें भी एक आम आदमी की उदारता व सहिष्णुता ही व्यक्त होती है। वे कहते हैं- ''जब भी जैसा मिला है जीवन/ हंसते हंसते ही जिया है मैंने। दुख के आसव मिले अगर तो/ सुख से हरदम पिया है मैंने।''

जीवन का मतलब ही संघर्षों की चलती रामकथा है जिससे पूछो उसकी भी अपनी अन्तर्द्वन्द्व व्यथा है।[७]

संघर्षों की इस रामकथा को गुरूवेन्द्र जी ने स्वयं जिया है, जो उनके काव्य में रची बसी है। उनके अनेक गीतों में दुःख सहकर, गरल पीकर अमृत बांटने की जो गम्भीर दार्शनिक मुद्रा दिखाई देती है वह उनके काव्य को एक नवीन दार्शनिक आयाम देती है। वे कहते हैं- ''जीवन के मटमैले सागर का मंथन कर लेने दो/ रत्नों में अमृत से पहले, गरल मिले पी लूँगा। और जिन्दगी के भूखे प्यासे तट पर जी लूँगा।''[८]

इसी भाव-भूमि में 'बीती रात चाँदनी बोली' नामक गीत कविता में कवि कहता है- ''मेरी रूप छटा का अभिनव/ वर्णन करते रहने वालों/ किसी तपस्वी सा ही जीवन/ जीकर तन को वारा होता/ तपकर किसी कसौटी पर/ सोने सा खरा उतारा होता। कभी स्वयं के संदर्भों में/ अपना रूप संवारा होता/ अन्तर्मन के दर्पन में/ खुद को स्वयं निहारा होता।''[९]

कवि का यह आत्मविश्लेषण और आत्मसंघर्ष उन्हें स्वयं का आंकलन करने को विवश करता है। वे कहते हैं- ''माना कभी तो जिन्दगी के क्षण स्वयं/ अब तक किये का चाहते हैं आंकलन/ क्या मिला हमको हमारी साधना का फल/ पूछता एकान्त में एकाग्र मन।''[१०]

मानव प्रेम से जुड़ना ही उनकी काव्य साधना है और इस साधना का प्रतिफल है पीड़ित मानवता से सम्बद्ध वह स्नेह-तन्तु जो कवि को काव्य कर्म के लिए प्रेरित करता है। जो उन्हें विषम परिस्थितियों में भी निराश नहीं होने देता। वे कह उठते हैं- ''जब भी पीड़ित इंसान मिलेगा/ निश्चित हमको अपने गले लगायेगा। हम हार भला क्यों माने कष्टों से/ हो सकता है जयमाल विजय की गले पड़े।''[११]

कभी हार न मानने वाली यह अदम्य जीजिविषा और शोषित पीड़ित मानवता पर अटूट विश्वास ही गुरूवेन्द्र जी की कलम की असली ताकत है जो उन्हें अपने समय की जतीनी कहकीकत से जोड़ती है और उन्हें यथार्थवादी बनाती है। इसी के बल पर वे कलावादियों को ललकारते हुये कहते हैं- ''सतरंगी घूँघट मुस्कानों की बात सदा करने वालों/ माटी जिस पर तू चलता है, उसकी भी रात जरा कह दे।''[१२]

वस्तुतः जो माटी से जुड़ जाता है, विराट जनता के सुख दुख से नाता जोड़ लेता है वह आत्मकेन्द्रित सुखों के कहकहे नहीं लगा सकता। दूसरे अर्थों में वह सर्वहारा के श्रम संघर्ष और यंत्रणा का मीनीदार हो नित्य संघर्ष का पथ वरण कर लेता है। गुरूवेन्द्र जी भी यही करते हैं, इसीलिये वे घोषणा करते हैं- ''मैं शूलों का सौदागर हूँ, संघर्षों का माली/ कैसे दे सकता हूँ खुशबू, तुमको चन्दन वाली।''[१३]

संघर्षों का यह माली, दुल्हन का श्रृंगार ही नहीं देखता वह संघर्षों की चलती बारात' भी देखने में सक्षम है। ''श्रृंगार दुल्हन का ही अब तक देखा तुमने/ कभी देखते संघर्षों की चलती बारात।''[१४]

इसी कारण वे अनथक संघर्ष-पथ पर चल रहे हैं। गुरूवेन्द्र जी अपनी जिन्दगी और और कविता के दोहरे संघर्षों के साथ एक महत् उद्देश्य के लिए निरन्तर काव्य-साधना कर रहे हैं। वे दीर्घायु हों, उनकी इस कृति 'सुनहरी सुबह के नाम' के लिये उन्हें अशेष मंगलकामनायें। उन्हीं के शब्दों में उन्हें साधुवाद देते हुए मैं अपनी बात समाप्त करूँगी- ''मैं छोटा तैराक सही/ पर तैर रहा हूँ महानदी में।''[१५]

संदर्भ ग्रंथ

[१]गुरूवेन्द्र तिवारी 'गम्भीर', उद्धृत 'सुनहली सुबह के नाम' शब्दोत्सव प्रकाशन, कानपुर सं० २०१६, अपनी बात पृष्ठ संख्या ७

[३]वही
[३]वही
[४]वही, पृष्ठ संख्या ८
[५]वही, 'गीत : आओ लिख दे', पृष्ठ संख्या २३
[६]वही, 'गीत : आओ उस बैठक में हम', पृष्ठ संख्या ३४
[७]वही, 'गीत : जब भी जैसा मिलता है जीवन', पृष्ठ संख्या ५८
[८]वही, 'गीत : जीवन के मटमैले सागर', पृष्ठ संख्या ७२
[९]वही, 'गीत : बीती रात चाँदनी बोली', पृष्ठ संख्या ६०
[१०]वही, 'गीत : कभी भाता नहीं', पृष्ठ संख्या ६३
[११]वही, 'गीत : उलझा हुआ है जिन्दगी का', पृष्ठ संख्या ६४
[१२]वही, 'गीत : सतरंगी घूँघट मुस्करानों की', पृष्ठ संख्या ७४
[१३]वही, 'गीत : मैं शूलों का सौदागर हूँ', पृष्ठ संख्या ७७
[१४]वही, 'गीत : शृंगार दुल्हन का ही....', पृष्ठ संख्या ५०
[१५]वही, 'गीत : मैं छोटा तैराक सही', पृष्ठ संख्या ३७

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777
भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 10,45-48
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 25 नवम्बर 2016

"सहरिया लोकगीतों का सांस्कृतिक अध्ययन"

हरिकेश मीना*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *"सहरिया लोकगीतों का सांस्कृतिक अध्ययन"* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र का लेखक मैं *हरिकेश मीना* घोषणा करता हूँ कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देता हूँ।

भारत विभिन्न संस्कृतियों का देश है, जिसमें अनेक जनजातीय समुदाय निवास करते हैं। मध्यप्रदेश एवं राजस्था में निवास करने वाली विभिन्न जनजातियों में सहरिया जनजाति अपनी विशिष्ट पहचान रखती है। यह मुख्य रूप से बॉरा जिले की शाहबाद एवं किशनगंज तहसील तथा मध्यप्रदेश में मुख्य रूप से ग्वालियर, शिवपुरी, गुना व दतिया जिलों में मुख्यतः पायी जाती है। सहरिया भारत के मूल निवासी है। इनको सवारा, सवर, सोरा, सओरा, सहरिया, सहारिया, सेहरिया, सेरिया, सोसिया व सोर नाम से भी जाना जाता है।

लोकगीत मानव का उल्लासमय संगीत है। गुफाओं में पलते आदिवासियों में जब थोडी बुद्धि आई और भावनाओं के अंकुर फूटे तो उन्हें व्यक्त करने के लिए गीतों का सहारा लिया। समस्त जन समाज में चेतन-अचेतन रूप में जो भावनायें गीतबद्ध होकर व्यक्त होती हैं उन्हें लोकगीत कहते हैं। ''लोकगीत मनुष्य के सुख-दुख की अभिव्यक्ति के सशक्त माध्यम हैं इनमें मानव के हर्ष, विषाद, उमंगों व पीडाओं का प्रतिबिम्व होता है। प्रकृति के विस्तृत प्रांगण और विस्तीर्ण गगन के तले स्वच्छन्द और उन्मुक्त जीवन जीने के कारण इनके गीतों में कहीं कोयल की कूक होती है तो कहीं मयूर का मादक नृत्य।''[1]

लोकगीतों की परम्परा पुरानी है। ''वह गीत जो लोक मानस की अभिव्यक्ति हो, अथवा जिसमें लोक मानसाभास भी हो लोकगीत के अन्तर्गत आएगा।''[2]

लोकगीत के एक एक चित्रण पर रीतिकाल की सौ सौ मुग्धाऐं, खंडितायें न्योछावर की जा सकती हैं। क्योंकि निरलंकार होने पर भी प्राणमयी हैं, और अलंकारों से लदी हुई भी निष्प्राण है।''[3]

डॉ सुदेश बत्रा - ''लोकगीत कवि की परीक्षानुभूतिपरक दृष्टिकोण से सहज रूप से अदभुत संगीतात्मक शब्दयोजना को कहा जा सकता है।''[4]

लोकगीत प्रकृति के उदगार, तडक, भड़क से दूर पारदर्शी, शीशे की तरह स्वच्छ होते हैं। यद्यपि समय की मार ने इनको कुचलने का प्रयास किया।

* व्याख्याता हिन्दी, राजकीय कन्या महाविद्यालय करौली (राजस्थान) भारत

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

ये कुचले भी गये हैं। गीत बनते और बिगड़ते हैं इन गीतों में इतिहास छिपा हुआ है। देश की तत्कालीन रीति नीति की जानकारी सहरिया गीतों में मिलती है। नारी दृश्य की विशालता इन गीतों मे स्पष्ट परिलक्षित होती है। माता के हृदय में अपने बालक के प्रति उठने वाली लोरियॉ, प्रियतम के विरह में तड़पने वाली नववधू की तड़पन, विधवा की कसक, कन्या का हास्य, झूले की बहार, पति-पत्नि के मिलन-विरह की कथा, उलाहनें आदि से ओत प्रोत है। सहरियाओं का गीतों से जन्म से लगाकर मृत्यु तक सर्वत्र सम्बंध होता है। बच्चे के जन्म पर सौहर और जच्चा के गीत, जनेऊ गीत, विवाह (बन्ना, बन्नी) गीत, तेल के गीत, मंडपगीत, परदेश गमन पर गीत और मृत्यू के अवसर पर गीत गाना एक रिवाज है।

सहरिया लोकगीतों में भावों का अशेष भण्डार होता है, क्षण-क्षण के भाव इनमें बॅध जाते हैं। समाज का कौन- सा ऐसा टुकड़ा है। जिसका रूप इनमें व्यक्त नहीं होता है। जीवन के मधुर, कोमल और कठोर क्षण उनमें मिले हैं। अनुभव की गहराई और व्यापकता उनमें दृष्टिगोचर होती है।[5]

लोक साहित्य में गीत का महत्वपूर्ण स्थान होता है क्योंकि गीत मानव भावनाओं की अभिव्यक्ति का अन्यतम माध्यम माने जाते हैं। उनके गीत सॉस्कृतिक चेतना के प्रतीक हैं। उनके गीतों में सुख-दुख, मन-प्राण, प्रणय-मैदान, तीज त्यौहार, जन्म -मृत्यु सभी व्यक्त हुए हैं।

सहरियाओं के लोकगीत साधारण, अकृत्रिम, सजीव, होते हुए भी मर्मस्पर्शी और सबके लिए हैं। ये गीत मानव की मूल प्रवृत्तियों पर आधारित हैं, अतः आत्मीय हैं। इनके गीतों में इनका युग जीवन मुखारित होता है। इनके लोकगीतों में उनके साहित्य का झलक मिलती है, साथ ही साथ उनके लोकगीत इनके अभाव ग्रस्त जीवन की गाथा कहते हैं। अभावों के बाबजूद सहरिया लोग काफी प्रसन्न रहते हैं, यही भाव इनके गीतो में देखने को मिलता है।

लोकगीतों का वर्गीकरण

सहरिया जनजाति आर्थिक व शैक्षणिक दृष्टि से काफी पिछड़ी हुई है, परन्तु ऐसा माना जाता है कि उनकी सॉस्कृतिक धरोहर अत्यन्त समृद्ध है।

सहरिया लोकगीत साधारण हैं पर ये गीत सजीव व आत्मीय हैं। उनके गीतों में सरसता, मधुरता व रस की प्राप्ति होती है। उनके गीतों को मुख्यतः निम्नानुसार विभाजित किया है :

संस्कार : सहरिया समाज में जन्म संस्कार का बडा महत्व है। प्रथम प्रसवकों अच्छा व शुभ माना ताजा है। निर्धनता के कारण स्त्रियॉ कृषि एवं मजदूरी का काम करती है। पुत्र जन्म की सूचना सहराने में थाली बजाकर दी जाती है इस संस्कार को सहरिया समुदाय ''बाहर निकालना'' कहते हैं। इस अवसर पर मंगल गीत गाते हैं, उसके उपरांत गुड, घूघरी और बताशे बॉटे जाते हैं। जन्म के समय गाये जाने वाला गीत दृष्टव्य है- ''म्हारी जच्चा पडी रे बीमार, पडी बेहाल/ दरद की म्हारी तुम आजाओ कृष्ण मुरारी...../ मैने सासूजी बुलाया री आल्यो हाल,/ वो आया री आधी रात घमंड की म्हारी/ - - --/ तुम आजाओ कृष्ण मुरारी।''[6]

प्रसूता स्त्री के समय में उसकी पीडा को जेठानी और देवरानी न समझकर व्यंग कस रही हैं जबकि सास ननद व देवर इसकी सहायता करते हैं- ''आंगण में ऊबी जच्चा यूँ उठ बोली पिया,/ अब न रहूँगी जी का घर में,/ - - -/ सासू ननद म्हारी भली भली आजे,/ चूनर उडाऊ उसी दन में।''

सहरिया जनजाति ईश्वर प्रेम, देवी देवताओं जिसकी मनौती से बच्चे का जन्म हुआ है, उनके गीत गाते हैं। ''पतिमान रे रावण म्हारी बात, पाछे मेल्या सीता ने/ तू मत जाणे रे रावण सीता है म्हारी, ये तो तीनों लोक की मात/ - - - - -/ ई पे सेत बनावे हनुमान।''

सहरिया जनजाति भी मंगल कामना, सुख समृद्धि हेतु देवी देवताओं के दरबार में जाते हैं। एक उदाहरण दृष्टव्य है- ''बीजासन को टिकट कटा दे म्हारा बलया,/ करौली का टिकट कटा दे म्हारा बलमा/ बैठ रेल में जाऊँ री म्हारा भोला बालम/ - - - - -/ मैया न चढावा जाऊ रे म्हारा भोला बालम।''[7]

विवाह : संस्कारों में जन्म के बाद विवाह संस्कार प्रमुख माना जाता है। उनके यहॉ परम्परागत विवाहों का प्रचलन है, जिसमें ''दापा'' (वधू-मूल्य) विवाह का मुख्य आधार है। माता-पिता अपने विवके से सम्बन्ध तय करते हैं। विवाह की प्रक्रिया लडकों वालों की तरफ से शुरू होती है। इनके सभी संस्कार अन्य जातियों के तरह ही होते हैं। सगाई के गीत की झलक दृष्टव्य है- ''खॉ से आये मेरे जसरथ समधी तो खॉ से आये मेरे रामचन्दर/ दूल्हा जैसी चम रही है झूम झनक अॅगना। झनक अॅगना री, बाबोल अंगना।''

विन्दायक (गणेश गीत) : शादी का प्रथम निमंत्रण गणेश को दिया जाता है, इसी परम्परा का निर्वाह सहरिया जनजाति भी करते हैं। एक गीत के माध्यम से गणेश की स्तुति करते हैं- ''गुण के सागर रूप उजागर तुझे मनाऊँ आज गणेश, ताती जलेबी, दूधन लाडू, तुझे जिमाऊँ आज गणेश/ - - - -/ सोना कीझारी गंगाजल पाणी,/ तुझे पिलाऊँ आज गणेश।''[8]

भातगीत : भाई अपनी बहन के विवाह में मायरा पहनाने आता है। वह अपनी बहन के लिए चूँदडी, झूमकी, रखडी, आदि लाता है परन्तु वह मुँह देखने का कॉच घर भूल जाता है तो बहन को पता लगते ही वह नाराज हो जाती है। वह भात पहनने से इंकार कर देती है। ''रंगीलो आज आयो भतैया, छबीलो आजु आयो भतैया/ ननदबाई बिन्दिया सॅमारि के पैरों के माथे कोई लेइगो भतैया/ ननद बाई चुलिया समाई के पैरों के जुबना करि लेइगो भतैया।''[9]

भारतीय संस्कृति में सोलह संस्कारों में विवाह संस्कार का प्रमुख महत्व है। सहरिया जनजाति में भात भरने की अनोखी परम्परा है। भात भरने के समय में भाई थोडा लेट हो जाता है तो सास ससुर जिठानी जेठ तरह तरह की बातें करते है, तबवह कहती है कि मेरे भाई के लिए ऐसे मत बोलो वह बहुत दूर से है आते समय उसने गंगा, यमुना नदी पार की है। इसलिए समय पर नहीं आ पाया, इसलिए अब मै सुबह मायरा पहनूगी। ''ससुरजी मत बोलो बोल, इरछ म्हारो बीर,/ जमुना में रह गयो रात, यमुना में रह गयो रात,/ तड़का में पहरू मायरो. .../ छोटो सो म्हारे बीर, बालक है म्हारो बीर,/ तड़का में पहरू मायरो...।''

विवाह की रस्मों में विदाई की रस्म सबसे कारूणिक व अन्तर्मन को दुःखी करने वाली होती है। मॉ बाप नाजुक सी बेटी को पाल पोसकर बड़ा करते हैं। और एक दिन घर से पराये घर विदा कर देते हैं। इस अवसर पर सभी की ऑखें नम हो जाती है। सहरिया गीत के माध्यम से विदाई का कारूणिक चित्र दृष्टव्य है- ''मम्मी पापा न रोता न छोड चाली रे,/ आज म्हारी बन्नी ससुराल चाली रे/ काकी काका ने रोता न छोड चाली रे, आज म्हारी बन्नी ससुराल चाली रे,/ - - / आज मेरी जानकी हो गई परायी श्री मंडल के नीचे/ मैया भी बैठी, बाबुल भी बैठे, बाबुल ने हार दये बचन,/ हमारे श्री मंडल के नीचे आज मेरी जानकी।[10]

सहरिया समुदाय में भी मृतक दाह-संस्कार करने की परम्परा है। मृत्यू ही जीवन का अन्तिम शाश्वत सत्य है। दाह संस्कार में सहराने की सभी लोग एक एक लकडी लेकर आते हैं। तीसरे दिन अस्थियॉ एकत्रित कर प्रवाहित किया जाता है। इसे *धारी संस्कार* कहते हैं। रिश्तेदार व आने वाले लोग व्यक्ति की मृत्यु पर संवेदना प्रकट करते हैं, साथ ही शरीर की नश्वरता एवं भजन, एवं गंगाजी सम्बन्धी गीत होते हैं। ''बोल सको तो बोलो रे, मन राधे किशना बोलो रे/ बालापन हरिमाटी खाई, माय जशोदा ने डॉट बतायी/ ग्वाल बाल संग गाये चरायी, मधुर मधुर मुख मुरली बजायी। चक्र सुदर्शन धारी रे।''

पर्व एवं त्यौहार के गीत : अन्य आदिवासी समुदाय की तरह सहरिया आदिवासी भी पर्व एवं त्यौहारों को बड़ी धूमधाम से मनाते हैं। त्यौहार के गीतों में उनकी संस्कृति स्पष्ट रूप से परलक्षित होती दिखाई देती है।

जन्माष्टमी के गीत : सहरिया संस्कृति में जन्माष्टमी का पर्व पूर्ण मनोयोग से मनाते हैं। कृष्ण को संदेश भेजती हुई सखियॉ कहती हैं- ''उड़ती कोयलिया म्हारा श्याम को संदशों ले,/ जारी ओ परवानो ले जारी उडती कोय लिया,/ पनघट पै जाऊँ श्याम म्हारों पनघट पै न आवै री,/ यमुना तट की पडिहारी थारी वाट देखे रे।''

होली गीत : होली सहरिया जनजाति का प्रमुख त्यौहार है। होलिका दहन के समय कृष्ण ने होली का उत्सव रचाया है, हरे बास से पिचकारी बनाकर खूब होली खेलते हैं। ''रची कनैया फाग प्यारे मोहन रा, कोन कटा लये जे हर प्यारे मोहनरा,/ मोहन कटा लये जे हर प्यारे मोहन रा, अरे राधा हरे बॉस प्यारे, मोहन रा,/ जो हर खेले प्यारे मोहन रा, अरे बरिया डरे मडराय प्यारे मोहन रा।''[11]

नवरात्रि के गीत : नवरात्रा का पर्व पूरे भारतवर्ष में सभी समुदायों में बड़े जोर शोर से मनाते हैं। सहरिया जनजाति भी नवरात्रों में खूब आनन्द लेते हैं। कैलामैया के यहॉ बड़ का पेड़ है जो मुझे बहुत प्यारा लगता है। ''कैला मायी जी न बडला लगायो, बडला से कोयल फूटी, म्हारी मायी जी,/ थारो बडला लगे मने प्यारो, दूध से सीचूँ दहीडा से सीचूँ/ नारियल की वाड लगाऊँ म्हारी मायी जी, थारो बडला लगे मनें प्यारो।''

दशहरा के गीत : भगवान राम के जन्म लेने से अवधपुरी में खुशियॉ छा गयी हैं। कौशल्या की किस्मत जाग गई है और माता सुमित्रा बड़े भाग्यवाली है जिनके यहॉ राम और लक्ष्मण जैसे भाईयों ने जन्म लिया है।

''जनम लियो मेरो रघुराई, अवधपुरी में बहार आई,/ माता कौशल्या की किस्मत जागी, मात सुमित्रा बड़ भागी,/ राम से लक्ष्मण दोनों भाई, अवध ापुरी में बहार आई।'' - - - - - / राम सुमर के सुमरन करले को जाने कल की/ खबर नैया जग में पल की, जैसे ओस बूँद का मोती,/ ऐसेई काया जाती, भाई बहिन और कुटुम कबीला, बेटा और नाती,/ विपत रहे कोई काम न आवे, सम्पति के सब साथी,

उक्त गीत के माध्यम से जीवन क्षणभंगुर है, परिवार, रिश्ते सव थोथे हैं। सब संम्पत्ति से प्रेम करते हैं।

ऋतु एवं प्रकृति सम्बन्धी गीत : सहरिया जनजाति को प्रकृति की गोद में पलने वाली संतान कहा जाता है। उनके लोक-गीत साल के बारह महीनों चलते हैं। सावन महीने में एक महिला अपने पति से कहती है कि हे स्वामी सावन आ गया है, आप मुझे कुछ उपहार लाकर दो। मुझे मायके जाना है एक दृष्टव्य है- ''सुहना लागे अरे कछू, लै दियो हो, लंहगा लाल सुलाम/ फरिया तो लईयो अरे रेशम पाट की, जेमें लिखे पपीरा मोर।''

बारिश ऋतु में जब बारिश नहीं होती है तब सहरियॉ महिलायें इन्द्र देवता के गीत गाती हैं। और कहती हैं कि इन्द्र राजा आप जल्दी से आये, और पानी बरसाओं, सहरियॉ महिलाऐं बारिश में खेतों में काम करती हुई गाती हैं- 'इन्दर राजा वेगा आओ, मेंढकी न पानी पिलाओ/ बरसूँगी, बरसाऊँगी, ज्वार बाजरा बुआऊँगी/ बानड्या की छाती कुटाऊँगी, खाड में तो पानी कुनपा'

फागुन के गीत : होली का त्यौहार सहरिया समुदाय में अत्यन्त हर्षोल्लास एवं धार्मिक भावना से मनाया जाता है। फाग के यह गीत फागुन में गाये जाते हैं, इन गीतों को ढोलक, मजीरों, नगाड़ों के साथ गाया जाता है जिनमें पुरूषों द्वारा पहले फाग गाये जाते हैं, फिर स्वॉग रचे जाते

हैं। स्वॉग के साथ ही एकाभिनय व नाटक गीत प्रस्तुत करते हैं- ''धरती रे खोदे मिले प्यारे, चिन्त मिले परदेश,/ मॉ को रे जाओ बीरन ना मिले, मैने ढूढे रे तीनों लोक/ लक्ष्मण भैया भरत से मिले ना रे,/ मैंने ढूँढे तीन लोक लक्ष्मण भैया भरत से मिले ना रे।''

फागुन माह में सहरियाझोली भरकर अबीर और गुलाल से होली खेलते हैं, जिससे बादल भी लाल प्रतीत होते हैं। वे होली खेलने के लिए लाल गुलाबी रंग बनाते है। ''आज बीरज में होरी रे रसिया, होरी रे रसिया, बरजोरी रे रसिया,/ उडत गुलाल लाल भये बादल, अबीर उडत भर झोली रे रसिया/ लाल गुलाबी रंग बनाया, नौ मन केसर घोली रे रसिया/ बरसाने में धूम मची है, राधा होली खेले रे रसिया।''

सहरियॉ जनजाति में प्रमुख लोकगीतों के अलावा विविध गीत भी गाये जाते हैं, जिनमें लॉगुरिया, ख्याल, रसिया रागिनी गायन कन्हैया आदि गीत भी प्रमुख हैं रसिया की एक झलक चित्रित है- ''जनुरिया बैरन छाय गयी रै, बिछाई आई खाट,/ ससुर बडे रंग रसीया बुलावे आधी रात, सासु बड़ी ठगनी करेगी बदनाम,/ वो तेरो मेरो कहा करेगी रे, कूटेगी सारी रात,/ जनुरियॉ बैरन छाय गयी रे, बिछाई आयी खाट।''

उक्त गीत के माध्यम से व्यंग का चित्रण दिखाई देता है। कन्हैया गीत कृष्ण लीला से सम्बन्धित होते हैं। इसमें कृष्ण मॉ यशोदा से शिकायत करते हैं। कालिया नाग मर्दन प्रमुख कन्हैया गीत है- ''मैं नहीं माखन खायो, मेरो झूठो नाम लगाओ, ग्वाल बाल सब गये गऊअन में, शारा पडे घर आयो,/ गेंद गई कालीदैं में गेंद के संग ही धायो/ नागनाथ के लायो मैया कान्हा सपेरों बन आया।''[12]

सहरिया जनजाति के लोकगीतों की भाषा सरल, सरस, मधुर एवं सुंदर है। इन लोगों ने अपने गीतों में भावों का जटिल रूप न देकर सहज रूप दिया है। लोक साहित्य में लोकगीतों का अपना महत्व होता है, क्योंकि ये जनता के द्वारा रचे जाते हैं। सहरिया लोक- गीतों की भाषा में स्थानीय क्षैत्र विशेष की बोली का समावेश अधिक दिखाई देता है।

अतः कह सकते हैं आर्थिक दृष्टि से सहरिया समृद्ध न होते हुए भी उनके लोकगीत उनकी संस्कृति के प्रतीक हैं। इनके लोकगीतों में समयगत सत्य को पाने की ललक भी है, लोकगीतों के माध्यम से अपने कष्टप्रद जीवन से मुक्ति पाने की कामना करते हैं अपने अभावों से भरे जीवन की कठिनाइयों को भूलकर प्रसन्न रहते हैं। अतः सॉस्कृतिक दृष्टि से यह जनजाति अत्यन्त समृद्ध मानी जाती है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

[1]हजारी प्रसाद द्विवेदी -*हिन्दी साहित्य की भूमिका,* पृष्ठ संख्या 130

[2]डॉ सत्येन्द्र लोक -*साहित्य विज्ञान,* पृष्ठ संख्या 315

[3]हजारी प्रसाद द्विवेदी -*हिन्दी साहित्य की भूमिका,* पृष्ठ संख्या 138

[4]डॉ सुदेश बत्रा -*राजस्थानी आदिवासी गीत,* पृष्ठ संख्या 4

[5]डॉ रश्मि श्रीवास्वत -*सहरिया समाज और संस्कृति,* पृष्ठ संख्या 48

[6]डॉ रश्मि श्रीवास्वत -*सहरिया समाज और संस्कृति,* पृष्ठ संख्या 48

[7]डॉ रश्मि श्रीवास्वत -*सहरिया समाज और संस्कृति,* पृष्ठ संख्या 51

[8]डॉ रश्मि श्रीवास्वत -*सहरिया समाज और संस्कृति,* पृष्ठ संख्या 55

[9]बसन्त निरगुणे -*सहरिया,* पृष्ठ संख्या 29

[10]बसन्त निरगुणे -*सहरिया,* पृष्ठ संख्या 30

[11]डॉ ओमप्रकाश चौबे -*सौर,* पृष्ठ संख्या 25

[12]बसन्त निरगुणे -*सहरिया,* पृष्ठ संख्या 54

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777
भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 10,49-52
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 06 दिसम्बर 2016

पूर्वी लोक गीतों में स्त्री विमर्श

डॉ. रमा पद्मजा वेदुला*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *पूर्वी लोक गीतों में स्त्री विमर्श* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *रमा पद्मजा वेदुला* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

सारांश

बचपन में पिता की, किशोरावस्था में भाइयों की, युवावस्था में पति की और बुढ़ापे में बेटों की अधीनता -लम्बे समय तक भौतिक, आर्थिक, परावलम्बन स्त्री जीवन का केन्द्रीय रहा है। किन्हीं अर्थों में अभी भी है। स्त्रियाँ साधनों का विनियोग करती हैं उनका उत्पादन और साज -सम्भाल भी उनके हिस्से होता है, पर उन साधनों के संवितरण पर उनका कोई नियंत्रण नहीं रहता। मायके से आया स्वाधीन और स्वयं उपार्जित वेतन भी खर्च होता है। पिता, भाई, पति, पुत्रों की आज्ञा से ही अपने हाथ से उठाकर वह किसी को एक अद्धी भी दे दें तो बहुधा इस पर हंगामा होते हैं। इसी का प्रतिशोध लोकगीतों के हास-परिहास, व्यंग्य, कटाक्ष आदि कई प्रसंगों में होता है।

शादी-ब्याह के अवसर पर मजाक मजाक में जो गलतियाँ बधू-पक्ष की ओर से वर पक्ष के लिए गाई जाती हैं, वह भी शायद दो परिवारों के बीच सम्बन्ध विस्तार के क्रम में हुई गलतफहमियों, मनमुटावों से निजात पाने का खुदरा सुरंगों की भड़ास निकालने काएक उपाय ही है।

दो सौतियों के बीच पलने वाले खट्टे-मीठे रिश्तों का भी खास मार्मिक साक्ष्य कुछ लोकगीत प्रस्तुत करते हैं, कुछ उदाहरण- ''झरोखे से झांक रही/ मेरा जिया जाने/ राजा जी लाए, लाए सौतनिया/ मैं दुल्हन सी लाग रही मेरो जिया जाने'' ''सौतन ने जायो जायो एक ललना/ मैं उच्च सी लाग रही, मेरो जिया जाने।''

आज स्त्री विमर्श एक आन्दोलन के रूप में उभर रहा है इसके मूल में केवल स्त्री अस्मिता नहीं, अपितु स्त्री के तन तन पर पुरूष अर्थात् स्त्री की अस्तिमता या उसकर स्वतंत्रता को हम हिन्दी साहित्य में देखना चाहें तो सरसरी नजर इस साहित्य पर डालेंगे। हिन्दी साहित्य के अधिकतर कालों में हम इसकी झलक पाते हैं। हिन्दी साहित्य के आदिकाल में पृथ्वीराज रासो जो चंदबरदाई द्वारा रचित है उसमें संयोगिता का स्वयंवर होता

* हिन्दी विभाग, आचार्य नागार्जुन विश्वविद्यालय, गुनटूर (आन्ध्र प्रदेश) भारत। (सदस्य सम्पादक मण्डल)

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

है और इसमें दूसरे वेश में आए पृथ्वीराज चौहान का चुनाव किया अर्थात् संयोगिता ने सही मानो में स्वयंवर चुना।

भक्तिकाल पर अगर नजर डालें तो चाहे भक्त लोग चाहे कितने ही महान क्यों न हो लेकिन स्त्री की अस्मिता या स्वतंत्रता को लेकर इतने गम्भीर नहीं थे, फिर चाहे कबीर, चाहे तुलसी; कबीर के विचार स्त्री के विषय में- ''तिरिया त्रिष्णां पापणी, तासू फ्रीतिन सोडी/ वैठीं चढ़ी पावौं पडै, लागे मोटी खोडी।'' अर्थात् स्त्री और तृष्णा (कामवासना और इच्छा) पाप कराने वाली है इसीलिए इनसे प्रीति नहीं करनी चाहिए क्योंकि ये पगडंडी पर चढ़कर जीव का पीछा करती है, अर्थात् तृष्णा रूपी तिरिया से प्रीति नहीं करनी चाहिए।

तुलसी ने स्त्री के विषय कहा है- ''ढोल गवांर शूद्र नारी सकल ताडन के अधिकारी।'' इस उद्धरण की सफाई में चाहे कितने ही तर्क हम प्रस्तुत करें लेकिन सच यही है कि स्त्री के प्रति इनके भी सामंतवादी विचार थे।

कबीर और तुलसी के मुकाबले सूरदास के विचार स्त्री के प्रति सामंतवादी नहीं थे। सूरदास ने सामंतवादी विचारों के विरोध में स्त्री को भी मन की स्वतंत्रता प्रदान करते हुए कहा है- ''भवन खन बिसरायौ/ नंद नंदन जन तै मन हरिलियो विरथा जनम गंवायौ।'' अर्थात् सभी गोपियों ने घर और पति को भुला दिया जब से नंद के पुत्र कृष्ण ने मन हर लिया, लगता है सारा जीवन व्यर्थ है।

रीतिकाल में भी एक तरफा घनानंद के प्रेम को नकार कर सुजान ने स्त्री के अस्तित्व को स्थापित किया है। मैथिली शरण गुप्त ने उर्मिला को लेकर साकेत लिख रहे यह तो हुआ हिन्दी साहित्य का गुजरा कल और आज मोटे रूप से देखा जाय तो स्त्री को स्वतंत्र केवल इसीलिए मान लिया गया है क्योंकि बाहर जाकर नौकरी करती है। क्या मात्र यही मतलब है स्त्री की स्वतंत्रता का? कहा गया है कि स्त्री की स्वतंत्रता तब मानी जाएगी जब वह आधी रात अकेली घर से बाहर जायेगी, लेकिन क्या ऐसा हो पाया? आज तो दिन दहाड़े खुले आम उसकी आबरू लूटी जा रही है।

स्त्री विमर्श में पुरूष को शोषक कहा जा रहा, तो इसका कत्तई मतलब नहीं कि यह सारे पुरूषों पर लागू हो केवल जो पुरूष संदर्भानुसार शीर्षक है उन्हीं पुरूषों की बात है जैसे कहा जाता है हर कामयाब पुरूष के पीछे स्त्री का हाथ होता है वैसे ही हर कामयाब स्त्री के पीछे पुरूष का भी हाथ होता है। (सांकलन पत्रिका, जुलाई-सितम्बर २०१०, पृष्ठ संख्या ११०/१११)

स्त्री विमर्श वर्तमान परिप्रेक्ष्य

स्त्री विमर्श का वर्तमान परिप्रेक्ष्य पूंजीवादी व्यवस्था के दो रूपों में घटित होने वाला विमर्श है औद्योगिक पूंजीवाद और आधुनिकता का विमर्श, वृद्ध पूंजीवाद उत्तर आधुनिकता का विमर्श। स्त्री आधुनिकता के बन्धन में थी और अब उत्तर आधुनिकता में मुक्त है यह कहना बेमानी है क्योंकि यह दोनों ही विचार एक ही आधारभूत अर्थव्यस्था की देन है। स्त्री मुक्ति का सपना दरअसल इस आधारभूत व्यवस्था की जमीन तोड़ने का सवाल है। सामन्तीय व्यवस्था में स्त्री व्यक्तिगत उपभोग के लिये बनाई जाती थी, पूंजीवादी व्यवस्था में स्त्री का श्रम, उसका शरीर उसकी चेतना न केवल सार्वजनिक उपभोग के लिये बनाई जाती है बल्कि उसे व्यापार के लिए एक पण्य भी तरह पैदा किया जाता है। सामन्तीय व्यवस्था में स्त्री का वस्तुकरण उसके उपभोग तक सीमित था परन्तु पूंजीवादी व्यवस्था में उसका पण्यीकरण उन्मुक्त उपभोग के साथ साथ व्यापार के लिए भी किया गया है।

पूंजीवादी व्यवस्था ने उसे घर और अवगुंठन की कैद के आजाद किया मगर उसकी मुक्ति के लिए नहीं उसके शरीर और चेतना को असीमित उपयोग के साथ साथ अकूत मुनाफा कमाने के लिए। यदि भू-मण्डलीकरण की परिघटना घटित नहीं होती तो क्या आज की स्त्री आजादी का भ्रम और नई स्त्री की छवि सम्भव थी? नहीं अर्थात् यह भू-मण्डलीकरण के द्वारा घटित घटना है इसका अर्थ है कि सामन्तीय व्यवस्था के स्थान पर कारपोरेट पूंजीपति

उसके इस तथाकथित मुक्त स्वरूप का स्वामी है, नियंत्रक है, डायरेक्टर है, मैनेजर है और उसके लिए अमूर्त है वह नहीं जानती है कि उसके श्रम और शरीर का वास्तविक शोषक कौन है? पहले उसका शोषक उसके सामने होता था और अब ऐसा नहीं है इसीलिए आजादी का भ्रम खतरनाक है।

भू-मण्डलीय पूंजीवाद स्त्री विमर्श सिर्फ उन चन्द मुक्त घोषित औरतों पढ़ी-लिखीं, माडर्न आफिस जाती हुई, रैंप पर चलती हुई, विज्ञापनों में अपना लिपा-पुता नंगा जिस्म दिखाती हुई स्त्री को ही स्त्री मानता है, परिभाषित करता है, उसके लिए ही चर्चा और विमर्श खड़े किए जाते है। उन्हें ही विकास का प्रतीक और स्त्री के सशक्तीकरण की मिसाल के रूप में पेश करके यह मनवा लिया जाता है कि स्त्री जितनी स्वतंत्र और सशक्त होनी थी हो गई यहाँ दो तरह के सवाल हैं- एक इस तरह की निर्मित छवि वाली कुल कितनी स्त्रियाँ है दो क्या उनके बारे में कोई सर्वेक्षण है। बदलती हुई स्त्री छवि को स्त्री विमर्श या स्त्री मुक्ति या सशक्तिकरण के नाम पर प्रस्तुत किया जाता है और इन गिनी चुनी स्त्रियों को ही स्त्री विमर्श की सफलता के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। पूरा मीडिया इन्हीं महिलाओं को पेश करके यह सिद्ध करने का प्रयास करता है कि स्त्री की दशा बदल चुकी है वह विकास और सशक्तीकरण की राह पर चल रही है। पर क्या यह बदलाव वास्तव में स्त्री विमर्श या स्त्री सशक्तीकरण का वास्तविक रूप है? क्या हम इतिहास के प्रत्येक युग में कमोबेश इतनी ही स्त्रियों को इस तरह की छवि धारण किए नहीं जाते हैं। स्त्री विमर्श इसीलिए प्रश्न उठाता है कि स्त्री की मुक्ति उसकी छवि में नहीं छवि को देखने और प्रस्तुत करने के दृष्टिकोण में है। (आलोचना; जनवरी-मार्च २०१३, पृष्ठ संख्या १०२/१०३/१०४)

पूरबी लोकगीतों में स्त्री विमर्श

यहाँ उपेक्षिता अपने पति को चिट्ठी लिखती है वह पूरी की पूरी सामने रख देने लायक है- ''पिरए परानnाथ, सादर परणाम/ इहाँ त सब कुसलै कुसल हौ/ अहें के हाल ला आत्मा विकल हौ/ यादौं ने हैत पिया हमारी सुरतिया/ विसरल नै हौब मुदा ससुरक नाम।''

यानी मेरी सूरत तो आपको अब तक भूल गई होगी पर ससूर का नाम शायद नहीं भूला हो क्योंकि वे तो आपकी ही तरह एक पुरूष है उनकी अपनी एक सामाजिक हैसियत है, जिसे किसी स्त्री की सूरत की तरह आसानी से भुलाया नहीं जा सकता। कहने का अर्थ शायद यह कि मेरी सूरत में इतनी कांति कहां जो आपको खींच लाए। पर पिता के नाम में शायद अब भी इतनी ताकत बची है।

''मैं चंदा जैसी नार राजा क्यों लाए सौतनिया/ जो मैं होती काली कलूटी तो लाते सौतनिया/ मेरे गोरे गोरे गाल राजा---''

इस गीत में स्त्री अस्मिता के साथ-साथ उसकी मौन इयत्ता का जयघोष दिखाई देता है। इसी क्रम में वह कहती है कि मैं लंगडी-लूली तो तुम सौतन लाने तो एक बात थी मेरी चाल तो हिरनी जैसी है, मैं गंपिन-गुंजिन भी नहीं-बांझिन-बूझिन भी नहीं मेरे लाल तो गांव के घर घर में खेलते हैं मैं बांझिन भी नहीं हूँ, हँसते-हँसते जान निकाल लेने की ग्राम बधुओं की यह कला सूरदास के उद्धव-शतक में बहकर सामने आई लड़ाई का घरेलू अस्त्र ही है ग्राम्य परिहास की यह परम्परा जिसका गवाह लोकगीत देता है। कोमलता, धैर्य, सहिष्णुता कभी कभी स्त्री के ऐसे अस्त्र बन जाने हैं जिनसे बड़े से बड़े परास्त हो जाए कैसे? इसकी आहट महादेवी वर्मा में सुनाई पड़ती है।

चैत के महीने में गाए जाने वाले गीतों को ''चैता'' कहते हैं भोजपुरी प्रदेश में उन्हें ''घाँटो भी कहते हैं, ''चैता'' अत्यधिक मधुर एवं सरस होते हैं। अन्य लोक साहित्यों की तुलना में चैती गाना कठिन है। इसमें कण्ठ की मधुरता, आरोह-अवरोह में लयात्मकता बहुत जरूरी है- ''कजरी निरहा सब कोई गावै/ सब कोई गावै फाग, चैता मनवा केऊ केऊ गावै, जेकर राग सुराग।''

वर्तमान में नारी-पुरूष दोनों चैती गाते हैं इन्हें तीन प्रकारों में विभाजित किया गया है- झलकुटिया- साधारण-शास्त्रीय, झलकुटिया चैता झाल एक प्रकार का वाद्य यंत्र के द्वारा गाया जाता है साधारण चैता व्यक्ति विशेष द्वारा

गाया जाता है। चैती का तीसरा प्रकार शास्त्रीय रागों से बंधा है। काशी की संगीत परम्परा को ध्रुपद, धमार, ख्याल, ठप्पा और ठुमरी की शैली की भांति चैती भी है, एक उदाहरण- ''एही ठैया झुलनी हेरानी हो शमा/ एही ठैया। सांस से पुछली ननदिया से पुछली/ देवरा से पूछत लजात से रामा/ देवरा से--

चैती का प्रारम्भ सुमिरन से होता है। सुमिरन में माँ शायद, काली या अन्य किसी देवता की स्तुति रहती है। चैत में आम-मंजरियों के टिकोरों का रूप लेने लगती है, गुलाब के फूलों की बहार रहती है, महुआ मदहोश होकर भूमि पर चूने लगता है, भ्रमर गुंजन करने लगते हैं और कोयल की मीठीं तान से सबका मन नृत्य करने लगता है ऐसी स्थिति में ही चैती सरीखाँ लोकगीतों का प्रणयन हुआ चैती सम्पूर्ण उत्तर भारत की खास चीज है। इन गीतों में स्त्री के विरह, प्रेम, सौंदर्य उसके उन्नत यौवन की कसमसाहर देखने को मिलती है। आजकल की चैती में समकालीन समस्यायें भी देखने को मिलती हैं। नगरीकरण के कारण ग्रामीण जन शहर में जाकर बदल जाते हैं। धीरे-धीरे उनके विचार रहन-सहन बोली भाषा, बोलने का रंग ढंग और मिट्टी की गंध भी बदल जाती है धीरे-धीरे ग्रामीण समाज व परिवाहक नेह की डोर टूट जाती है एक ऐसा ही चैता का उदाहरण- ''धीरे धीरे विचार सब, बदलल हो रामा/ भइले नगरवा/ गांव घर छूटि गइलै छुटि गइलैं नेहिया के डोर/ तोहरौ त इहै मन रहल हो रामा/ भइले नगरवा।

इस तरह लोकवाणी से उद्धुत चैता का एक एक शब्द स्त्री जीवन की व्यापकता में डूबा हुआ, उसके विभिन्न पहलुओं का सजीव चित्रांकन हुआ है। उपर वर्णित कविताओं की विषय वस्तु गढी हुई नहीं है। न इस संसार के अनुभव न विचार और न ही भाषा इन तीनों में एक सी सहजता है इनके संयोग से कवि कविता करते हैं उनके लिए उसकी सृजन प्रेरणा का आधार समाजोन्मुख और भविष्य के प्रति आशीर्वाद से है।

संदर्भ ग्रंथ

स्त्री विमर्श -विनय कुमार पाठक, पृष्ठ संख्या २२२ से २३१ तक, भावना प्रकाशन, दिल्ली, आई०एस०बी०एन० ८१-७६६७-१६४-९

संदर्भ ग्रंथ सूची

शृंखला की कड़ियाँ -महोदवी वर्मा
हिन्दी उपन्यासों में नायिका की परिकल्पना -डॉ० सुरेश सिंह
हिन्दी उपन्यास और नारी समस्या -स्वर्णकांता तलवार
हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद -त्रिभुवनदास सिंह

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 10,53-57
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 04 दिसम्बर 2016

अमृतलाल नागर के उपन्यासों में स्त्री विमर्श

डॉ. कल्पना बाजपेयी*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *अमृतलाल नागर के उपन्यासों में स्त्री विमर्श* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *कल्पना बाजपेयी* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

हमारे पुरूष प्रधान समाज में स्त्री प्राचीन काल से ही अपनी काबलियत को दिखाती आ रही है। गार्गी, अहिल्या, सावित्री, लक्ष्मीबाई, आदि पिछले काल से लेकर लता मंगेशकर, इंदिरा गांधी, कल्पना चावला जैसी आज के युग की स्त्रियॉ न तो पहले कमजोर थी और न ही अब। जब भी उनकी आन को ललकारा जाएगा, वह सहज ही उस चुनौती का डटकर मुकाबला करेंगी। हमारे देश की सुरक्षा की बात हो या परिवार के देखभाल की बात हो, पुरूष हमेशा अपने साथ स्त्रियों को पायेंगें। अगर सही मायने में देखा जाए तो स्त्री-पुरूष का स्वाभिमान है, लेकिन यह सब कुछ सिर्फ सिक्के का एक पहलू है, अगर हम दूसरे पहलू को देखें तो कह सकते हैं कि स्त्री को हमारे समाज में अपना आत्म सम्मान बचाने के लिए हमेशा संघर्ष करना पड़ता है। क्या वास्तव में आज एक लड़की सुरक्षित है? एक लड़की के माता-पिता का मन तब तक बेचैन रहता है जब तक उनकी बेटी बाहर से घर नहीं आ जाती है। हमारे समाज में कुछ लोगों की वजह से पूरे पुरूष वर्ग को नारी की मनःस्थिति से गुजरना पड़ता है कि एक बच्ची किस पर विश्वास करे?

हिन्दी साहित्य भी इस तरह की स्थितियों से अछूता नहीं रहा है। हमारे लेखकों ने स्त्रियों की सामाजिक स्थिति के बारे में अपने-अपने दृष्टिकोण से साहित्य सृजन किया हैं, चाहे वह कहानीकार, एकांकीकार या उपन्यासकार कोई भी हो, सभी ने अपनी रचनाओं में स्त्रियों की सामाजिक स्थिति के विभिन्न रूपों को चित्रित करने का अथक प्रयास किया है।

उपन्यासकार नागर जी ने हमेशा ही स्त्रियों के भावों को अपने पात्रों द्वारा पाठकों के सामने रखा है। उन्होंने यथार्थ को हमारे समक्ष रखा है। नागर जी ने अपने उपन्यासों में स्त्री के कई पहलुओं को रखा है। जैसे कि एक पतिव्रता नारी कन्नगी, शारीरिक आकर्षण को अहमियत देती हुई वेश्या माधवी, अपनी बच्ची के निधन तथा पति की दूसरी शादी की वजह से ताई की विक्षिप्तावस्था, आठ सौ रूपये में बिकी हुई मुन्नी, एक शासक का पद पाने के लिए संघर्ष करती हुई जुआना बेगम अर्थात् मुन्नी, तुलसीदास की पत्नी रत्नावली, उच्च जाति की होने के बावजूद निम्न जाति के संघर्ष में लीन निर्गुनियां, अन्तरजातीय

* असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, लिंगराज महाविद्यालय, बेलगावी (कर्नाटक) भारत। (सदस्य सम्पादक मण्डल)

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

विवाह की हुई सरसुतिया, दहेज-प्रथा से जूझती सीता आदि-आदि। नागर जी ने अपने उपन्यासों में समाज में नारी की स्थिति को उजागर किया। यहां पर हमने नागर जी के उपन्यासों में चित्रित नारी विमर्श के विभिन्न पात्रों का समग्र अध्ययन प्रस्तुत किया है :

वेश्या की मनः स्थिति; कोई भी स्त्री अपनी मर्जी से में आकर या जबरदस्ती के कारण वेश्या बनती है। नागर जी ने माधवी के जरिए, ''सुहाग के नूपुर' उपन्यास में वेश्या के प्रति हमदर्दी जताते हुए कहा है- ''माधवी के चेहरे पर निराशा की कालिमा छा गई, बोली, ''मैं केवल खिलौना हूँ।'' प्रकृति से मानवी के सारे गुण पाकर भी मैं समाज के अधिकारों से वंचित हूँ। मेरे प्यार का उपहार तुम्हारा प्यार नहीं हो सकता.....केवल विलास.....कोरा विलास। वाह रे तुम्हारा न्याय.....''[1]

एक वेश्या को अपने शारीरिक सौन्दर्य पर बहुत गर्व होता है क्योंकि इसी से वह पुरूष को आकार्षित करती है। इसी झूठे अभिमान का चित्रण ''सुहाग के नूपुर उपन्यास में माधवी के माध्यम से देखने को मिलता है- ''माधवी शोकाहत हो बोली, ''अपने रूप-यौवन में तुम्हारे बुढ़ापे की झुर्रियां। ---मौसी मेरे अल्हड़ यौवन को कठोर सत्य से घायल कर दिया।''[2]

एक वेश्या माँ तो बन जाती है, पर सुहाग का सुख उसे कभी नहीं मिलता है। वह हमेशा सुहाग का सुख पाने के लिए तड़पती रहती है। इस कारण उसके मन में एक सुहागिन के प्रति ईर्ष्या आना स्वाभाविक है। वे सुहागिनों से उनका पति छीन कर गर्व महसूस करती है। यह सब कुछ उसके घावों में मरहम का काम करते हैं। 'सुहाग के नुपुर' उपन्यास में दो पक्षियों के माध्यम से वेश्या की प्रवृत्ति को दर्शाया गया है। ''दम्पति का वियोग ही वेश्या का इष्ट है। कल से इन्हें आमने-सामने अलग-अलग पिंजरो में देखना चाहती हूँ सुना? माधवी के स्वर में शासन का तेज था।''[3]

सुहाग के नूपुर उपन्यास में माधवी सुहाग के नूपुर प्राप्त कर समाज में अपना स्थान बनाना चाहती है, लेकिन सामाजिक यथार्थ का ज्ञान होने पर विद्रोहिणी बन जाती है। उसकी दृष्टि में वेश्या जीवन का सत्य है। ''कोई कहता है, मुझे मानव मात्र से घृणा है, मैं समाज का नाश करती हूँ, कोई यह नहीं देखता कि वेश्या अपने संस्कारों में पाली जाती है। जो स्त्री किसी भी अन्य गृहिणी की तरह कामकाजी और जग संचालन का भार वहनकरने के योग्य थी, उसे पुरूषों की विलास-वासना मात्र बनाकर समाज में निकम्मा छोड़ दिया जाता है फिर क्यो न वह समाज से घृणा करें।''[4]

'मानस का हंस' उपन्यास में तुलसीदास मोहिनी वेश्या की सुंदरता पर रीझ जाते है, उसकी ओर आकार्षित हो जाते हैं। उसकी एक झलक पाने के लिए आतुर रहते हैं। वह सोचते हैं कि मोहिनी भी उससे प्रेम करने लगी है लेकिन अम्मा उनके इस भ्रम को तोड़ देती है क्योंकि एक वेश्या प्रेम और वासना के अन्तर को नहीं समझती। तुलसीदास के प्रेम रूपी भ्रम को यहां पर चित्रित किया गया है- तुलसीदास ने मोहिनी से कहा, ''प्रेम शुद्व हो तो लोक और परलोक दोनों सुधर जाते हैं। और तुम्हारे बिना तो मेरे अब बिगड़ जाएंगे मोहिनी। मैने अपने मन के सत्य को पहचान लिया है।'' तब अम्मा ने कड़कदार आवाज में कहा ''कान खोलकर सुन लो महराज जवानी का यह मद उतर जाने के बाद फिर यह मत कहना कि वेश्या ने तुम्हें ठग लिया। मैं विश्वनाथ बाबा की साक्षी में यह बात तुमसें कहे जाती हूँ।''[5]

प्रेमिका तथा पत्नी के रूप में नारी; प्रेम-विवाह हमारे समाज में प्राचीन काल से चला आ रहा है, अगर प्रेम दिल से किया जाए तो वह समाज में अच्छाई को स्थापित करता है। लेकिन अगर प्रेम-वासना के वशीभूत किया जाए तो वह समाज में भ्रष्टाचार को सामने ला देता है। नागर जी ने प्रेम तथा अन्तरजातीय विवाह को मान्यता दी है। तथा ''बूंद और समुद्र उपन्यास में तारा के माध्यम से अन्तरजातीय प्रेम विवाह को चित्रित किया है। ''तारा ने अन्तरजातीय प्रेम विवाह किया है और वह इसमें कोई बुराई नहीं मानती है। अपितु उसे इसका गर्व है- ''तारा इण्टरमीडिएट तक पढ़ी है। उसने अंतरजातीय प्रेम विवाह किया है।''[6]

नागरजी ने रत्नावली के प्रेम प्रंसग को मानस का हंस उपन्यास में बड़ी ही खूबसूरती से चित्रित किया है। प्रेमी-प्रेमिका का प्रेम एक दूसरे को प्रसन्नता के सागर में डुबो देता है। रत्ना, आत्मलीन दृष्टि से तुलसीदास को देख रही थी। तुलसीदास भी टकटकी बांधकर उसे ही देख रहे थे। बोले- ''तुम्हारी इस रस-डूबी दृष्टि ने तुम्हें छोड़ने के बाद भी मुझे वर्षो तक सताया है। जब राम में ध्यान लगाता था तो ये ऑखे ही मुझे अपनी आकर्षण झील में डुबा देती थी। कई बार जी चाहा कि घर लौट चलूँ और तुम्हारी इन ऑखों की छाया तले अपना जीवन शेष कर दूँ।''[7]

जब एक प्रेमी अपनी प्रेमिका के पास होता है, तब उस समय प्रेमिका की क्या मनः स्थिति होती है? नागर जी ने उसका यथार्थ चित्र प्रस्तुत कर दिया है क्यो कि लज्जा स्त्री का गहना होती है जो एक प्रेमिका को और भी खूबसूरत बना देती है। ''रत्नावली की आंखे लाज और प्रेम आभार से झुक गई। चेहरे पर सुहाग की ललाई दौड़ आई। हाथ से पैर के अंगूठे को मींजते हुए संकोच-भरे स्वर में बोली ''घर में बातें होती थी कानों में पड़ता था कि तुम ब्याह करने को राजी नहीं होते हो। सुन-सुनकर मेरा हठ बढ़ता जाता था कि तुम्हें पाकर ही रहूँगी। तुम जानते हो, मैं नित्य हर गौरी पूजन करने गॉव के मंदिर में जाने लगी थी।''[8]

संसार में राम भक्त के रूप में तुलसीदास प्रसिद्व हुए। नागर जी उसका श्रेय अपने उपन्यास ''मानस का हंस में तुलसी की पत्नी को ही मानते हैं, क्यों कि रत्नावली से ही उन्हे प्रेम का स्पर्ष मिला था और यही अमृत रूपी प्रेम उन्हें राम जी के पास ले गया। ''रत्ना के मान को देखकर बाबा मुस्काए और उसके सिर पर हाथ फेरते हुए स्निग्ध स्वर में कहा- ''तुम्हें छोड़ा कहां प्रिये। रत्ना के प्रति रीझ ही तो राम-भक्ति

बनी। वह चिरतरूणी और अनन्त सौन्दर्यमयी है। मै अपनी रामरिझवार के लिए आज तक तुम्हारा ऋणी हूँ। किसी पत्नी ने पति को ऐसा सौभाग्यवान नहीं बनाया होगा।

चंचल चपल नयनों से बाबा को निहारकर रत्ना बोली ''राजकुमारी विद्योत्तमा ने मूर्ख कालिदास को कवि- कुल-गुरू बना दिया किन्तु तुम जो कुछ भी हो वह स्वेच्छा से बने हो''

तुलसी बोल, ''तुम्हारा वह अंहकार मेरी चेतना जड़ता को तोड़ने वाला हथौड़ा था। याद करो प्रिये तुम्हीं ने मुझे मूलरूप से राम काव्य लिखने की प्रेरणा भी दी थी।''[9]

हमारे समाज में स्त्रियों को अपना जीवन साथी चुनने का पूरा अधिकार मिलना चाहिए। लेकिन जिस प्रेमी ने सारी जिदंगी साथ निभाने का वादा किया हो और वह बाद में अपने किये हुए वादें को न निभाए, तो उस समय उस स्त्री पर क्या बीतेगी? उस समय की मनःस्थिति प्रेमिका के विचारों को नागर जी ने ''सात घूंघटवाला मुखड़ा'' उपन्यास में चित्रित किया है-

''रहने दो ये झूठी बातें। मैने तुम्हें अपना बेशकीमती दिल दिया था। दिल ही नहीं तुम्हारे फरेब में आकर परसों रात मैं तुम्हे अपनी वह सबसे बड़ी दौलत भी सौंप चुकी जो औरत किसी को जिन्दगी में सिर्फ एक बार ही दे सकती है।''[10]

प्रेमी इंसान जाति को नहीं देखता कि उसका प्रेम किस जाति के व्यक्ति के साथ हो रहा है। प्यार में इंसान अपना सब कुछ सिर्फ प्रेमी को ही मानता है तथा प्रेम में आकर अपना सब कुछ खोने को परस्पर तैयार रहता है। नागर जी के उपन्यास ''नाच्यौ बहुत गोपाल'' में इसका रूप हमें देखने को मिलता है। निर्गुनिया ब्राम्हण होने के बावजूद एक निम्न जाति (मेहतर) मोहन से प्रेम करने लगती है। वह कहती है- ''मोहन जैसा भी है अब उसका मन मोहन है। वह अपने आपको मोहन की कह सकती है। मोहन के सिवा अब और किसी पुरूष का अंग-संग वहन न कर सकेगी। जान दे देगी पर अन्य पुरूष के साथ उसका वैसा सम्बंध नहीं हो सकता। वह मोहन की है, मोहन की सन्तान की माँ।''[11]

''मानस का हंस'' के पात्रों में रत्नावली का विशिष्ट स्थान है। तुलसी चरित्र के अनेक पक्ष रत्नावली के द्वारा ही उद्घटित होते हैं। ''प्रेमी तुलसी की गृहस्थी का केन्द्र बनी पति-प्रेम गर्विता रत्नावली भारतीय बधू की सबलता और दुर्बलता को विश्वसनीय रूप से अभिव्यक्त करती है।''[12]

पतिव्रता नारी का समर्पण; स्त्री सब कुछ सह सकती है लेकिन अपने पति की रक्षा के लिए अपना सब कुछ अर्पित करने को तैयार हो जाती है। नागर जी ने अपने उपन्यास ''सुहाग के नुपूर'' में कन्नगी के माध्यम से समर्पित नारी का चित्र प्रस्तुत किया है। कन्नगी अपना जेवर, धन तथा मकान सब कुछ अपने पति के कहने पर वेश्या माधवी को दे देती है, लेकिन जब उसका पति माधवी को देने के लिए सुहाग के नूपुर माँगता है, तो वह मना कर देती है। सुहाग के नूपुर न देने के कारण वह अपने पति से मार भी खाती है लेकिन तब भी नहीं देती। पर जब उसके पति को व्यवसाय करने के लिए धन की आवश्यकता पड़ती है, तब कन्नगी खुशी-खुशी अपने पति से कहती है- ''अप्पा मेरे पैरों से लक्ष्मी को बॉध गए हैं। इन नूपुरों को बेचिए, नया जीवन आरम्भ करने के लिए इनसे पर्याप्त, धन मिल जाएगा।''

फिर कोवलन ने कहा ''तुम अद्भुत हो कन्नगी। इतना सहकर भी जो न दिया वह अब इतने सहज भाव से दिए डाल रही हो?''[13]

पति-पत्नी का रिश्ता एक कच्चे धागे की तरह होता है। विश्वास, ईमानदारी तथा एक दूसरे के प्रति समर्पण की भावना इस रिश्ते को मजबूत करती है। पत्नी पति का स्वाभिमान होती है। पत्नी का यह प्रेम ही उसे पतिव्रता नारी बनाता है। जैसे कि ''सुहाग के नूपुर'' उपन्यास में कन्नगी का उसके पति के लिए समर्पण की भावना को देखकर महराज बोले, ''चेटिट्पुत्र जीवन भर याद रखना, द्विविधा में बंधी हुई स्त्री कभी किसी भी पुरूष को बल नहीं दे सकती। वह कभी एक भाव में रहेगी और कभी दूसरे। एकनिष्ठ सती ही अपने पुरूष को बल प्रदान कर सकती है, क्यों कि वह द्विविधा से रहित होती है।''[14]

''मानस का हंस'' उपन्यास में जन तुलसीदास जी राम भक्त हो जाते हैं, तब एक दिन उनकी पत्नी रत्नावली अपने पति से मिलने आती है। तब तुलसी जी उनसे कहते हैं- ''श्री राम और इस अधम तुलसी में अन्तर है। लोक का चरित्र गिरा हुआ है। उसे उठाने की कामना रखने वाले को कठिन त्याग करना पड़ता है। लोक कल्याण के लिए तुम भी तपो, देवी। अब इस जन्म में हमारा-तुम्हारा साथ नहीं हो सकता।''[15]

इस समय रत्नावली अपने तुलसी से एक प्रश्न पूछती है- ''महर्षि ने उत्तरकाण्ड में धोबी की निन्दा सुनकर श्रीराम के द्वारा सीता जी का त्याग कराया है। आपने मानस में वह प्रसंग क्यों नहीं उठाया?''

तब तुलसी जी ने कहा, ''देवी मैं तुमसे कुछ न छिपाऊंगा। जो अन्याय मैं तुम्हारे प्रति कर सका वह मेरे रामचन्द्र जगदम्बा के प्रति नहीं कर सकते थे।''[16] इस प्रसंग से पता चलता है कि तुलसीदास इस बात से सहमत थे कि रत्नावली एक पतिव्रता नारी है। अपनी पत्नी से दूर रहने के कारण उनके हृदय में अपने प्रति ग्लानि भी थी।

पारिवारिक नारी का चित्रण; एक परिवार नारी के बिना अधूरा होता हैं नारी परिवार की जड़ होती है। परिवार में नारी के कई रूप देखने को मिलने है जैसे- माँ, बहन, पत्नी, बेटी आदि। इसी प्रकार नागर जी ने भी सास-बहू, माता-पिता का वात्सल्य, पति-पत्नी आदि रूपों में नारी का चित्रण अपने उपन्यासों में किया है। नागर जी पारिवारिक नारी के चित्रण में सिद्वहस्त हैं। मुहल्ले में बातें करती हुई दो बहुओं का चित्रण हमें 'बूंद और समुद्र' उपन्यास में देखने को मिलता है- ''लखनऊ के एक मुहल्ले में भभूती सुनार की दोनों जवान बहुएं

अपने मुंडेर पर झुकी हुई पड़ोसिन तारा से बातें कर रही हैं। नीची छत पर भभूती की दीवार से सटाकर रखे गये चीड़ के खाली बक्सों पर बैठ कर तारा अपनी पड़ोसिन सखियों की मुंडेर तक उठ आई है। सलाइयां रोक, चुन्ने-मुन्ने स्वेटर के फंदो पर नजर डालते हुये, भवों में बल डालकर तारा कह रही है- ''हमें तारा-तारा पुकारना अच्छा नई लगता- देखो भाई, बुरा न मानना। ''तारा तो बस एक उनके मुंह से ही मीठा लगता है हमें''[17]

'बूंद और समुद्र' उपन्यास में नागर जी ने सास-बहू के सम्बंध को भी चित्रित किया है। यदि सास, बहू को थोड़ा प्यार दे तो बहुयें भी सास को अपना मानने में, उनकी इज्जत करने में काई कसर नहीं छोड़ती है- ''अम्मा बहुओं पर मुनासिब रोब ही रखती हैं। न कभी बेजा लाड़ किया, न बेजा फटकारा। इसीलिए बहुएं अपनी सास का अदब करती है। दोनों लड़के अपनी बहुओं को सिनेमा दिखाने, घुमाने ले जाते है। इसका उन्होनें कभी बुरा नहीं माना। ....बड़ा धरम-सोध निबाहने वाली नंदो जब भाई भौजाइयों के खोट निकालती है तो अम्मा उसे ही झिड़कती है- ''तुमसे क्या? जो जिसकी समझ में आउत है वहीं करत हैंगें। कल को हमरे संकर एमे पास करके अपसर होयेंगें, उनकी बहुरिया पुरानी चाल से चलै तो किरकिरी न होय? खबरदार हमरी बहुअन को कभी कुछ कहा तो। हम कह लेंगे और किसी को न कहन देंगे- हां''[18]

'अमृत और विष' उपन्यास ने एक अंश में पिता द्वारा दुत्कारे जाने पर रमेश का यह कहना कि घर में मेरी लाश ही आएगी, सुनकर मां की संवेदना फूट पड़ती है- ''रमेश की माता भी तब तक भीतर से झपटकर आंगन के छज्जे से भागकर कमरे की गली पड़ती खिड़की से बाहर झांकने लगी थी। रमेश के लाश शब्द उच्चारते ही वे फुक्का मारकर कराह उठी, ऐसी कराह जिसमें कि शब्दहीन पशु अपनी पीड़ा व्यक्त करता है। उस कराह में उस सिंहनी माता की दहाड़ थी, जो विवश होकर अपनी सन्तान को बधिरों की बरछी से बिंधते देखती है, गोमाता का विवश रंभाना था और कराह के अन्तिम स्वरों में निरीह चिड़ियों की सी चीत्कार और चहचहाहट की तरह निर्बल शब्द फूट पड़े- ''ओ रमेश.....तुझे मेरी कसम बेटा। अरे तू मुझे मरी देख। मै मर जाऊंगी बेटा।''[19]

'अमृत और विष' उपन्यास में नागर जी ने पुत्ती गुरू के माध्यम से पति- पत्नी के सम्बंधों को जीवंतता प्रदान की है। पुत्ती गुरू भांग के बड़े शौकीन है, जब उनकी पत्नी स्वयं ही भांग घोटकर उन्हें देती है तो उनका उत्साह द्विगुणित हो जाता है-

''आ हा। अपने घर की अपनी गृहिणी के हाथ की भांग ऐसी अमृत सगान लगी है कि क्या कहैं। ससुर दस रूपये की लागत बखावत रहे। छिः। हरिओम बोम संकर आ हा। आज तुम्हारे हाथ की भांग में अष्ट-सिद्वि- नव -निधियों का रस उतर आया हैगा साला। अरे, आज मैं तुम्हें सपने में नौ लखा हार पहनाऊंगा रमेश की अम्मा, ऐसा चित्त प्रसन्न भया है तुमसे। हरिओम। (डकार) गुसाई जी का वचंन प्रमाण है कि ''नारी पतिव्रत जेहि घर मांही, तेहि प्रताप से अमर डराही।''[20]

अशिक्षित नारी की वेदना; हमारे समाज में नारी का शिक्षित होना बहुत ही आवश्यक है। अगर नारी शिक्षित होगी, तभी वह पुरूषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चल सकती है। नागर जी ने नारी को शिक्षित करने पर अपना पूरा समर्थन दिया है, तभी तो उनके उपन्यास 'बूंद और समुद्र' में अम्मा के द्वारा नारी की शिक्षा पर बल देते हुए चित्रित किया गया है-

''बड़ा धरम-सोध निबाहने वाली नंदो जब भौजाइयों के खोट निकालती है तो अम्मा उसे ही झिड़कती है- ''तुमसे क्या? जो जिसकी समझ में आउत है वही करत हैंगे। कल को हमरे संकर एमे पास करके अपसर होयेगें उनकी बहुरिया पुरानी चाल से चलै तो किरकिरी न होय? खबरदार हमरी बहुअन को कभी कुछ कहा तो''[21]

शिक्षा की अहमियत एक अशिक्षित नारी से बेहतर कौन समझ सकता है? शिक्षा के बिना एक स्त्री अपने को समाज से अलग अलग महसूस करने लगी है। 'बूंद और समुद्र' उपन्यास में बड़ी के माध्यम से अशिक्षित नारी की वेदना को दर्शाने के पीछे नागर जी का यहीं मन्तव्य है- ''आंखे-नाक पोछते हुये बड़ी ने कहा- ''मेरी किस्मत ही खोटी है, नही तो मुझे भी तुम लोगों की तरह पढ़ने घूमने का मौका मिलता। (उच्छ्वास एक हल्की हिचकी से अटकती हुई) हमारे समाज में स्त्रियों को किसी तरह की सुतंत्रता नहीं।''[22]

एक स्त्री अपने दायित्वों को अच्छी को अच्छी तरह से समझती है। एक पत्नी के रूप में वह हर कदम में अपने पति का साथ देने की कोशिश करती रहती है। वह अपने पति की रक्षा के लिए सावित्री भी बन सकती है। परिवार के सभी कर्तव्यों को पूरा करने के लिए वह अपने को समर्पित करने में बिल्कुल भी नहीं हिचकती, चाहे वह माँ के रूप में, पत्नी के रूप में या फिर बेटी के रूप में हो। एक शिक्षित नारी अपने परिवार का उज्जवल भविष्य होती है। जिससे समाज में एक नयी चेतना का आना स्वाभाविक है। इसलिए बेटियों को शिक्षित करने का पूरा प्रयास करना चाहिए। जिससे स्त्रियों के हृदय में आत्म विश्वास आता है और वह अपने फैसले परिपक्व रूप से कर सकती है।

कभी कोई भी स्त्री नहीं चाहती कि वह वेश्या बने लेकिन न चाहते हुए भी हालात से मजबूर होकर ऐसा बनना पड़ता है। जबकि इसे रोका जा सकता है। इस गन्दगी को हमारे समाज से जड़ से खत्म कर देना चाहिए। स्पष्टतः इन उपन्यासों में नारियां खासतौर से मानसिक रूप से संघर्ष करती देखी जा सकती है। यह संघर्ष ही उनके लिए मार्गदर्शन का काम करता है।

नागर जी ने समाज के कटु यथार्थ को अपने उपन्यासों में चित्रित किया है। भले ही वह एक लेखक हैं, समाज सेवक नहीं; लेकिन समाज में नारी की स्थिति को उजागर करके नारियों के मन में प्रगति की ओर बढ़ने की चेष्टा को सामने रखा है। लेखक का यह प्रयास नारी को मानसिक रूप से संघर्ष करने की प्रेरणा देता है। अगर हम नागर जी को यथार्थवादी लेखक कहें तो शायद गलत नहीं होगा, क्यों कि उनके उपन्यासों को पढ़ने से ऐसा प्रतीत है कि एक पुरूष होने के बावजूद स्त्रियों की परेशानियों को उन्होंने बहुत ही समीप से समझा है।

संदर्भ

[1]*सुहाग के नूपुर,* पृष्ठ संख्या 66, राजकमल प्रकाशन, संस्करण : 1965
[2]वही, पृष्ठ संख्या 37, राजकमल प्रकाशन, संस्करण : 1965
[3]वही, पृष्ठ संख्या 36, राजकमल प्रकाशन, संस्करण : 1965
[4]वही, पृष्ठ संख्या 234, राजकमल प्रकाशन, संस्करण : 1965
[5]*मानस का हंस,* पृष्ठ संख्या 149-150, राजपाल, संस्करण : 2012
[6]*बूंद और समुद्र,* पृष्ठ संख्या 4, राजपाल, संस्करण : 2012
[7]*मानस का हंस,* पृष्ठ संख्या 210, राजपाल, संस्करण : 2012
[8]वही, पृष्ठ संख्या 210, राजपाल, संस्करण : 2012
[9]वही, पृष्ठ संख्या 215, राजपाल, संस्करण : 2012
[10]*सात घूंघट वाला मुखड़ा,* पृष्ठ संख्या 12, राजपाल, संस्करण : 2011
[11]*नाच्यौ बहुत गोपाल,* पृष्ठ संख्या 181
[12]*समीक्षा,* जनवरी-फरवरी 1973, पृष्ठ संख्या 32, विष्णुकान्त शास्त्री
[13]*सुहाग के नूपुर,* पृष्ठ संख्या 239, राजकमल प्रकाशन, संस्करण : 1965
[14]वही, पृष्ठ संख्या 265, राजकमल प्रकाशन, संस्करण : 1965
[15]*मानस का हंस,* पृष्ठ संख्या 350, राजपाल, संस्करण : 2012
[16]वही, पृष्ठ संख्या 351, राजपाल, संस्करण : 2012
[17]*बूंद और समुद्र,* पृष्ठ संख्या 3
[18]वही, पृष्ठ संख्या 4-5
[19]*अमृत और विष,* पृष्ठ संख्या 206, लोक भारती प्रकाशन, संस्करण : 1968
[20]वही, पृष्ठ संख्या 149, लोक भारती प्रकाशन, संस्करण : 1968
[21]*बूंद और समुद्र,* पृष्ठ संख्या 4-5
[22]वही, पृष्ठ संख्या 60

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 10,58-69
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 14 दिसम्बर 2016

हिन्दी की आनुष्ठानिक शब्दावली : भाषा वैज्ञानिक दृष्टिकोण

डॉ. आलोक कुमार सिंह*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *हिन्दी की आनुष्ठानिक शब्दावली : भाषा वैज्ञानिक दृष्टिकोण* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र का लेखक मैं *आलोक कुमार सिंह* घोषणा करता हूँ कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देता हूँ।

सारांश

भाषा, मानव एवं समाज से अविछिन्न रूप से सम्बंधित है। हेरी ह्वाइजर ने स्पष्ट किया है कि प्रत्येक समाज में जिस प्रकार उसकी अपनी प्रविधियाँ-सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक एवं आर्थिक व्यवस्थाएँ होती हैं उसी प्रकार उसकी अपनी भाषा भी होती है। भाषा और संस्कृति भी घनिष्ठतः सम्बद्ध हैं। संस्कृति किसी देश या समाज की आत्मा है इससे उसके उन सब संस्कारों सम्यक् चेष्टाओं और उपलब्धियों का बोध होता है, जिनके सहारे वह अपने सामूहिक या सामाजिक जीवन व्यवस्था, लक्षणों व आदर्शों का निर्माण करता है। यह संस्कृति विशिष्ट मानव समूह के उन उदात्त गुणों को सूचित करती है जो मानव जाति में सर्वत्र पाए जाते हैं परन्तु किसी समाज विशेष में जिनका रूप या स्वरुप एक विशेष प्रकार का होता है। इसीलिए भारतीय संस्कृति एक विशेष प्रकार की संस्कृति है। भाषा व्यक्ति, समाज और संस्कृति के अन्तर्सम्बन्ध के कारण ही समय-समय पर सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तन के साथ भाषा भी प्रभावित होती है। यह प्रभाव सर्वाधिक भाषा की शब्द सम्पदा में परिलक्षित होता है। भाषा की शक्ति मूलतः उसकी शब्द-सामर्थ्य, शब्द योजना और शब्द व्यवस्था पर आधारित है। शब्द ही जीवन-सम्बन्धी नए विचार, नए भाव, नए अनुभव और नए मूल्य प्रस्तुत कर भाषा को समृद्ध बनाते हैं। वास्तव में शब्द ब्रह्म है, शब्द शक्ति है विश्व की समस्त भाषाओं का आधार शब्द ही हैं। भाषा की शब्द सम्पदा भाषा-भाषियों की सांस्कृतिक सम्पदा की जानकारी देती है अतः किसी भाषा की सांस्कृतिक शब्दावली का अध्ययन विशेष महत्व रखता है। जहाँ तक हिन्दी की सांस्कृतिक और विशेषतः आनुष्ठानिक शब्दावली का प्रश्न है इस सन्दर्भ में भारतीय संस्कृति पर दृष्टिपात करना भी अपरिहार्य है। भारतीय संस्कृति एक विशेष प्रकार की संस्कृति है। यह मानव जीवन का परम पुरुषार्थ, आत्मानुभव, आत्म-साक्षात्कार तथा आत्म-दर्शन है। यही कारण है कि भारतीय जीवनविधि में त्याग, तप, दया, सेवा, धर्म व कर्म, दर्शन व आध्यात्मिकता का प्राधान्य है। भारतीय संस्कृति के स्वरुप को जानने हेतु भाषा समाज, संस्कृति, धर्म, धार्मिक कृत्य, अनुष्ठान, संस्कारों के स्वरुप से परिचित होना अनिवार्य है। स्मरणातीत गुणों से व्यक्तित्व के विकास द्वारा मनुष्य के कल्याण और समाज एवं विश्व से उसका सामंजस्य स्थापित करने के उद्देश्य से विभिन्न संस्कारों का प्रावधान किया गया है। इन्हीं संस्कारों के साथ अनुष्ठान भी सम्बद्ध है। मूल रूप से संस्कार व्यंजक तथा प्रतीकात्मक

* असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, माँ मंशादेवी महाविद्यालय, चन्दौली (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

अनुष्ठान है। विभिन्न अनुष्ठानों, व्रतों, त्योहारों को सम्पन्न करने के विधि-विधानों के साथ एक विशिष्ट शब्दावली व्यवहृत होती है। आनुष्ठानिक शब्दावली के स्रोत और उनके अर्थपक्ष की जानकारी एवं विश्लेषण गम्भीर अध्ययन का विषय है।

भाषा व्यवहार मनुष्य के सम्पूर्ण सामाजिक व्यवहार का अंग है। किसी भाषा में व्यवहार क्षमता प्राप्त करने के लिए मात्र भाषिक संरचना, भाषा का व्याकरण एवं शब्दकोश का ज्ञान प्राप्त कर लेना ही पर्याप्त नहीं है बल्कि उचित सन्दर्भों में उपयुक्त संरचना का चयन, सामाजिक व्यवस्था के विषय में ज्ञान प्राप्त कर लेने के बाद ही किया जा सकता है। शब्द की महत्ता को रेखाँकित करते हुए स्पष्ट किया गया है कि शब्द भाषा की आधारभूत इकाई है। मानव समाज अपने भावों-विचारों की सम्पूर्ण अभिव्यक्ति शब्दों के माध्यम से व्यक्त करता है। शब्द भाषायी प्रतिमान हैं।

शब्द को भारतीय एवं पाश्चात्य भाषा चिन्तन अथवा व्याकरण में मूलभूत इकाई एवं भाषिक संकल्पना के रूप में स्वीकार किया गया है। किसी भाषा की शब्दावली से तात्पर्य उस भाषा में व्यवहृत शब्दों से है। विभिन्न स्रोतों से प्राप्त वह समस्त शब्द-राशि जो भाषा में प्रयुक्त होती है उस भाषा की शब्द सम्पदा होती है। भाषा की प्रमुख शब्दावली उसकी पूर्वजा भाषाओं की सम्पत्ति के रूप में प्राप्त होती है जो तत्सम्, तद्भव, अर्धतत्सम्, देशज, विदेशी आदि विभिन्न रूपों में व्यवहृत होती है। हिन्दी की आनुष्ठानिक शब्दावली का अध्ययन विश्लेषण करने पर स्पष्ट होता है कि इसमें विशेष रूप से तत्सम् शब्द अधिक मात्रा में समाहित हैं। इसके अतिरिक्त तद्भव शब्द भी व्यवहृत हैं। इस प्रकार आनुष्ठानिक शब्दों में तत्सम्, अर्धतत्सम्, तद्भव शब्दों के अतिरिक्त देशज तथा विदेशी शब्दों का भी समावेश है।

भाषा न केवल सामाजिक सम्प्रेषण का माध्यम है अपितु एक सांस्कृतिक उपलब्धि भी है। भाषा मानवीय संस्कृति का अपार सागर है। भाषा संस्कृति का अंग है इस कारण किसी भाषा के अध्ययन के लिए उसकी संस्कृति को जानना आवश्यक है। मैलिनोव्स्की के अनुसार भाषा का अध्ययन संस्कृति को जाने बिना असंभव है। भाषा को संस्कृति का प्रतिबिम्ब माना जाता है जो संस्कृति की आवश्यकताओं के अनुरूप विकसित होती है। भाषा, भाव, अर्थ और प्रयोजन की अभिव्यक्ति एवं उनके सम्प्रेषण का ध्वनिमय माध्यम है। किन्तु भाषा के व्यवहार विचार और शिक्षण में शब्द ही भाषा का केंद्र बन जाता है। शब्द भण्डार ही भाषा की संपत्ति है। शब्दों को भाषा की व्यावहारिक इकाई मानना उचित है। शब्दों के रूप, अर्थ, संस्कार आदि में ही भाषा का विकास और ज्ञान प्रकट होता है। वाक्यों की समग्र ध्वनिधारा के अखंड प्रवाह में शब्दों का निर्धारण एवं विश्लेषण भाषा की रचना में सर्वाधिक महत्वपूर्ण चरण है।

शब्द मानव-जीवन के जीवन्त प्रतीक हैं। वे केवल व्यवहार और सम्प्रेषण के माध्यम ही नहीं वरन् समाज के जीवन इतिहास और उसकी संस्कृति के सूक्ष्म दर्पण हैं। शब्दों की विपुलता, विविधता और विभिन्नता में मनुष्य का भाषामुखी सांस्कृतिक अध्यवसाय अधिक समृद्ध रूप में प्रकट हुआ है। शब्द भाषा इतिहास के सर्वाधिक विश्वसनीय साक्षी हैं। उनकी लघु काया में मानव-समाज के युग-युग का इतिहास समाहित है। इस इतिहास की दृष्टि से शब्दों का अध्ययन अपेक्षित है। पत्र, पुष्प, घर, जल, कलश, दीपक आदि अनेक शब्दों के साथ समृद्ध सांस्कृतिक भाव संलग्न हो गए हैं। वे सामान्य शब्द होने के साथ-साथ सांस्कृतिक भावों से सम्पन्न हैं। वैदिक धर्म और संस्कृति के प्राचीन परिवेश में ही व्यावहारिक जीवन के अनेक उपयोगी उपकरण और उनके वाचक शब्द सांस्कृतिक भावों के अतिशय से संपन्न हो गए। अधिकाँश उपकरण देवताओं के द्योतक बन गए और उपयोगी शब्द देवता वाचक बन गए। पृथ्वी, सूर्य, चंद्र, अग्नि, मारुत, जल, यव, दूर्वा, पत्र, पुष्प, चन्दन आदि अनेक व्यवहार के उपकरण व कर्म वैदिक धर्म, संस्कृति में केवल व्यवहारिक नहीं रह गए हैं वे सांस्कृतिक बन गए हैं। दैनिक स्नान, भोजन, जलपान आदि भी सांस्कृतिक कृत्य बन गए हैं।

अन्य भाषाओं तथा समाज के संपर्क और प्रभाव के आदान के द्वारा भी भाषाओं का शब्द समूह अभिवृद्ध होता है। साथ ही समय के साथ-साथ समाज में घटित परिवर्तन भाषा में भी प्रति फलित होता रहता है। समाज से जो परम्पराएँ, वस्तुएँ या कार्य निकल जाते हैं भाषा भी उनसे सम्बद्ध शब्दों को निष्कासित कर देती है यथा- वैदिक काल में यज्ञों का प्रचलन था अतः उनसे सम्बद्ध न्यूङ्ख, यज्वा, सुत्था, अहीन जैसे अनेक शब्द प्रचलित थे किन्तु कालांतर में यज्ञ की परम्परा लगभग समाप्त हो जाने से यह शब्द भी शब्द समूह से निष्कासित हो गए। इसी प्रकार संस्कारों और अनुष्ठानों में भी समयानुसार परिवर्तन हो जाने के कारण धीरे-धीरे उनसे सम्बन्धित शब्दावली में भी परिवर्तन घटित हुआ है। वस्तुतः शब्दों के अस्तित्व अभाव, संस्कार, सन्दर्भ आदि में किसी समाज की सांस्कृतिक विशेषताओं के सूत्र समवेत रहते हैं। पुरातन मुद्राओं तथा अन्य अवशेषों की भाँति शब्द संस्कृति के जीवन्त प्रतीक बन जाते हैं।

भाषा की सांस्कृतिक शब्दावली के पूरे विवरण को जानने के लिए संस्कृति का ज्ञान अनिवार्य माना गया है। संस्कृति के वाहक शब्दों को संस्कृति के ही आलोक में पूरी तरह समझा जा सकता है। किसी भी जनजाति की भिन्न सामाजिक व्यवस्था,

पर्व, धार्मिक अनुष्ठान, प्रथा, रीति-रिवाज, मूल्य एवं अभिवृत्ति द्योतक शब्दों के साथ जुड़े हुए सांस्कृतिक तथा परिवेशगत सन्दर्भों को समझना आवश्यक है। शब्दों के इतिहास और उनकी संस्कृति का अध्ययन मनोरंजन ही नहीं महत्वपूर्ण है, इनके द्वारा शब्दों के निर्माण, अन्तर्भावना, मूल जन्मभूमि का ज्ञान होता है तथा भाषाविज्ञान को नई दिशा और नया प्रकाश भी प्राप्त होता है। इसी सन्दर्भ में डॉ0 रामानन्द तिवारी ने लिखा है- ''शब्दों का सांस्कृतिक दृष्टि से अध्ययन भाषाविज्ञान का एक महत्वपूर्ण पक्ष है। शब्दों के सांस्कृतिक रूपों, पक्षों, संस्कारों और सन्दर्भों का अनुसंधान करने से भाषाविज्ञान संस्कृति और इतिहास के अनेक जटिल गम्भीर एवं महत्वपूर्ण प्रश्नों की धुंधली वीथिका में नवीन आलोक का पथ प्रदर्शन मिल सकेगा।''

अस्तु शब्द संस्कृति के वाहक होते हैं। प्रत्येक संस्कृति में रहन-सहन, रीति-रिवाज, आचार-विचार, जाति-कुल धर्म, उपासना -विधि, व्रत-त्यौहार, उत्सव आदि पर आधारित विशिष्ट शब्दावली प्रयुक्त होती है। हिन्दी की आनुष्ठानिक शब्दावली का अपना विशिष्ट महत्व एवं स्थान है। भारतीय संस्कृति में प्रचलित विविध संस्कारों और उनको सम्पादित करने की विधियों तथा विभिन्न अनुष्ठानों की द्योतक शब्दावली में सम्पूर्ण भारतीय संस्कृति के विविध पक्ष ही नहीं भाषा का वैशिष्ट्य भी प्रतिबिम्बित होता है। हिन्दी की आनुष्ठानिक शब्दावली में जहाँ तत्सम् शब्दावली का प्राचुर्य है वहाँ तद्भव शब्दों एवं कतिपय देशज एवं विदेशी शब्दों का समावेश भी परिलक्षित होता है। तत्सम् शब्दावली सर्वाधिक है तत्सम् शब्दावली में संस्कृत के प्रत्यय एवं उपसर्गों का संयोजन तो है ही संस्कृत के संधि एवं समास विधान के आधार पर भी निष्पन्न हैं। विभिन्न अनुष्ठानों के सम्पादन में मंत्रोच्चारण, स्वस्तिवाचन, मांगलिक पाठ आदि में संस्कृत का प्रयोग आज भी यथावत विद्यमान है। वस्तुतः विभिन्न अनुष्ठानों में पंचोपचार, षोडषोपचार, गणेश-पूजन, गौर-पूजन एवं नवग्रह पूजन, अक्षत, हवन आदि सामान्य रूप से प्रयुक्त होते हैं। अतः इनसे सम्बन्धित शब्दावली भी समस्त अनुष्ठानों में समान रूप से व्यवहृत होती है, किन्तु अनुष्ठानों के अन्य प्रकार भेदों के अनुरूप और भी विशिष्ट शब्दावली व्यवहृत होती है। तत्सम् शब्दावली के अतिरिक्त जनसामान्य के मध्य तद्भव शब्दावली का भी प्रयोग होता है जैसे- आखातीज, अरगासन, अहिवात, सतिया, कलावा, देवठान, महावर, अलोना आदि। हिन्दी की आनुष्ठानिक शब्दावली में कतिपय देशज शब्दों का व्यवहार भी दृष्टिगत होता है, यथा- अहोई, अचवन, ऐपन आदि तथा फारसी के प्रभाव-स्वरूप आगत, गुलाल तथा मेवा आदि कतिपय विदेशी शब्दों का भी व्यवहार होता है। अस्तु हिन्दी की आनुष्ठानिक शब्दावली का वर्णन-विश्लेषण निम्न वर्गों के अन्तर्गत प्रस्तुत किया जा सकता है।

शब्दावली का वर्गीकरण एवं वर्णन विश्लेषण

1. तत्सम् शब्दावली;

अंजलि : (सं0 स्त्री0 अञ्ज्+अति) इसका मूल अर्थ है दोनों हाथों को मिलकर बनाया गया कटोरा जिसमें भरकर कुछ लिया या दिया जाता है। *अंजलि भर वस्तु-सुपूरि मूषिकाञ्जलिः* -पंच 1/24 सम्प्रति कर्मकाण्ड की भाषा में यह शब्द इसी अर्थ में प्रयुक्त होता है।

अखण्ड : (सं0 वि0) -अ उपसर्ग के योग से बना है इसका मूल अर्थ है जो टूटा न हो, सम्पूर्ण, समस्त, निरन्तर, अविराम, कर्मकाण्डी भाषा में यह इसी अर्थ में प्रयुक्त होता है।

अक्षत : (वि0 सं0 पु0 नञ्+क्षण+क्त) -कच्चा चावल जो देवताओं पर चढ़ाया जाता है। सब प्रकार धार्मिक उत्सवों पर काम आने वाले पिछौड़े कूटे तथा जल से धोए हुए चावल। साक्षतपात्रहस्ता-रघु0 2/21

अक्षय : (सं0 वि0) -अ उपसर्ग के योग से बना है इसका मूल अर्थ है जिसका नाश न हो, अनश्वर, अचूक यथा- त्रिसाधना-शक्ति रिवार्थमक्षयम्-रघु0 4/13

अक्षय तृतीया : (संज्ञा स्त्री0) बैसाख मास के शुक्ल पक्ष की तीज को इस व्रत के करने का विधान है। सम्प्रति यह शब्द इसी अर्थ में प्रचलित है।

अग्निकोण : (सं0 पु0 अंग+नि+कोणः) इसका मूल अर्थ है दिक् दक्षिण पूर्वी कोना जिसका देवता अग्नि है।

अग्निष्टोम : (सं0 पु0) स्वर्ग के इच्छुक व्यक्ति को अग्निष्टोम यज्ञ करना चाहिए। ज्योतिष्टोम यज्ञ का विस्तार अग्निष्टोम है इसका समय बसन्त ऋतु है। कर्मकाण्ड की भाषा में यह इसी अर्थ में प्रयुक्त होता है। -हिन्दू कोश

अग्निसात : (सं0 पु0 अग्नि+सात्=अव्यव) अग्नि की दशा तक इसका प्रयोग समस्त पद में 'कृ' धातु के साथ (जलाना, भस्म करना) के साथ किया जाता है। रघु0 8/72

अग्निहोत्र : (सं0 पु0 अग्नि+होत्र) इसका अर्थ है वेदों में बताया हुआ एक प्रकार का होम जो नित्य किया जाता है जिसकी आग कभी बुझने नहीं दी जाती। वर्तमान में कर्मकाण्ड की भाषा में यह इसी अर्थ में प्रयुक्त होता है।

अजिन : (सं0 पु0 अज्+इनच्) इस शब्द का मूल अर्थ है बाघ, सिंह या हाथी आदि, विशेष काले हिरन की रोएंदार खाल जिनके आसन बनते हैं या जो पहनने के काम आती है कर्मकाण्ड के पारिभाषिक अर्थ में यह मृगचर्म से निर्मित यज्ञोपवीत के अर्थ में प्रयुक्त होता है।

अतिपात : (सं0 पु0) यह शब्द विशेषतः गृहस्थों द्वारा अनजाने में नित्य होने वाली जीव हिंसा के अर्थ का वाचक है।

अतिरात्र : (संज्ञा प्रा0 सा0) इसका मूल अर्थ है ज्योतिष्टोम यज्ञ का एक एच्छिक भाग, रात्रि का मध्य भाग। कर्मकाण्ड की भाषा में यह इसी अर्थ में प्रयुक्त होता है।

अनंगदासी : (संज्ञा स्त्री0 सं0 वि0 सा0 अनंग+दासी) अनंग का अर्थ है बिना शरीर का देहरहित पु0 रूप में यह कामदेव के रूप में प्रयुक्त होता है दासी का अर्थ है अनुचरी अतः अनंगदासी का तात्पर्य है कामदेव की सेविका। सम्प्रति यह शब्द इसी अर्थ में प्रयुक्त होता है।

अनंत चतुर्दशी : (संज्ञा स्त्री0) भाद्रपद शुक्लपक्ष चौदहवीं तिथि जिस दिन स्त्रियां अनंत भगवान का व्रत रखती हैं।

अनसुया/ अनुसूय : (संज्ञा स्त्री0 सं0 अनुसूय) संस्कृत में इसका अर्थ द्वैष रहित, ईर्ष्यारहित, अत्रि की पत्नी, स्त्रियोचित पति भक्ति और सतीत्व का ऊँचा नमूना। हिन्दू धर्म कोश के अनुसार यह एक धार्मिक गुण है इसका लक्षण बृहस्पति ने दिया।

अन्नाहार : (सं0 वि0 अनाहारी) इसका मूल अर्थ है बिना भोजन के रहने वाला, उपवास करने वाला अथवा भोजन न करना। सम्प्रति यह शब्द इसी अर्थ में प्रयुक्त होता है।

अनुलोम : (सं0 वि0 प्रादि समास) इसका मूल अर्थ है बालों से ऊपर से नीचे की ओर आने वाला नियमित स्वाभाविक क्रमानुसार। इसका विपरीतार्थक प्रतिलोम है। कर्मकाण्ड की भाषा में यह शब्द सीधा क्रम एवं वर्णानुसार निम्नवर्ण की कन्या से सम्पन्न विवाह के लिए प्रयुक्त किया जाता है।

अनुष्ठान : (सं पु0) इसका अर्थ है शास्त्र विदित कार्य करना, किसी फल के निमित्त किसी देवता का पूजन, आराधन, पुरश्चरण। वर्तमान में यह शब्द इसी अर्थ में प्रयुक्त होता है।

अर्घ्यदान : (सं0 वि0 सा0 अर्घ+यत् अर्घमहन्ति+दानम्) किसी देवता या सामान्य व्यक्ति को सादर आहुति या उपहार-अर्घ्ययस्मै विक्रयण्ड ददतु तखः पुष्पैरघ्यं फलैश्च, मधुश्चतः उत्तर 3/24 हिन्दी में यह पूजनीय, बहुमूल्य, पूजा में देने योग्य, जलफूल आदि तथा भेंट देने योग्य के रूप में प्रयुक्त होता है।

अमंत्रक : (सं0वि0) इस शब्द में अ उपसर्ग और क प्रत्यय संयुक्त हुआ है। इसका मूल अर्थ है वैदिक मन्त्रों से रहित वह संस्कार जिसमें वेद मन्त्रों के पाठ की आवश्यकता न हो अथवा जिसे वेद के पढ़ने का अधिकार न हो अथवा जो वेद पाठ से अनिभिज्ञ हो यथा- अवृतानाम मंत्रणानाम-मनुस्मृति 12/114 कर्मकाण्ड की भाषा में इसका अर्थ बिना मन्त्र पढ़े ही प्रयुक्त होता है।

अमावस्या : (संज्ञा स्त्री0 सं0) इसका मूल अर्थ है नूतन चन्द्रमा का दिन, सूर्य और चंद्र के संयोग का दिन। ''अमायाम तू सदा सोमओषधीः प्रतिपद्यते-व्यास।'' दूसरे अर्थ में यह चन्द्रमा की सोलहवीं कला, जिससे रात्रि में चन्द्रमा दिखाई नहीं देता, अर्थ के लिए प्रयुक्त होता है।

अर्यमा : (संज्ञा पु0 सं0) इसका अर्थ है वैदिक मण्डल का एक देवता। यह सूर्य का ही एक रूप है।

अरणि : (संज्ञा स्त्री0) यज्ञाग्नि उत्पन्न करने के लिए मन्थन करने वाली लकड़ी। घर्षण से उत्पन्न अग्नि को यज्ञ के लिए पवित्र माना जाता है।

अरथी : (संज्ञा स्त्री0 सं0 रथ) यद्यपि यह शब्द संस्कृत रथ से उत्पन्न है (प्रामाणिक हिन्दीकोश (सम्पादक) आचार्य रामचन्द्र वर्मा, प्रकाशन लोक भारती, इलाहाबाद), आप्टे के संस्कृत हिन्दीकोश में रथ का अर्थ है गाड़ी, जुलूसी गाड़ी, यान, वाहन, विशेष कर युद्ध रथ हिन्दी कोश में रथ का अर्थ है काठ का ढांचा, तख्ता, या संदूक जिस पर या जिसमें शव रखकर श्मशान

तक ले जाते हैं। कर्मकाण्ड की भाषा में इसका अर्थ है मृतक के शव को श्मशान ले जाने के लिए बांस की बनी विशेष शायिका।

अवनेजन : (सं0 पु0 अव+निज+ल्यूटमं्) इसका मूल अर्थ है प्रक्षालन, मार्जन, धोने के लिए पानी, पैर धोना, श्राद्ध में पिण्डदान की वेदी पर बिछाए हुए कुशों पर जल छिड़कना। यथाकुर्याद्गुरूपुत्रस्य पादयोश्चावनेजनम-मनु0 2/209 कर्मकाण्ड की भाषा में यह पिण्डदान के पूर्व कुश पर दिया जाने वाला संकल्पित तिल सहित जल के अर्थ में प्रयुक्त है।

अवसान विधि : (सं0पु0 सा0 अवसान+विधि) अवसान का अर्थ है विराम, ठहराव, समाप्ति, अंत, सीमा, सायंकाल, मरण और मृत्यु। विधि का अर्थ है पद्धति। कर्मकाण्ड की भाषा में यह शब्द अंतिम संस्कार के अर्थ में प्रयुक्त होता है।

अशोकाष्टमी : (संज्ञा स्त्री0 सा0 अशोक+अष्टमी) चैत्र शुक्ल अष्टमी को इस व्रत का अनुष्ठान होता है। यदि उस दिन बुधवार तथा पुनर्वसु नक्षत्र हो तो उसका पुण्य बढ़ जाता है। इसमें अशोक के पुष्पों से दुर्गा का पूजन होता है। सम्प्रति यह इसी अर्थ में प्रयुक्त होता है- हिन्दू धर्मकोश पृ0 60

अशोक पूर्णिमा : (संज्ञा स्त्री0 सा0 अशोक+पूर्णिमा) फाल्गुन मास की पूर्णिमा को अशोक पूर्णिमा कहते हैं यह तिथि व्रत है एक वर्ष पर्यन्त इसका अनुष्ठान होता है प्रथम चार मास में पृथ्वी, बाद के चार में मेदनी और इसके बाद वसुन्धरा नाम से पूजन होता है।

अष्टदिगपाल : (सं0 पु0 सा0 अष्ट+दिक् (दिश्)+पालाः) इस शब्द का मूल अर्थ है आठों दिशाओं के आठ दिशापाल ''इन्द्रौवहिनः पितृपतिः (यमः) नैऋन्तो, वरुणो, मरुत (वायुः) कुबेर ईशः पतयः पुर्वादीनां दिशां क्रमात''-अमरकोश

आग्रहायण : (सं0पु0 अग्रहायण+अण्) मार्गशीष या अगहन का महीना। सम्प्रति यह शब्द इसी अर्थ में प्रयुक्त होता है।

आचमन : (सं0 पु0) इसका मूल अर्थ है जल पीना पूजा या धर्म सम्बन्धी कर्म के आरम्भ में दाहिने हाथ में थोड़ा सा जल लेकर मन्त्र पढ़ते हुए पीना। कर्मकाण्ड की भाषा में यह शब्द इसी अर्थ में प्रयुक्त होता है।

आचार : (सं0 पु0 आ+चर+ध्यु) इसका मूल अर्थ है आचरण व्यवहार, कार्य करने की रीति, चाल-चलन तथा रिवाज, प्रचलन। यस्मिन देशे य आचारः पारम्पर्यक्रमागतः मनु0 2/18 यह शब्द अपने मूल अर्थ में ही प्रयुक्त होता है।

आरती : (सं0 स्त्री0 आरत्रिक) मूल अर्थ में यह शब्द किसी मूर्ति के सामने दीपक घुमाना, नीरांजन। वह पात्र जिसमें बत्ती रखकर आरती की जाती है, वह स्रोत जो आरती के समय पढ़ा जाता है। वर्तमान में यह शब्द इसी अर्थ में प्रयुक्त होता है।

आवाहन : (सं0पु0 आवाहन) इसका मूल अर्थ है किसी को पुकारने या बुलाने का कार्य, आमंत्रित करना, बुलाना। कर्मकाण्ड करते समय देवताओं को बुलाना। सम्प्रति यह शब्द इसी अर्थ में प्रयुक्त होता है। यह षोडशोपचार पूजा का एक अंग है।

आसन : (सं0पु0 आस+ल्युट) इसका मूल अर्थ है बैठना, आसन, स्थान। कर्मकाण्ड में यह शब्द इसी अर्थ में प्रयुक्त होता है।

आस्तिक : (सं0वि0 अस्ति+ठक) इसका अर्थ है जो ईश्वर और परलोक में आस्था रखता हो। पवित्रात्मा, भक्त, श्रद्धालु। याज्ञ 1/268

आहुति : (सं0 स्त्री0 आ+ऊ+क्तिन) इसका मूल अर्थ है किसी देवता को आहुति देना, पुण्य कृत्यों के उपलक्ष्य में किये जाने वाले यज्ञों में हवन सामग्री हवन कुण्ड में डालना-होतुराहुतिसाधनम-रघु0 1/82

ईशान कोण : (संज्ञा पु0 सं0 सा0 ईश ताच्छील्ये चानश्+कोण) कर्मकाण्ड की भाषा में यह शब्द पूर्व और उत्तर दिशा के कोण के लिए प्रयुक्त होता है।

ईशानबलि : (सं0पु0 सा0 ईशान+बलि) इसका मूल अर्थ है स्वामी, अधिपति या शिव के लिए किसी वस्तु को न्योछावर करना।

उत्तरीय : (सं0पु0 उत्तर+वाच्छ+कपु) इसका मूल अर्थ है ऊपर पहने जाने वाला वस्त्र यह शब्द इसी अर्थ में प्रयुक्त होता है। वस्त्र दान में इसका मुख्य महत्व है।

उत्सर्ग : (सं0पु0 उद्+सज्+धञ्) इसका मूल अर्थ है एक ओर रख देना, छोड़ देना, तिलांजलि देना, स्थगन, दान देना। सम्प्रति यह शब्द इसी अर्थ में प्रयुक्त होता है।

उद्यापन : (सं0 पु0 उद्+या+ण्चि+ल्युट्) इसका मूल अर्थ है व्रत आदि का पारण या समाप्ति। कर्मकाण्ड में यह किसी व्रत की समाप्ति पर किये जाने वाले कृत्य-हवन, ब्राह्मण-भोजन आदि के लिए प्रयुक्त होता है।

उदयनक्षत्र : (संज्ञा पु0 सं0) इस शब्द का अर्थ है जिस नक्षत्र पर कोई ग्रह दिखाई पड़े वह नक्षत्र उस ग्रह का उदयनक्षत्र कहलाता है। कर्मकाण्ड में इसका विशेष महत्व है।

उच्चासन : (संज्ञा पु0 सं0 सा0 उच्च+आसान) इस शब्द का मूल अर्थ है ऊंचा आसान। सम्प्रति में यह शब्द इसी अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

उपनयन : (संज्ञा पु0 सं0 वि0 उपनीत) इसका अर्थ है यज्ञोपवीत संस्कार।

उपयमन : (संज्ञा पु0 सं0 उप+यम्+ल्युट्) इसका मूल अर्थ है विवाह करना, प्रतिबन्ध लगाना, अग्नि को स्थापित करना वर्तमान में कर्मकाण्ड की भाषा में सात कुशाओं को बांधकर बनाया गया कुश समूह ''जो यज्ञीय कार्य में प्रयुक्त किया जाता है।''

उपनिष्क्रमण : (सं0 पु0 उप+निस्+क्रम+ल्युट्) इसका मूल अर्थ है बाहर जाना, निकलना। एक धार्मिक अनुष्ठान या संस्कार जिसमें बच्चे को पहली बार खुली हवा में निकाला जाता है।

उपवास : (सं0 पु0 उवपस+छञ्) इसका मूल अर्थ है व्रत। वर्तमान में यह शब्द इसी अर्थ में प्रयुक्त होता है। प्रभु प्राप्ति अथवा प्रभु की निकटता हेतु उपवास का विधान है।

उपवेद : (संज्ञा पु0 प्रा0 सा0 उप+वेद) इसका अर्थ है घटिया ज्ञान, वेदों से निचले दर्जे का ग्रन्थ समूह उपवेद चार हैं और प्रत्येक वेद के साथ एक-एक उपवेद सलंग्न है जैसे ऋग्वेद के साथ आयुर्वेद, यजुर्वेद के साथ धनुर्वेद या सैनिक शिक्षा सामवेद के साथ गान्धर्व वेद और अथर्ववेद के साथ स्थापत्य, शस्त्रवेद या यांत्रिकी।

ऊषाकाल : (सं0 पु0) इसका अर्थ है प्रभात, तड़का, ब्रह्मबेला। कर्मकाण्ड में इसका विशेष महत्व है।

ऋचा : (संज्ञा0 स्त्री0 सं0) इस शब्द का अर्थ है वह वेदमंत्र जो पद्य में हो। कर्मकाण्ड में इसका विशेष महत्व है।

एकादशाह : (सं0 पु0) हिन्दू संस्कारों में मृत्यु से ग्यारहवें दिन किया जाने वाला श्राद्धकर्म। इस दिन होने वाले दान को षोडशी भी कहते हैं।

कपाल क्रिया : (सं0 स्त्री0) यह शब्द अर्धदग्ध शव के कपाल का भेदन करने के अर्थ में प्रयुक्त होता है। यह अन्त्येष्टि संस्कार का प्रमुख अंग है।

कमंडल : (संज्ञा पु0 सं0 क+मण्ड+ला+कु=कमण्डलुः) इसका अर्थ है (मिट्टी या लकड़ी) का बना जलपात्र जिसमें सन्यासी जल रखते हैं। कमंडल का जल कर्मकाण्ड में बहुत पवित्र माना जाता है सम्प्रति यह शब्द इसी अर्थ में प्रयुक्त होता है। कमण्डलुनोदकं सिक्त्वा- मनु0 2/64

करन्यास : (सं0 पु0) इस शब्द का अर्थ है हाथ की अँगुलियों में देवशक्तियों का न्यास।

कर्मपात्र : (सं0 पु0) वह विशेष जलपात्र जिसमें पिण्डदान आदि करने के लिए संस्कारित जल का संग्रह करते हैं।

कन्यापूजन : संज्ञा स्त्री0 सा0 (कन्या+पूजन) यह शब्द नवरात्रि के समापन पर दुर्गादेवी के प्रतीक स्वरुप नौ कन्याओं के पूजन के अर्थ में प्रयुक्त होता है।

कर्मकाण्ड : (सं0 पु0 सा0) इसका अर्थ है धर्म सम्बन्धी कृत्य, वह शास्त्र जिसमें यज्ञ आदि कर्मों का विधान हो अथवा किसी धर्म के धार्मिक और औपचारिक कृत्य जो विशेष अवसरों पर होते हैं।

कलश : (सं0 पु0) इसका मूल अर्थ है घड़ा, गगरा, मंदिर आदि का शिखर या ऊपरी भाग चोटी या सिरा। कर्मकाण्ड की भाषा में यह शब्द इसी अर्थ में प्रयुक्त होता है।

कवच : (सं0 पु0 संज्ञा) इसका अर्थ है तंत्र के अनुसार वे मन्त्र जो अपने शरीर के अंगों की रक्षा के लिए पढ़े जाते हैं। अथवा वह मंत्र या यन्त्र आदि जो लिखकर जन्तर में भरकर विपत्ति आदि से रक्षा के लिए पहने जाते हैं यथा जन्तर या ताबीज आदि।

कार्तिक : (संज्ञा सं0 पु0) इस शब्द का अर्थ है वह महीना जो शरदऋतु में क्वार के बाद पड़ता है। इस मास में अनुष्ठान का विशेष महत्व है।

कामिकाव्रत : (सं0 पु0) इस शब्द का अर्थ है मार्गशीर्ष कृष्ण द्वितीया को इस व्रत का अनुष्ठान होता है इस तिथि को स्वर्ण अथवा रजत-प्रतिमा का जिस पर चन्द्र अंकित हो पूजन करना चाहिए। पूजन करने के पश्चात उसे दान कर चाहिए।

कार्तिकेय : (सं0 पु0) यह शब्द शिव के पुत्र, स्कन्दजी अथवा षडानन के प्रयुक्त होता है।

कार्तिक पूर्णिमा : (संज्ञा पु0 सा0) यह शरद ऋतु की अंतिम तिथि है जो बहुत पवित्र और पुण्य दायिनी मानी जाती है इस अवसर पर कई स्थानों पर मेले लगते हैं। सोनपुर में हरिहर क्षेत्र का मेला तथा गढ़मुक्तेश्वर (मेरठ), बटेश्वर (आगरा), पुष्कर (अजमेर) आदि के विशाल मेले इसी पर्व पर लगते हैं। कर्मकाण्ड में यह तिथि बहुत महत्वपूर्ण है।

कालाष्टमीव्रत : (संज्ञा सं0 पु0) यह एक व्रत है जो मृगशिरा नक्षत्र युक्त भाद्रपद की अष्टमी में किया जाता है। मान्यता है कि इस दिन शिव जी बिना नन्दीगण अथवा गणेश के अपने मंदिर में विराजते हैं।

कीर्तन : (संज्ञा पु0) इस शब्द का अर्थ है। ईश्वर के गुणों या यश का वर्णन अथवा ईश्वर के अवतारों के सम्बन्ध का भजन या कथा आदि। पूजा-पाठ, मंगल अवसरों पर इसका विशेष महत्व है।

केसर : (सं0 पु0) इसका अर्थ है वे पतले सींके व सूत जो फूलों के बीच में होते हैं अथवा ठण्डे देशों में होने वाला एक पौधा जिसके सींके उत्कृष्ट सुगन्ध के लिए प्रसिद्द हैं। कर्मकाण्ड में देवताओं को सुगन्ध समर्पित करने में इसका प्रयोग होता है।

कौमुदीव्रत : (सं0 पु0) आश्विन शुक्ल एकादशी से यह व्रत वासुदेव पूजा के लिए किया जाता है।

ग्रामदेवता : (संज्ञा सं0 पु0 सा0 ग्राम+देवता) किसी एक गाँव में पूजा जाने वाला देवता, गाँव की रक्षा करने वाला देवता, भारत के प्रत्येक गाँव में एक ग्राम देवता की स्थापना का विधान है।

गायत्री मन्त्र : (संज्ञा सं0 स्त्री0) एक वैदिक मंत्र जो हिन्दू धर्म में सबसे पवित्र माना जाता है इसके अतिरिक्त यह शब्द दुर्गा एवं गंगा के लिए भी प्रयुक्त होता है।

गोमुखी : (संज्ञा सं0 स्त्री0) एक प्रकार की थैली जिसमें हाथ डालकर माला फेरते हैं। जपमाली, जपगुथली भी इसी अर्थ के द्योतक है।

गोग्रास : (संज्ञा सं0 स्त्री0) पके हुए अन्न का वह थोड़ा सा अंश जो भोजन या श्राद्ध आदि के समय गो (गाय) के लिए निकाला जाता है इसे गौ को दी जाने वाली बलि भी कहते हैं।

गोदान : (सं0 पु0 सा0 गो+दान) विधिवत संकल्प करके ब्राह्मण को गाय दान करने की क्रिया। मुण्डन संस्कार, इसका अभिप्राय गाय या गाय के कल्पित मूल्य का दान भी होता है।

जीवित्पुत्रिका : (संज्ञा सं0 पु0) आश्विन कृष्ण अष्टमी को इस व्रत का अनुष्ठान होता है इसमें महिलाओं को अपने सौभाग्य (पत्नीत्व) तथा संतान के लिए शालिवाहन के पुत्र जीभूतवादन की पूजा करने का विधान है।

तर्पण : (सं0 पु0) जल से सूक्ष्म योनियों को तृप्त करने के लिए दिया जाने वाला जल।

तामपत्र : (संज्ञा पु0 सं0 सा0 ताम+पत्र) तांबे की चादर का वह टुकड़ा जिस पर प्राचीन काल में, दानपत्र लिखे जाते थे वर्तमान में यह तंत्र, यन्त्र बनाने के काम आता है यथा- श्रीयंत्र, मंगलयंत्र, कुबेरयंत्र।

तुलादान : (संज्ञा पु0 सं0 सा0 तुला+दान) सोलह महादानों में से एक जिसमें किसी मनुष्य की तौल के बराबर अन्न या दूसरे पदार्थ दिए जाते हैं कर्मकाण्ड में इसका अत्यधिक महत्व है।

दूर्वा : (सं0 स्त्री0) एक प्रसिद्ध घास जो हरी और सफेद दो प्रकार की होती है इसका प्रयोग धार्मिक कृत्यों में होता है।

धूप : (संज्ञा पु0) इस शब्द का अर्थ है गन्ध द्रव्यों को जलाकर निकाल हुआ धुआँ, सुगन्धित धूम। पूजा के षोडशोपचारों में इसका विशेष महत्व है। देवार्चन में धूपदान एक आवश्यक उपचार है।

नवग्रह : (सं0 पु0) इसका अर्थ है अर्क, पलाश, खैर, अपामार्ग, गूलर, पीपल, शमी, कुश, दूब की लकड़ी। कर्मकाण्ड में यह अत्यधिक महत्वपूर्ण है।

निर्जल : (सं0 विशे0) बिना जल का स्थान अथवा एक व्रत जिसमें जल तक पीने का विधान नहीं है।

निरंजनी : (संज्ञा स्त्री0 सं0 नीरांजनी) इस शब्द का अर्थ है वह आधार या पात्र जिसमें आरती के लिए दीपक जलाया जाता है पूजा पाठ, कर्मकाण्ड में आरती का विशेष महत्व है।

पद्मासन : (संज्ञा पु0 सं0) योग साधना में बैठने का एक प्रकार का आसन या मुद्रा। वर्तमान में यह शब्द इसी अर्थ में प्रयुक्त होता है।

पंचदेव : (सं0 पु0) आदित्य, रूद्र, विष्णु, गणेश, और देवी, ये पांच देवता पंचदेव के अर्थ का बोध कराते हैं।

पंचांग : (सं0 पु0 पत्रा) इस शब्द का मूल अर्थ है पाँच अंगों वाली वस्तु। वह पुस्तिका जिसमें किसी संवत के वार, तिथि, नक्षत्र, योग और कारण ब्योरेवार लिखे रहते हैं। कर्मकाण्ड में पंचांग का विशेष महत्व है।

पंचामृत : (सं0 पु0) इस शब्द का मूल अर्थ है दूध, दही, घी, चीनी और शहद मिलाकर देवताओं के स्नान के लिए बनाया जाने वाला वह द्रव्य पदार्थ जो पवित्र मानकर प्रसाद के रूप में पिया जाता है। वर्तमान में यह इसी अर्थ में प्रयुक्त होता है।

पंचगव्य : (संज्ञा पु0 सं0) गौ (गाय) से प्राप्त होने वाले ये पाँच द्रव्य-दूध, दही, घी, गोबर, गोमूत्र जो बहुत पवित्र माने जाते हैं। प्रायश्चित करने में प्रायः इसका पान किया जाता है। धार्मिक कृत्य पूजा-पाठ में अनेक स्थान पर शरीर और गृह शुद्धि के लिए प्रयोग किया जाता है।

पंचमी : (सं0 स्त्री0 सकर्मक) शुक्ल या कृष्ण पक्ष की पाँचवी तिथि। कर्मकाण्ड की भाषा में यह इसी अर्थ में प्रयुक्त होता है।

पक्ष : (सं0 पु0 पक्ष+अच) इस शब्द का अर्थ है चन्द्रमास का अर्धभाग, पखवारा (पन्द्रह दिनों का)। वर्तमान में यह शब्द इसी अर्थ में प्रयुक्त होता है। पक्ष दो प्रकार के होते हैं- ''शुक्लपक्ष-जिन दिनों चन्द्रमा निकला रहता है। कृष्ण या तमिश्र पक्ष-अँधियारा पक्ष।''

पारण : (सं0 विशे0 पृ+ल्युट्) इसका अर्थ है पार ले जाने वाला, उबारने वाला, उद्धार करने वाला। व्रत, उपवास के पश्चात भोजन करना, व्रत खोलना। वर्तमान में यह शब्द इसी अर्थ का वाहक है।

पुत्रेष्टि : (सं0 पु0) पुत्र प्राप्ति की कामना से किया जाने वाला एक यज्ञ। वर्तमान में इस यज्ञ का अनुष्ठान इसी अर्थ में होता है।

पुरोहित : (संज्ञा सं0 पु0) वह व्यक्ति जो यजमान के यहाँ कर्मकाण्ड के समस्त कृत्य और संस्कार सम्पन्न करता है, किसी धर्म के अनुयायिओं के संस्कार और धार्मिक कृत्य कराने वाला।

प्रदोष : (सं0 पु0) प्रत्येक पक्ष की त्रयोदशी को होने वाला एक व्रत जिसमें संध्या समय शिव का पूजन करके भोजन ग्रहण किया जाता है।

प्रदोषकाल : (सं0 पु0) सूर्य के अस्त होने का समय, सूर्यास्त से दो घड़ी पूर्व का समय, संध्या।

फलाहार : (संज्ञा पु0) इसका अर्थ है केवल फल खाना, वह खाद्य पदार्थ जो केवल फलों से बना हो और जिसमें अन्न का अंश न हो। व्रत कर्मकाण्ड में यह अतिमहत्वपूर्ण है।

ब्रह्मभोज : (संज्ञा सं0 पु0 सा0) इसका अर्थ है ब्राह्मणों को भोजन कराना। कर्मकाण्ड में, पूजा या धार्मिक कृत्य के पश्चात ब्राह्मण भोजन का विधान है।

ब्रह्महत्या : (संज्ञा स्त्री0 सा0 सं0) इसका अर्थ है ब्राह्मण को मार डालना जो महापातक माना गया है। वर्तमान में यह शब्द इसी अर्थ में प्रयुक्त होता है।

ब्राह्मण : (संज्ञा सं0 पु0) इसका अर्थ है चार वर्णों में सबसे श्रेष्ठ वर्ण। प्राचीन आर्यों के लोक विभाग के अनुसार सबसे ऊँचा माना जाने वाला विभाग। हिन्दुओं में सबसे ऊँची जाति जिसके प्रधान कर्म, पठन पाठन, पूजा, यज्ञ, ज्ञानोपदेश, कर्मकाण्ड आदि।

मौनी : (सं0 विशे0 मौनिन) इसका अर्थ है मौन धारण करना या चुप रहने वाला। कर्मकाण्ड में मौन व्रत का विशेष महत्व है।

मन्त्र : (सं0 पु0) वे शब्द या वाक्य जिसका इष्ट-सिद्धि या किसी देवता की प्रसन्नता के लिए जप किया जाता है, वेद के वे वाक्य जिनके द्वारा यज्ञ आदि करने का विधान है। कर्मकाण्ड में मन्त्र का विशेष विधान है।

यन्त्र : (सं0 पु0) तंत्र शास्त्र में कुछ विशिष्ट प्रकार के कोष्ठक आदि जिनमें कुछ अलौकिक शक्ति मानी जाती है उक्त प्रकार के कोष्ठकों आदि का वह रूप जो अनिष्ट आदि की रक्षा के लिए शरीर पर धारण किया जाता है या उसकी पूजा की जाती है। यथा- श्रीयंत्र, कुबेरयंत्र आदि।

सप्तपदी : (संज्ञा सं0 स्त्री0) विवाह के समय वर और वधू का अग्नि की सात परिक्रमाएँ करना, भाँवर, भाँवरी।

स्वास्तिक : (संज्ञा सं0 पु0) इसका अर्थ है एक प्रकार का प्राचीन मंगल चिन्ह जो शुभ अवसरों पर दीवारों पर अंकित किया जाता है। वर्तमान में इसका यही रूप प्रचलित है।

संस्कार : (सं0 पु0 स0) इसका अर्थ है दोष या त्रुटि का निकाला जाना, शुद्धि, पवित्र करना, धर्म की दृष्टि से शुद्ध करना। वे कृत्य जो जन्म से लेकर मरणकाल तक द्विजातियों के सम्बन्ध में आवश्यक होते हैं।

हरितालिका : (संज्ञा स्त्री0 सं0) भाद्रपद की शुक्लपक्ष की तृतीया तीज, सौभाग्यवती स्त्रियां इस दिन निर्जला व्रत रखती हैं और नए वस्त्र पहनकर शिव पार्टी की पूजा करती हैं।

2. तद्भव शब्दावली;

अचवन : (संज्ञा पु0 सं0 आ+चय्+ल्पूट=आचमन) इस शब्द का मूल अर्थ है कुल्ला करना, धार्मिक अनुष्ठानों से पूर्व तथा भोजन के पूर्व और पश्चात हथेली में जल लेकर घूंट-घूंट पीना। यथा- दधादा-चमनततः - याज्ञ0 1/242 कर्मकाण्ड की भाषा में यह इसी अर्थ में प्रयुक्त होता है।

अलोना : (तद्भव विशे0 सं0 अलवण, स्त्री0 अलोनी) इसका अर्थ है जिसमें नमक न खाया जाय जैसे (अलोनाव्रत), फीका स्वाद रहित। सम्प्रति यह शब्द इसी अर्थ में प्रयुक्त होता है।

आखातीज : (तद् स्त्री0) यह शब्द संस्कृत के अक्षय तृतीया से बना है बैशाख शुक्ल तृतीया को मनाया जाता है। वर्तमान में यह शब्द इसी अर्थ में प्रयुक्त होता है।

आम : (सं0 पु0 आम्र) यह शब्द संस्कृत आम्र से बना है। आम के फल, पत्ते, लकड़ी और डाल आदि सभी का प्रयोग यज्ञ, हवन, पूजा आदि के उपकरण के रूप में प्रयुक्त करते हैं।

इनारा : (संज्ञा पु0 सं0 इन्दारा) इसका अर्थ है पक्का कुआँ, कूप इसे पवित्र मानते हैं। विवाह के अवसर पर कुएं की पूजा होती है।

इलायची : (सं0 एला) एक सदाबहार पेड़, जिसके फल के सुगन्धित बीज मसाले में पड़ते हैं। यह छोटी और बड़ी दो प्रकार की होती है। कर्मकाण्ड में पान के साथ इलायची का महत्व है।

उपला : (सं0 पु0 उत्पल स्त्री0 उपली) इसका अर्थ है जलाने के लिए सुखाया हुआ गोबर, कण्डा या गोहरा के अर्थ में प्रयुक्त होता है कर्मकाण्ड में उपले की आग अग्यार डालने के लिए प्रयुक्त की जाती है।

कपूर : (सं0 पु0 कर्पूर) इसका अर्थ है सफेद रंग का एक प्रसिद्ध सुगन्धित द्रव्य जो दालचीनी की जाति के पेड़ों से निकलता है। कर्मकाण्ड, पूजापाठ में यह आरती में प्रयुक्त होता है।

कलावा : (सं0 पु0 कलापक) इसका मूल अर्थ है सूत का लच्छा या वह डोरा जो किसी शुभ अवसर पर पुरोहित हाथ में बांधते हैं इसे रक्षा भी कहते हैं।

करवाचौथ : (सं0 पु0 करक+चतुर्थी) केवल महिलाओं के लिए इसका विधान है। कार्तिक कृष्ण चतुर्थी को इसका अनुष्ठान होता है। एक वट वृक्ष के नीचे शिव, पार्वती, गणेश तथा स्कन्द की प्रतिकृति बनाकर षोडशोपचार के साथ पूजन किया जाता है, दस कारक (कलश) दान दिए जाते हैं, चन्द्रोदय के पश्चात चन्द्रमा को अर्घ्य देने का विधान है। दे0 निर्णय सिन्धु 196, व्रतराज 172

गूलर : (सं0 पु0 उदुंबर) यह बरगद जाति का एक पेड़ है जिसके फल के अन्दर छोटे-छोटे कीड़े होते हैं। इस पेड़ का फल भगवान को चढ़ाते हैं।

गूगल : (सं0 पु0 गुग्गुल) इसका अर्थ है एक पेड़ जिसका गोंद सुगन्ध के लिए जलाते हैं। हवन, यज्ञ आदि में इसका प्रयोग किया विशेष रूप से होता है।

गेरू : (सं0 पु0 गवेरूक) इसका अर्थ है एक प्रकार की लाल कड़ी मिट्टी, गिरमाटी, गैरिक। पूजा-पाठ में अल्पना, चौक बनाने में इसका प्रयोग होता है।

चितानन : (सं0 स्त्री0 चित्या+नन) इसका अर्थ है चुनी हुई लकड़ियों का वह ढेर जिस पर शव जलाते हैं, शवदाह करने की अग्नि। सम्प्रति यह इसी अर्थ में प्रयुक्त होता है।

चौमासा : (संज्ञा पु0 सं0 चातुर्मास्य) इस शब्द का मूल अर्थ है वर्षा ऋतु के चार मास आसाढ़, सावन, भाद्रपद और आश्विन। दूसरे अर्थ में यह शब्द किसी स्त्री0 के गर्भवती होने के चौथे महीने का कृत्य या उत्सव। वर्तमान में यह शब्द इसी अर्थ में प्रयुक्त होता है।

देवठान : (संज्ञा पु0 सं0 देवोथान) इसका अर्थ है कार्तिक शुक्ल एकादशी को विष्णु का उठना जो एक पर्व माना जाता है।

धतूरा : (संज्ञा पु0 सं0 धस्तूर) इसका अर्थ है एक पौधा जिसके फलों के बीज बहुत विषैले होते हैं धतूरे के फल विशेष रूप से शिवलिंग पर चढ़ाये जाते हैं।

नरकचौदस : (संज्ञा पु0 सं0) नृसिंह+चतुर्दशी=नरसिंह चर्तुदशी) यह कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी को मनाई जाती है। इसका सम्बन्ध नरकाधिपति यमराज से है। इसीलिए इसे नरक चतुर्दशी नाम से सम्बोधित करते हैं।

पैकरमा : (सं0 स्त्री0 परिक्रमा) किसी देवता, यज्ञकुण्ड मन्दिर के चारों ओर चक्कर लगाने को परिक्रमा कहते हैं।

बैना/ बायना : (संज्ञा पु0 सं0 बायन) वह मिठाई आदि जो मंगल अवसरों पर इष्ट मित्रों के यहाँ भेजी जाती है। सम्प्रति यह रीति प्रचलित है।

भाँवर : (सं0 स्त्री0 भ्रमण) इसका अर्थ है चारों ओर घूमना, चक्कर लगाना, अग्नि की वह परिक्रमा जो विवाह होने पर वर वधू करते हैं।

समधौरा : (संज्ञा पु0 हिन्दी समधी+औरा (प्रत्यय) के योग से निर्मित शब्द है। विवाह की एक रीति जिसमें दोनों समधी परस्पर मिलते हैं। (कन्या का पिता, वर के पिता)

3. देशज शब्दावली;

अल्पना : (संज्ञा स्त्री0) यह शब्द हिन्दी के सांझ शब्द से बना है मंदिरों में भूमि पर रंगीन चूर्ण से बनाई हुई बेल, बूटों आदि की सजावट जो प्रायः सावन में या उत्सवों के समय होती है। कर्मकाण्ड की भाषा में यह शब्द इसी अर्थ में प्रयुक्त होता है। अल्पना चित्रकला की एक विधा है चूँकि मंदिरों में इस प्रकार की सजावट होती है जिसका समीकरण अल्पना से स्थापित होता है। अतः अल्पना शब्द साँझ या साँझी का पर्याय बन गया।

अहोई : (हिन्दी स्त्री0 अ+होना) इस शब्द का अर्थ है एक पूजा जो स्त्रियाँ दीपावली के आठ दिन पूर्व सन्तान की प्राप्ति और रक्षा के लिए करती हैं।

ऐपन : (संज्ञा पु0 लेपन) इसका अर्थ है हल्दी के साथ पिसा हुआ चावल जिसका प्रयोग देवताओं की पूजा में छापा (थाप) लगाने या चौक पूरने (बनाने) में किया जाता है। वर्तमान में यह इसी अर्थ में प्रयुक्त होता है।

खील : (संज्ञा स्त्रीद्ग) इसका अर्थ है भुना हुआ धान या लावा। दीपावली में नए धान के लावे का लक्ष्मी पूजन में विशेष महत्व है।

गंजी : (संज्ञा स्त्री0) गंजी शकरकन्द को कहते हैं इसका प्रयोग विशेष रूप से हरछठ व्रत में प्रसाद के रूप में किया जाता है।

चौमुखा : (विशे0 पु0 सा0 चौ0=चार+मुख) इस शब्द का मूल अर्थ है चार मुख। कर्मकाण्ड में चारमुख (चौमुखे) दीप का विशेष महत्व है। वर्तमान में यह इसी अर्थ में प्रयुक्त होता है।

दुरदुरैया : (संज्ञा स्त्री0) किसी देवी के नाम सौभाग्यवती स्त्रियों को लइया और पेड़ा खिलाया जाता है तथा उन्हें सुहाग की कोई वस्तु दी जाती है। इस अनुष्ठान का प्रचलन ग्रामीण क्षेत्रों में अधिक है।

नवा : (संज्ञा पु0) नई फसल के तैयार होने पर एक अनुष्ठान किया जाता है जिसमें पूजा-पाठ के साथ नया अन्न देवताओं को चढ़ाया जाता है यह नयी फसल के कटने का प्रतीक है।

नोइया : (संज्ञा स्त्रीद्ग) घास और मूंज से बनी एक प्रकार की डलिया जो पवित्र मानी जाती है, फूल और प्रसाद रखने हेतु इसका प्रयोग करते हैं।

पिन्नी : (संज्ञा स्त्री0) एक प्रकार की मिठाई (पकवान) जो आटे या चावल के चूर्ण में चीनी या गुड़ मिलाकर बनाई जाती है। कई धार्मिक कृत्यों में पिन्नी देवताओं पर चढ़ाई जाती है, किसी मनौती के पूर्ण होने पर देवी के नाम की पिन्नी सौभाग्य-वती स्त्रियों को खिलाई जाती है।

पिडोर : (संज्ञा स्त्री0) इसका अर्थ है तालाब के निकट की भूमि की मिट्टी जो कर्मकाण्ड में विशेष रूप से प्रयुक्त होती है।

पीठा : (संज्ञा पु0) यह पीसे हुए चावल का गाढ़ा घोल है जिसे पूजा पाठ में हाथ की थाप लगाने या चौक बनाने में प्रयोग किया जाता है।

बसिऔरा : (संज्ञा पु0) इस शब्द का मूल अर्थ है वह दिन जिसमें बासी भोजन खाया जाता है। वर्तमान में यह शब्द इसी अर्थ में प्रयुक्त होता है।

सवाई/ सवइया : (संज्ञा स्त्री0) इस शब्द का अर्थ है एक और चौथाई-सवा, सवाया। प्रसाद चढ़ाने में या कर्मकाण्ड में सभी वस्तुओं का प्रयोग सवाया के रूप में होता है।

सिन्नी : (संज्ञा स्त्री0) इसका अर्थ है शिव पर चढ़ाया गया प्रसाद जिसे सिन्नी कहा जाता है यह भीगे चने की दाल व गुड़ का होता है इसका प्रचलन प्रतापगढ़ जिले में विशेष रूप से है।

4. विदेशी शब्दावली; हिन्दी की आनुष्ठानिक शब्दावली में प्रयुक्त होने वाले विदेशी शब्द अत्यन्त हैं।

गुलाल : (विदेशी फा0 पु0 गुलेलालः > गुल्लाला) यह विदेशी शब्द है इसका अर्थ है एक पौधा जिसमें लाल फूल होते हैं। हिन्दू त्यौहार होली एवं शिवरात्रि आदि के समय अबीर के साथ गुलाल का विशेष प्रयोग है।

मिश्री : (संज्ञा स्त्री0 मिसरी अ0 मिस्र) मिसरी मिस्र देश के नाम से बना है। यह विदेशी शब्द है इसका अर्थ है साफ करके जमाई हुई चीनी दानेदार या रवेदार चीनी, मिस्रदेश की भाषा-भाषा शब्दकोश-पृ0 1257

मेवा : (संज्ञा पु0 फारसी मेव) इसका अर्थ है किशमिश, बादाम आदि सुखाए हुए बढ़िया फल। पूजा पाठ कर्मकाण्ड, हवन, यज्ञ में पंचमेवा का अत्यधिक महत्व है।

पञ्चमेवा : (संज्ञा पु0) यह शब्द संस्कृत के पञ्च एवं फारसी मेवा के संयोजन से संकर शब्द पञ्चमेवा निष्पन्न हुआ है जिससे तात्पर्य है- बादाम, किशमिश, छोहारा, चिरौंजी, गरी आदि।

संकेत-सूची

अ0 -अरबी, *अव0* -अव्यय, *अ0 त0* -अर्धतत्सम्, *उ0* -उपसर्ग, *दे0* -देखिए, *पु0* -पुल्लिंग, *पंच0* -पंचतंत्र, *प्रत्य0* -प्रत्यय, *प्रा0 मु0* -प्रायश्चित मुक्तावली, *फा0* -फारसी, *मनु0* -मनुस्मृति, *मि0* -मिश्र, *याज्ञ0* -याज्ञवल्क्य, *यौ0* -यौगिक शब्द, *रघु0* -रघुवंश पुराण, *विक्रम* -विक्रमांकदेव चरित, *वि0* -विशे0, *स0* -सकर्मक, *सा0* -सामासिक शब्द, *सं0* -संस्कृत, *स्त्री0* -स्त्रीलिंग, *हि0* -हिन्दी, *हि0 को0* -हिन्दू धर्मकोश।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

सं0 उमेश चंद्र पाण्डेय (1967ई0) -*याज्ञवल्क्य स्मृति,* चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी,

श्री कमलाकर भट्ट -*निर्णय सिन्धु,* सावित्री ठाकुर प्रकाशन-रथयात्रा, वाराणसी

खेमराज श्री कृष्णदास -अनुष्ठान प्रकाश, मुख्य मुद्रक एवं प्रकाशक श्री वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस, बम्बई, संस्करण 1996 सम्वत 2053

सं0 गोपाल शास्त्री (1920) -*पारस्कर गृह्यसूत्र,* काशी विश्वविद्यालय, काशी

पं0 चतुर्थी लाल शर्मा (1998) -*प्रायश्चित,* प्रकाश-प्र0 खेमराज श्रीकृष्णदास बम्बई

सं0 महादेव शास्त्री (1898) -*तैत्तिरीय संहिता,* मैसूर गवर्नमेंट ओरियन्टल लाइब्रेरी सीरीज

स्वामी दयानन्द (सं0 2033) -*सत्यार्थ प्रकाश,* प्रकाशक-दयानन्द संस्थान, नई दिल्ली

अमृतनाथ शर्मा -*प्रायश्चित व्यवस्था सार समुच्च,* मास्टर खेलाड़ी लाल, कचौड़ी वाली गली, बनारस

डॉ0 उदय नारायण तिवारी (सं0 2020) -*भाषाशास्त्र की रूपरेखा,* वि0 भारती भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद

के0 एम0 कपाड़िया -*भारतवर्ष में विवाह एवं परिवार,* प्रकाशक मोतीलाल बनारसीदास, चौक, वाराणसी

के0 एम0 कपाड़िया -*विवाह संस्कार,* भारतीय संस्कृति के प्रमुख प्रकाशक, जवाहर नगर, दिल्ली-6

डॉ0 चंद्र प्रकाश त्यागी -*देशी शब्दों का भाषा वैज्ञानिक अध्ययन,* लिपि प्रकाशन, एफ 3/3/24 कृष्णानगर, दिल्ली-51

डॉ0 देवराज -*भारतीय संस्कृति,* विश्वनाथ शर्मा, उत्तर प्रदेश, हिन्दी संस्थान
डॉ0 देवराज -*संस्कृति का दार्शनिक विवेचन,* भार्गव भूषण प्रेस, वाराणसी
डॉ0 भोलानाथ तिवारी - *शब्दों का अध्ययन,* शब्दकार तुर्कमान गेट, दिल्ली-6
मदनलाल वर्मा -*आज की भाषा आज का समाज,* प्रदीप प्रकाशन, बी0 120, कमला नगर, घटवासन, आगरा
डॉ0 महावीर सरन जैन -*भाषा एवं भाषा विज्ञान,* लोकभारती प्रकाशन, 15 ए, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद
डॉ0 राजबली पाण्डेय -*हिन्दू संस्कार,* चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन के/37/117 गोपाल मन्दिर लेन, वाराणसी
डॉ0 रामानन्द तिवारी -*सांस्कृतिक भाषा विज्ञान,* भारती नन्दन, भारती पुस्तक मन्दिर, भरतपुर, राजस्थान
डॉ0 रामानन्द तिवारी -*हमारी जीवन्त संस्कृति,* भारती नन्दन, भारती पुस्तक मन्दिर, भरतपुर, राजस्थान
डॉ0 विद्या निवास मिश्र -*धर्म संस्कृति विद्या,* मार्तण्ड डॉ0 सत्यव्रत सिद्धान्तलेकर विजयकृष्ण लखनपाल, 4/24 आसफ अली रोड नई दिल्ली-6
डॉ0 विद्या निवास मिश्र -*हिन्दू धर्म जीवन में सनातन की खोज,* राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, 2/38, अंसारी मार्ग दरियागंज, नई दिल्ली
डॉ0 विद्या बिन्दु सिंह -*उत्तर प्रदेश की लोक कथाएँ-व्रत, पर्व एवं त्यौहार,* सांस्कृतिक कार्य विभाग, उत्तर प्रदेश
डॉ0 श्यामाचरण दुबे -*मानव और संस्कृति और उसका इतिहास,* दिल्ली

पत्रिकाएँ एवं कोश

सन्मार्ग-संस्कृति विमर्श, प्रबन्धकीय कार्यालय, सन्मार्ग दैनिक तुलसी मंदिर, तुलसी घाट, वाराणसी
भाषा, केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा
भोजपुरी लोक, राजश्री प्रकाशन, गाजीपुर
गवेषणा, केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा
कल्याण, गीताप्रेस, गोरखपुर
भार्गव हिन्दी कोश, भार्गव भूषण प्रेस, वाराणसी
संस्कृत कोश, वामन शिवराम आप्टे
मानक हिन्दी कोश, डॉ0 रामकुमार वर्मा, भाग एक से पाँच
हिन्दू धर्मकोश, डॉ0 राजबली पाण्डेय
भाषा शब्दकोश, डॉ0 रामशंकर शुक्ल 'रसाल'

अँग्रेजी ग्रन्थ

Edward Sapir Language, Culture and Personality
Edward Sapir Language, Granada Publishing, London
Elnar Haugen The Ecology of Language Essays Selected and Introduced by Anwar S. Dill 4 & Stanford University Press, California
E.B TYLOR; *Primitive Culture*
E.A HOEBLA; *Man in the Primitive World*
HARRY HOIZER; *Language in Culture*
J.R Firth Papers in Linguistics, 1934-1951
Oxford University Press, New York, Toronto
MARRY R. *Mass Language, Culture and History Essay*
Maciver and Page Society Macmillan & Co. London, 1950

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777
भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 10,70-73
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 23 दिसम्बर 2016

नागार्जुन की कविताओं में राजनैतिक यथार्थ

डॉ. नमिता जैसल*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *नागार्जुन की कविताओं में राजनैतिक यथार्थ* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *नमिता जैसल* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

लोक चेतना के चितेरे कवि नागार्जुन के रचनाओं में सामाजिक, आर्थिक यथार्थ की गहरी पकड़ है। समाज में व्याप्त बुराईयों, अन्ध-विश्वासों, रुढ़ियों और दलित शोषक वर्ग के लोगों का उनको गहरा अनुभव है। वे बिना किसी लाग लपेट के समाज में व्याप्त सभी बुराईयों की खुले तौर पर कड़े शब्दों में भर्त्सना करते हैं। और न केवल अपनी रचनाओं बल्कि जीवन में भी दलित, शोषित वर्ग के लिए वे निरन्तर संघर्ष करते रहे हैं। क्योंकि जनवादी कवि नागार्जुन के हृदय में भारतीय जन-जीवन के लिए असीम प्रेम भरा हुआ है और निम्न वर्ग के अभावों के स्वयं भोक्ता रहे हैं। इसीलिए इस विद्रोही कवि ने जन-जीवन को उन्नत बनाने के लिए जागरण का मंत्र फूँका, सामान्य जन जीवन को यातना और प्रताड़ना से बचाने के लिए क्रान्ति का आह्वान किया है। जन-जीवन को सुख-सुविधायें प्रदान करने के लिए अन्याय एवं अत्याचार का विरोध किया है, जन-जीवन को शान्ति एवं समृद्धि प्राप्त कराने के लिए ही चीनी आक्रमण का डटकर मुकाबला करने के लिए प्रेरित किया है।

नागार्जुन सच्चे जन कवि हैं और सच्चा जनकवि अपने आस-पास होने वाली घटनाओं से प्रभावित हुए बिना नही रह सकता। हमारे रोजमर्रा के जीवन में आम आदमी कितना दारूण स्थितियों के मध्य जी रहा है और आज की राजनीति भी इतनी फूहड़ होती जा रही है कि उसे साधारण जन के दुःख दर्द से कोई मतलब नहीं अपने तुच्छ स्वार्थों के लिए वोट की राजनीति के लिए कभी गरीबों पर अत्याचार तो कभी साम्प्रदायिक दंगों की आँच में अपने-अपने हाथ सेंकते हैं।

नागार्जुन राजनीतिक रूप से अधिक संयत कवि हैं। इनकी कविताएँ संवेदनशीलता और गहन भावबोध से संयुक्त हैं। सामाजिक विद्रूपता, राजनीतिक छल और धार्मिक अंध-विश्वासों पर चुभते व्यंग्य करने में ये कुशल हैं। इन्होंने सामाजिक और राजनीतिक दोनों तरह की व्यंग्य रचनाएँ की हैं। सामाजिक व्यंग्य कविताओं के मूल में जहाँ करूणा है वहाँ राजनीतिक व्यंग्यों में उपहास और खिल्ली उड़ाने की प्रवृत्ति। नागार्जुन के व्यक्तित्व और कृतित्व पर राहुल सांकृत्यायन एवं निराला जी का प्रभाव है। राहुल जी से प्रेरित होकर राजनीतिक क्षेत्र में आए और निराला जी प्रेरित होकर साहित्यिक क्षेत्र में कलम संभाली।

* [पोस्ट डॉक्टोरल फेलो] हिन्दी विभाग [कला संकाय] काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

डॉ0 नामवर सिंह जी कहते हैं - ''हिन्दी में व्यंग्य या तो निराला ने लिखा या नागार्जुन ने।''[1]

नागार्जुन ने अपने साहित्य में समाज के अन्तर्विरोधों और सांस्कृतिक जड़ता के प्रति आक्रामता के रूख को अपनाए वे निरन्तर ऐसे समाज के प्रति चिन्तनशील हैं जिसकी संस्कृति जनोन्मुख और प्रेरणादायक न होकर विलासी और फूहड़ मनोरंजनवादी होती जा रही है। लोकमंगल के स्थान पर निजमंगल की प्रबल होती भावना के विरोध है। जीने के लिए जीना, जीना नहीं है, परोपकार के लिए जीना ही जीना है। इसलिए वे युगीन विषमताओं, सामाजिक कु-रीतियों, विकृतियों और रूढ़ियों के प्रबल विरोधी है और संस्कृति विनाशक तत्वों की साम्राज्यवादी ताकतों की भर्त्सना करते हैं और सर्वहारा की संघर्षशील चेतना को साहित्य में वाणी दी है। डॉ0 त्रिभुवन सिंह के शब्दों में- ''कवि की दृष्टि जीवन के हर उन पहलुओं पर गई है, जिनसे आम आदमी प्रभावित होता है। अपने लेखकीय व्यक्तित्व में जिस ईमानदारी का जोखिम नागार्जुन ने उठाया है वह सबके बस की बात नहीं है। नागार्जुन के पैने व्यंग्य हिन्दी साहित्य में अपना अलग स्थान रखते हैं।''[2]

नागार्जुन का अभावों में दम तोड़ने वाले जन-सामान्य के प्रति सहानुभूति सबसे पहले है क्योंकि इनके "हृदय में जन-सामान्य के प्रति अटूट स्नेह भरा है। उन्होंने जहाँ सामन्ती जीवन विधि एवं पूँजीवादी हथकण्डों पर किया है वहाँ काँग्रेस, समाजवादी तथा अन्य राजनीतिक दलों के नेताओं की वैयक्तिक दुर्बलताओं का भी चित्रण किया है। नागार्जुन के स्वयं के शब्दों में ''शोषक और तानाशाही शक्तियों के खिलाफ जनमत तैयार करना मेरा पहला काम हो जाता है। संघर्ष के लिए जो प्रतीक मुखरित होते हैं उन्हें उभारता हूँ ताकि रग-रग में माहौल पैदा हो जाए।''[3]

नागार्जुन आज की राजनीतिक चालों से दुःखी है। क्योंकि आज के नेता जन-सामान्य के हितों के स्थान पर वैयक्तिक भोग-विलास अर्थात् अपने सुख-सुविधाओं में ज्यादा लिप्त है। गाँधी जी के नाम पर हो रहे अत्याचारों और शोषण से वे पीड़ित है। गाँधी जी के चेलों पर व्यंग्य करते हुए वे लिखते हैं- ''बेच-बेच कर गाँधी जी का नाम/ बटोरो वोट/ बैंक बैलेन्स बढ़ाओ/ राजघाट पर बापू की वेदी के आगे अश्रु बहाओ।''[4] (युगधारा)

नागार्जुन का अहिंसात्मक क्रान्ति से विश्वास उठ गया है क्योंकि वे हर रोज देखते हैं कि गिद्ध किस तरह सामान्य-जन का शोषण कर रहे हैं। नेता और शासक वर्ग सारे कार्य स्वयं के हित के लिए करते हैं। सर्वहारा वर्ग की मेहनत से उत्पन्न अर्थ को वे अपने भोग-विलास के लिए पानी की तरह बहा रहे हैं। इसीलिए इनकी सहानुभूति नक्सलवादियों के प्रति भी है जिनका कि हिंसात्मक क्रांन्ति में विश्वास है। जब तेलंगाना में किसान आन्दोलन हुआ और साम्यवादियों ने हिंसात्मक क्रान्ति का संघर्ष छेड़ा, तब जनकवि नागार्जुन कहते हैं- ''होशियार कुछ दूर नहीं है/ लाल सबेरा जाने में/ लाल भवानी प्रकट हुई है/ सुना कि तैलगाने में।''

नागार्जुन राजनैतिक दृष्टि से एक सजग लेखक हैं, जो तमाम चीजों को गहराई से समझते और परखते हैं। नागार्जुन प्रगतिशील कवियों के सिरमौर हैं खास बात यह है कि उनमें भी राजनीतिक दृष्टि से सर्वाधिक सजग है। राजनीतिक उथल-पुथल के युग में वे भारी संख्या में राजनीतिक कविताएँ लिखते हैं यह उनके लिए आकस्मिक नहीं है। इन्होंने गाँधीजी, नेहरु, मोरारजी, राजनारायण, संजय गाँधी आदि पर व्यंग्य कविताएँ लिखी हैं। इसके साथ ही अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं और राजनीति से सम्बन्धित घटनाओं पर भी कविताएँ लिखे हैं।

नागार्जुन के राजनैतिक विचार एकदम स्पष्ट हैं। वे समकालीन राजनीति और उससे संचालित जीवन से गहरे जुड़े हुए हैं। वे अपनी सीधी सादी भाषा में 'शासन को बन्दूक' कविता में विचार करते हुए कहते हैं- ''सत्य स्वयं घायल हुआ, अहिंसा चूक/ जहाँ तहाँ दगने लगी शासन की बन्दूक/ जली ठूँठ पर बैठकर गयी कोकिला कूक/ बाल न बाका कर सकी शासन की बन्दूक।''[5]

नागार्जुन निर्भीक कवि हैं वे डरना जानते ही नहीं देश की सर्वोच्च सत्ता भी जब कोई गलत निर्णय लेती है तो उनकी कविता चुनौती देती है। जैसे 'आओ रानी हम ढोएंगे पालकी', 'काली माई', 'शासन की बन्दूक'; 'क्या हुआ आपको'; 'देवि गोरी है या काली'; 'अब तो बन्द करो हे देवि यह चुनाव का प्रहसन' इन सब रचनाओं में इनकी निर्भीकता देखी जा सकती है। 'क्या हुआ आप को' कविता में प्रधानमंत्री पर किया गया व्यंग्य इस प्रकार है- ''इन्दु जी, इन्दु जी क्या हुआ आपको/ सत्ता की मस्ती में भूल गई बाप को।''[6]

लोक के चितेरे कवि नागार्जुन की सबसे बड़ी विशेषता स्पष्टवादिता है। इतनी स्पष्टवादिता हिन्दी के किसी भी कवि में नहीं

मिलेगी। वे बराबर शासक हो या राजनीतिक दल सब पर गहरी नजर रखते है कोई भी उनकी नजर से छूट नहीं सकता है। 'प्रजातंत्र की होम' कविता में नागार्जुन कहते हैं- ''सामन्तो ने कर दिया प्रजातंत्र का होम/ लाश बेचने लग गए खादी पहने डोम।''[7]

काँग्रेस के प्रति नागार्जुन में सदा से वितृष्णा का विरोध का भाव रहा है 'हत्यारे', 'हाय रे ओ आला कमान', 'प्रजातंत्र का होम', दिल्ली की देवि', इन्दु जी क्या हुआ आपको, आदि अनेक कविताओं में इन्होंने काँग्रेस नेताओं के चरित्र, काँग्रेस की दशा एवं दिशा पर तीखा विश्लेषण किया है। सत्तासीन होने पर काँग्रेसी सोते रहते हैं और चुनाव के समय ही जागते हैं। नागार्जुन ने स्वगत-चिन्तन काँग्रेसी आलाक का' नामक कविता में लिखा है- ''हुए यदि मध्यावधि चुनाव/ अपन तो समझो डूब ही गये सब/ कोई नहीं आयेगा काम/ रामसुभग या जगजीवनराम।''[8]

नागार्जुन ने कई कविताओं में इन्दिरा गाँधी और उनकी राजनीति पर तीखी टिप्पणियाँ की है। बांग्लादेश का निर्माण कराके वे अहंकार में डूब गयी थी, जबकि वह कृत्य अशुभकारी ही था। 'अब तो बन्द करो देवि यह चुनाव का प्रहसन' शीर्षक लम्बी कविता में नागार्जुन ने उन पर चुटीले वार किये हैं- ''देवि ! तुम्हारे दांये-बांये, यह मुजीब सिद्धार्थ/ नये सिरे से साधेंगे अब स्वार्थ और परमाथ.../ महाक्रान्ति की प्रबल वद्वि में होगी सत्ता/ अरुणाई में दमक उठेंगे, ढाका और कलकत्ता।''

सन् 1967 के बाद देश में दल-बदल और अवसरवादी राजनीति का सूत्रपात हुआ और दूसरी प्रमुख बात यह है कि राजनीति में दलित शोषित वर्ग के बाहुबलियों का वर्चस्व बढ़ने लगा। अभी तक ये दलित पिछड़े बाहुबली काँग्रेस को जिताने का कार्य करते थे, अब स्वयं संसद और विधान सभाओं में स्थान पाने लगे। नवे दशक में एक अद्भुत क्रान्ति ने जन्म लिया। कांशीराम-मायावती के नेतृत्व में बहुजन समाज पार्टी ने रूपाकार ग्रहण किया। 'मायावती मायावती' नामक कविता में मायावती को उभरती शक्ति मानते हुए नागार्जुन कहते हैं- ''मायावती मायावती/ दलितेन्द्र की छायावती छायावती...../ जय जय हे दलितेन्द्र।''[9]

नागार्जुन ने आपातकाल के विरोध में भी कई कविताएँ लिखी है। जैसे- धज्जी-धज्जी उड़ादी छोकरों ने' इमर्जेन्सी कविता प्रसिद्ध है। इन्होंने जयप्रकाश नारायण के समर्थन के बाद में उसके विरोध में भी कविताएँ लिखे हैं- 'जयप्रकाश पर पड़ी लोक की लाठियाँ' कविता में लिखा है- ''एक और गाँधी हत्या होगी अब क्या?/ बर्बरता के भोग चढ़ेगा भोगी अब क्या?/ पोल खुल गयी शासक दल के महामंत्र की/ जयप्रकाश पर पड़ी लाठियाँ लोकतंत्र की।''[10]

डॉ0 नामवर सिंह जी कहते हैं ''व्यंग्य की विदग्धता ने ही नागार्जुन को अनेक तात्कालिक कविताओं को कालजयी बना दिया है, जिसके कारण वे कभी बासी नहीं हुई और अब भी तात्कालिक बनी हुई है।[11]

नागार्जुन सम्पूर्ण रूप से शोषण के खिलाफ संघर्ष के लिए समर्पित रहे हैं इसीलिए देश की कोई भी सामाजिक व राजनीतिक घटना उनकी कविता से नहीं बच सकी है। इनकी कविताओं में भोगा हुआ दर्द है, सच्चा आक्रोश है। इनके कहने की ताकत में कही कोई खोट नहीं है, खरी बात कहने के कारण ही जन-सामान्य के अति निकट है और वे उसको भाते भी है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

[1]सक्सेना, द्वारिका प्रसाद -*हिन्दी के आधुनिक प्रतिनिधि कवि,* विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, पृष्ठ संख्या 447

[2]सिंह, त्रिभुवन -*आधुनिक साहित्यिक निबन्ध,* तृतीय संशोधित संस्करण, 1998, पृष्ठ संख्या 400

[3]भट्ट, प्रकाश चन्द्र -*नागार्जुन और जीवन साहित्य,* पृष्ठ संख्या 37

[4]*युगधारा,* नागार्जुन

[5]सिंह, नामवर -*नागार्जुन की प्रतिनिधि कविताएँ (शासन की बन्दूक),* संस्करण ग्यारहवी आवृत्ति : 2009, पृष्ठ संख्या 105, राजकमल पेपर वैक्स

[6]*क्या हुआ आपको,* नागार्जुन

[7]*प्रजातंत्र की होम,* नागार्जुन

[8]नागार्जुन, रचनावली -2, पृष्ठ संख्या 17

[9]*अब तो बंद करो देवि चुनाव का प्रहसन,* नागार्जुन

[10]नागार्जुन, रचनावली -2, पृष्ठ संख्या 465

[11]सत्यनारायण नागार्जुन : *कवि और कथाकार,* संस्करण 1991, पृष्ठ संख्या 123, रचना प्रकाशन, जयपुर

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777
भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 10,74-80
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 19 अक्टूबर 2016

भारत में वानिकी तथा कृषि क्षेत्रों में व्हाइट ग्रब्स का वितरण, प्रकोप एवं नियंत्रण के संबंध में महत्वपूर्ण जानकारी

मन्सूर अहमद*, डॉ. नितिन कुलकर्णी** एवं डॉ. संजय पौनीकर***

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *भारत में वानिकी तथा कृषि क्षेत्रों में व्हाइट ग्रब्स का वितरण, प्रकोप एवं नियंत्रण के संबंध में महत्वपूर्ण जानकारी* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखक *मन्सूर अहमद, नितिन कुलकर्णी एवं संजय पौनीकर* घोषणा करते हैं कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेते हैं, क्योंकि हमने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देते हैं। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह हमारी मौलिक कृति है। हम शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देते हैं। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देते हैं।

सारांश

संघ आर्थ्रोपोडा में कीट वर्ग (इंसेक्टा) का योगदान पृथ्वी पर पाए जाने वाले जीवों में सर्वाधिक है। इन कीटों द्वारा की जाने वाली परागण क्रिया पर जहॉ प्रत्येक जीव आश्रित हैं, वहीं कुछ कीट प्रजातियॉ वनस्पतियों में रोग एवं विनाश का कारण भी हैं। व्हाइट ग्रब्स भी इनमें से एक महत्वपूर्ण नाशिकीट है। म.प्र. में यह इमारती लकड़ी के सबसे अच्छे स्त्रोत सागौन के उत्पादन को बड़े पैमाने पर प्रभावित कर रहा है। इस कीट के नियंत्रण हेतु वैज्ञानिकों द्वारा निरंतर शोध किया जा रहा है ताकि इसके कारण देश को होने वाली आर्थिक हानि से बचाया जा सके। प्रस्तुत शोध कार्य का उद्देश्य इस कीट की पहचान, व्यवहार, उपस्थिति तथा नियंत्रण के उपायों के बारे में लोगों को जागरुक करना है।

प्रस्तावना

फैमिली स्कैरैबिडी के लैमिलीकोर्न बीटलों के लार्वा (अवयस्क) सामान्यतः व्हाइट ग्रब्स के नाम से जाने जाते हैं। मित्तल (2000) के अनुसार दुनियाभर में स्कैरैबिडी की 30,000 से अधिक प्रजातियॉ पायी जाती हैं। ये अधिकतर उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों, अफ्रीका तथा ओरेयेंटल क्षेत्रों में है। इनके लगभग 12 उपकुल के ग्रब्स (अवयस्क) जड़ों को खाने वाले होते हैं। इन ग्रब्स द्वारा क्षेत्र विशेष में की गयी हानि आर्थिक स्तर पर बहुत अधिक देखने को मिलती है। अधिक प्रकोप होने की दशा में वन रोपणियों में पौध, व्यवसायिक महत्व के पेड़-पौधे (Anon, 2016) तथा कृषि फसल पूर्णतयः नष्ट हो जाती है (चित्र-1)। वीरेश (1980) के अनुसार क्षेत्र विशेष वातावरणीय एवं मृदीय कारकों तथा भौगोलिक क्षेत्रों में प्रजातियों के आधार पर इन कीटों की उपस्थिति एवं जीवनकाल अलग-अलग (1-5 वर्षो तक) हो सकता है।

* शोध छात्र, वन कीट विज्ञान प्रभाग, उष्णकटिबंधीय वन अनुसंधान संस्थान [पो -आर.एफ.आर.सी., मण्डला रोड] जबलपुर (मध्य प्रदेश) भारत
** वैज्ञानिक-जी एवं प्रमुख, वन कीट विज्ञान प्रभाग, उष्णकटिबंधीय वन अनुसंधान संस्थान [पो -आर.एफ.आर.सी., मण्डला रोड] जबलपुर (मध्य प्रदेश) E-mail : kulkarni_n27@hotmail.com
*** अनुसंधान अधिकारी, वन कीट विज्ञान प्रभाग, उष्णकटिबंधीय वन अनुसंधान संस्थान [पो -आर.एफ.आर.सी., मण्डला रोड] जबलपुर (मध्य प्रदेश) भारत

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

वर्गीकरण (एरो, 1917 के अनुसार)

ऑर्डर : कोलिओप्टेरा

सब ऑर्डर : पौलीफैगा

सीरीजः लैमिलीकौर्निया

फैमिलीः स्कैरेबिडी

स्कैरिबिडी के प्रमुख उपकुल

1. *स्कैरेबिनी (कौपराइनी)*- जीनसः कौपरिस, औनाइटिस उदाः डन्ग बीटल
2. *सिटोनाइनी*- जीनसः जुमनोज उदाः फ्लौवर बीटल
3. *डिनैस्टाइनी*- जीनसः जायलोट्रुपिस, फिलौग्रैथस उदाः राइनोसिरोस बीटल, एलीफैन्ट बीटल
4. *रियूटेलाइनी*- जीनसः एनोमेला, पोपिलया उदाः शाइनिंग लीफ चैफर
5. *मेलोलोंथाइनी*- जीनसः मेलोलोंथा, होलोट्रीकिया उदाः मइ-जून बीटल
6. *ट्रोगाइनी*- जीनसः ट्रोक्सिडिकस उदाः ग्रौवर
7. *जिओट्रूपाइनी*- जीनसः जिओट्रूपिस, ओडोन्टियस
8. *हाइपोसोराइनी*- जीनसः हाइपोसोरस
9. *एफोडाइनी*- जीनसः एफोडियस उदाः छोटे डंग बीटल

*प्रकाशित उपलब्ध जानकारी तथा क्षेत्र अवलोकन के आधार पर भारतीय उपमहाद्वीप में पायी जाने वाली कृषि-फसलों तथा वनरोपणियों को आर्थिक स्तर पर अधिक हानि पहुँचाने वाली प्रजातियॉ निम्नवत् हैं :

क्रमांक	कीट प्रजाति का नाम	राज्य
1	*होलोट्रीकिया लोंगीपैनिस*	उत्तराखण्ड, हिमाचल प्रदेश, जम्मू-काश्मीर
2	*होलोट्रीकिया सैंटीकोलिस*	हिमाचल प्रदेश, उत्तराखण्ड
3	*होलोट्रीकिया कौसैंगुनिया*	राजस्थान, गुजरात, हरियाणा, पंजाब, उत्तर प्रदेश, बिहार, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, आन्ध्र प्रदेश, दिल्ली, तमिलनाडु, छत्तीसगढ़
4	*होलोट्रीकिया सैरेटा*	कर्नाटक, महाराष्ट्र, आन्ध्र प्रदेश, तामिलनाडू, केरल राजस्थान, उत्तर प्रदेश की तराई बेल्ट, दक्षिण बिहार, दिल्ली, ओडिसा, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़
5	*होलोट्रीकिया रिनौडी*	ऑन्ध्र प्रदेश का केंद्रीय प्रायद्वीप, कर्नाटक, तमिलनाडु, छत्तीसगढ़, राजस्थान, गुजरात, पंजाब
6	*होलोट्रीकिया नीलग्रीया*	कर्नाटक
7	*होलोट्रीकिया रस्टिका*	महाराष्ट्र
8	*होलोट्रीकिया नागपुरिएन्सिस*	मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, केरल
9	*होलोट्रीकिया म्यूसिडा*	महाराष्ट्र
10	*होलोट्रीकिया फिशा*	मध्य प्रदेश
11	*ब्राहमिना फ्लैवोसैरिका*	हिमाचल प्रदेश
12	*ब्राहमिना कोरियेसिया*	हिमाचल प्रदेश, जम्मू-काश्मीर, उत्तराखण्ड
13	*एनोमेला डाईमीडियेटा*	उत्तराखण्ड, हिमाचल प्रदेश, जम्मू-कश्मीर,
14	*एनोमेला लीनिएटोपैनिस*	हिमाचल प्रदेश, उत्तराखण्ड
15	*एनोमेला मार्जिनीपैनिस*	केरल
16	*एनोमेला बेंगालेंसिस*	महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, ओडिसा, छत्तीसगढ़, राजस्थान, बिहार, तमिलनाडु
17	*एनोमेला स्पेशीज*	हिमाचल प्रदेश

18	*एडोरीटस स्पैशीज*	हिमाचल प्रदेश
19	*लैपीडयोटा स्टिग्मा*	उत्तर-पश्चिम हिमालय
20	*मेलोलोंथा फर्सीकौडा*	उत्तराखण्ड, हिमाचल प्रदेश, जम्मू-काश्मीर
21	*मेलोलोंथा इन्डिका*	हिमाचल प्रदेश
22	*औटोसैरिका स्पेशीज*	हिमाचल प्रदेश
23	*फिलोग्रैथस डयोनाइशियस*	हिमाचल प्रदेश, उत्तर प्रदेश, हरियाणा, सिक्किम, पश्चिम बंगाल, महाराष्ट्र, तमिलनाडु, ओडिसा, कर्नाटक
24	*ल्युकोफोलिस कोनियोफोरा*	कर्नाटक, केरल
25	*ल्युकोफोलिस लेपिडोफोरा*	महाराष्ट्र
26	*शायजोनिका रुफिकोलिस*	महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, ओडिसा, छत्तीसगढ़, गुजरात, पंजाब, राजस्थान
27	*शायजोनिका स्पेशीज*	पंजाब, उत्तर प्रदेश
28	*एपोगोनिया यूनीफोर्मिस*	पंजाब
29	*एडोरीटस स्पेशीज*	राजस्थान
30	*राइनिप्शिया मेरिडायोनैलिस*	राजस्थान
31	*राइनिप्शिया लैविसेप्स*	राजस्थान
32	*पेपिलिया स्पेशीज*	उत्तर प्रदेश
33	*लैकोस्टर्ना फिशा*	हरियाणा
34	*सैरिका असमेंसिस*	राजस्थान
35	*असैरिका स्पेशीज*	राजस्थान

* *ऑल इण्डिया नेटवर्क प्रोजेक्ट ऑन सॉइल आर्थ्रोपोड पेस्ट्स* से परिवर्तित

भारत में व्हाइट ग्रब्स का प्रकोप

व्हाइट ग्रब्स धीरे-धीरे भारत में विकराल रुप ले रहा है। सर्वप्रथम 19वीं शताब्दी में व्हाइट ग्रब्स के पाये जाने की पुष्टि हुई। गुप्ता एवं अवस्थी (1956) ने 1950 के पश्चात से इस समस्या को प्रकोप के रुप में प्रतिवेदित किया। बिहार के डाल्मियानगर में व्हाइट ग्रब्स से गन्ने के उत्पादन में हुई बड़े पैमाने पर क्षति से लेकर अब तक पूरे भारत में फसलों तथा वन रोपणियों में होने वाली आर्थिक हानि के कारण यह एक बड़ी समस्या बन चुका है। अली (2001) ने भारत में व्हाइट ग्रब्स के 143 पोषक पौधों की पुष्टि की है। लगभग प्रत्येक फसल इनके प्रकोप से ग्रसित हो चुकी है। भारत में इनसे मुख्यतः आलू, गन्ना, ज्वार, बाजरा, मक्का, सोयाबीन, तंबाकू तथा सब्जियों की खेती को नुकसान पहुंचता है। यहाँ अधिकतर कृषि-फसलों को हानि पंहुचाने वाली स्कैरेबिडी के चार उपकुल मिलालोंथाइनी, डिनैस्टाइनी, सिटोनाइनी तथा रयूटिलाइनी हैं।

वनिकी की प्रजातियों में मध्य भारत रोपणी क्षेत्रों में बीसन एवं अन्य (1941), माथुर (1960), मेश्राम (1993), ओक एवं वैशम्पायन (1979), सिंह (1988), ठाकुर (1993), जोशी एवं जमालुद्दीन (2007), कुलकर्णी एवं अन्य (2007, 2009) ने व्हाइट ग्रब्स की उपस्थिति, होने वाली हानि तथा नियंत्रण से संबंधित जानकारी दी है। इन राज्यों में वन रोपणियों मुख्यतः *होलोट्रीकिया सेरैटा, होलोट्रीकिया रस्टिका, होलोट्रीकिया म्यूसिडा, होलोट्रीकिया कंसैंगुनिया, होलोट्रीकिया रिनौडी, होलोट्रीकिया नागपुरिएन्सिस, शायजोनिका रुफिकोलिस,* नामक व्हाइट ग्रब्स की प्रजातियों से प्रभावित पायी गयी हैं। इसमें से अन्य के अतिरिक्त *होलोट्रीकिया रस्टिका, होलोट्रीकिया म्यूसिडा* तथा *शायजोनिका रुफिकोलिस* को सर्वप्रथम सागौन पौध अथवा किसी वानिकी प्रजाति को नष्ट करते हुए पाया गया (कुलकर्णी, 2010)।

मध्य भारत में विशेषकर महाराष्ट्र तथा मध्य प्रदेश में क्षेत्र-विशेष तथा कीट-जाति विशेष जानकारी, वन रोपणियों (विशेषकर सागौन) में होने वाली हानि से बचाने हेतु रसायनिक तथा जैविक नियंत्रण तथा समय पूर्व से ही किए जाने वाले उपायों के संबंध में कुलकर्णी, 2009, 2010 तथा कुलकर्णी एवं अन्य ने 2007, 2009 में अनुसंधान कार्य कर इन कीटों के समेकित नाशिकीट प्रबंधन (IPM) हेतु आदर्श निर्देशिका प्रस्तुत की है (कुलकर्णी एवं अन्य, 2016)।

व्हाइट ग्रब्स तथा इनके वयस्कों के पोषक पौधे

कृषि वानिकी क्षेत्रों में व्हाइट ग्रब्स के प्रथम तथा द्वितीय पोषक के रुप में आलू, बैंगन, गन्ना, गूलर, मेंहदी, जामुन, ज्वार, बाजरा, मक्का, मिर्च, तंबाकू, मूंगफली, कॉफी, शकरकंद, खस, कपास, धान, पौधे, दालें, बेर, नीम, साल, तेंदू, प्लास, अमरुद, आम, सेब, खेजरी, बबूल, बाजरा, फल देने वाले तथा कुछ सजावटी पौधे शामिल हैं (चित्र-2)।

व्हाइट ग्रब्स की मुख्य विशेषतायें

लार्वा : व्हाइट ग्रब्स अंग्रेजी के C अक्षर जैसे दिखने वाले सफेद रंग के लार्वा होते हैं। इनका सख्त सिर (स्क्लैरोटाइज्ड) पीला अथवा लाल-भूरे रंग का होता है। इनका पिछला भाग मिट्टी निगलने के कारण मटमैले रंग का हो जाता है। आकार औसतन 20-60 मि.मी. तथा शरीर हैड, थारेक्स तथा एब्डोमन तीन हिस्सों में विभाजित होता है। मैण्डिबल्स बहुत मजबूत होते हैं जिसके कारण ये सागौन की पौध को भी नष्ट कर देते हैं। वे प्यूपा में परिवर्तित होकर वयस्क बनने तक मिट्टी के अंदर ही रहते हैं। अण्डे से तुरंत निकलकर वह सड़े गले पदार्थो को खाते हैं (चित्र-3)।

यूपा : गहराई में रहकर पूर्ण विकसित लार्वा अपनी सक्रिय अवस्था सें प्रसुप्त अवस्था (प्यूपा) में परिवर्तित होते हैं। इस अवस्था में ये भोजन नहीं करते हैं। शीतऋतु समाप्ति तक ये वयस्क अवस्था (बीटल) में परिवर्तित हो जाते हैं। अनुकूल परिस्थितियॉ मिलने पर ये मिट्टी से बाहर निकलते हैं। रात्रि के समय पत्तियों सें पोषण प्राप्त करते हैं तथा दिन निकलने से पहले ये मिट्टी, सड़े गले पदार्थो घास, पत्तियों इत्यादि में चले जाते हैं।

वयस्क : इसके वयस्क लाल, काले, हरे अथवा भूरे इत्यादि रंग के होते हैं। इनका आकार प्रजातियों के अनुसार अलग-अलग होता है। इनका आकार 12-45 मि.मी. का हो सकता है (चित्र-4)।

अलग-अलग भौगोलिक क्षेत्रों में वातावरणीय एवं मृदीय कारकों के कारण इनकी प्रजातियॉ तथा इनके पोषक वृक्ष भी अलग-अलग हो सकते हैं। रात्रि के समय सूर्यास्त के पश्चात् ये मिट्टी से बाहर निकलते हैं तथा पोषक पौधों की पत्तियों को खाते हैं। खाते हुए ये विशेष प्रकार के खाद्य चिन्ह बनाते हैं जिससे इनकी उपस्थिति के बारे में दिन के समय में ही पहचाना जा सकता है। ये पत्तियों को किनारे से खाना प्रारंभ करते हैं। ये मुलायम पत्तियों को खाना पसंद करते हैं। दिन निकलने से पहले ही ये वापस मिट्टी में चले जाते हैं। ये मिट्टी में ही अण्डे देते हैं। इनके अण्डे सफेद या मटमैले रंग के होते हैं। वयस्कों का मिट्टी से बाहर निकलना प्रथम मानसूनी भारी वर्षा तथा वातावरणीय आर्द्रता पर निर्भर करता है। जब तापमान 27-30 ^{0}C, वर्षा लगभग 11 मि.मी. हो चुकी हो तथा वातावरणीय आर्द्रता 50 प्र.श. से अधिक हो, यह समय इनके उदभव (मिट्टी से वयस्क बनकर बाहर निकलने) के लिए अनुकूल होता है। गर्मियों का समय प्रारंभ होने (अप्रैल माह) से वर्षा ऋतु रहने (लगभग सितंबर माह) तक ये सक्रिय रहते हैं। इनका यह समय प्रजातियों तथा भौगोलिक क्षेत्रों के कारण अलग-अलग हो सकता है। यद्यपि यह ज्ञात था कि प्रथम मानसून पूर्व वर्षा के तुरंत पश्चात् ही वयस्कों का उदभव प्रारंभ हो जाता है परंतु इसके वैज्ञानिक साक्ष्य सर्वप्रथम कुलकर्णी एवं अन्य (2007, 2009) ने दिये तथा साथ ही अवलोकन के आधार पर यह भी प्रमाणित किया कि वर्षा का होना तो आवश्यक है परंतु 50 प्र.श. से अधिक वातावरणीय आर्द्रता का होना अति आवश्यक है जिसकी उपस्थिति में थोड़ी बहुत वर्षा में भी वयस्कों का मिट्टी से बाहर निकलना (उद्भव) प्रारंभ हो जाता है। जबकि लगभग 50 प्र.श. वातावरणीय आर्द्रता की अनुपस्थिति में तेज वर्षा होने पर भी वयस्कों का उदभव नहीं होता। यह जानकारी विशेषतया वन रोपणियों में वयस्कों के प्रकोप की भविष्यवाणी एवं पूर्वानुमान हेतु अत्यंत उपयोगी सिद्ध होगी।

नियंत्रण हेतु सामान्य जानकारी

1- वन रोपणियों एवं फसलों में व्हाइट ग्रब्स के नियंत्रण हेतु सर्वप्रथम यह आवश्यक है कि वयस्कों (बीटलों) के मिट्टी से बाहर निकालने के समय (उदभव) का ज्ञान हो ताकि उनके पोषक वृक्षों पर रासायनिक या जैविक छिड़काव कर

इन वयस्कों को अण्डे देने का समय न देते हुए नष्ट किया जा सके। संभव हो तो हाथों से एकत्रण की विधि को प्रत्येक दिन भ्रमण कर अमल में लाना चाहिए ताकि इन वयस्कों के सक्रिय रहने के समय में इनके गुणन पर विराम लगाकर पूर्णतयः इन पर नियंत्रण किया जा सके।

2- चूंकि ग्रब्स के द्वारा जड़ों को खाये जाने से पौधों की पत्तियों मुरझा जाती हैं तथा पीली पड़ जाती हैं। इस प्रकार के पौधे मिट्टी से अपनी पकड़ खो देते हैं, इस कारण इन्हें आसानी से खींचा जा सकता है। ऐसे पौधों की पहचान कर उसके चारों ओर की मिट्टी को जड़ की गइरायी तक खोदकर अवयस्कों (ग्रब्स) को हाथों से निकालकर उन्हें नष्ट कर देना चाहिए। यह प्रक्रिया ग्रब्स के पाये जाने तक निरंतर की जानी चाहिए। ग्रब्स से पौधों को अधिक हानि न हो इसके लिये कृषि-वानिकी विशेषज्ञ/ वैज्ञानिक से संपर्क करना चाहिए। रसायनों का उनके द्वारा बताये अनुसार ही प्रयोग करना चाहिए। वातावरण प्रदूषित न हो इस बात का ध्यान रखते हुए यह आवश्यक है कि रसायनों का कम से कम उपयोग हो, अतः समेकित नाशिकीट प्रबंधन (IPM) के अंतर्गत कुलकर्णी एवं अन्य (2016) के अनुसार जैव नियंत्रण उपायों को अधिकाधिक अमल में लाया जाये।

3- फसलों तथा रोपणियों को कीटों के प्रकोप से बचाने हेतु इस बात का ध्यान देना चाहिए कि बीज रोगमुक्त तथा उच्च गुणवत्ता के हों। संभव हो तो विशेषज्ञ की सलाह से बीजों एवं बुवाई की जगह/ मिट्टी का निरीक्षण करके पूर्व में उपचारित किया जाये।

4- व्हाइट ग्रब्स के वयस्कों की कुछ प्रजातियॉ प्रकाश की ओर आकर्षित होती हैं। अतः उन स्थानों पर लाइट ट्रैप (प्रकाश पिंजरे) लगाना उचित होगा।

5- व्हाइट ग्रब्स को खाने वाले इनके परिजीवियों (एग्रिप्रस फ्युसिपस) को कुलकर्णी एवं पौनीकर, (2009) एवं कुलकर्णी एवं अन्य (2016) के अनुसार नष्ट होने से बचाया जाये।

6- खेत/ रोपणी बेडों की गहरी जुताई करना चाहिए। जुताई के समय पक्षी इन ग्रब्स को खाते हैं, अतः उन्हें उस जगह से न उड़ाया जाये।

संदर्भ

AINPSAP (2016) Distribution of major species. *All India network project on soil arthropod pests Internet source*: http://ainpwhitegrubs.com/major-species.pdf, Accessed on 10/06/2016.

Ali Musthak, T.M. (2001) Biosynthesis of phytophagous Scarabaeidae-An Indian overview. In: *Indian Phytophagous Scarabs and their Management: Presesnt Status and Future Strategy* (Eds. G. Sharma, Y.S. Mathur and R.B.L Gupta). Agrobios (India), Jodhpr, pp.5-37.

Arrow, G. R. (1917). Coleoptera Lamellicornia. Part II (Rutelinae, Desmonycinae and Euchirinae). In*:* A.E Shipley and A. K. M. Guy (eds.). *The fauna of British India including Ceylon and Burma.*London, Taylor and Francis.387 pp.

Beeson, C.F.C. (1941) *The Ecology and control of forest insects of India and Neighbouring countries*, p.1007. Vasant Press, Dehradun.

Joshi, K. C. & Jamaluddin (2007). *Handbook on diseases, insect pests and their control measures in forest nurseries/plantations*. Tropical Forest Research Institute, p(58)

Kulkarni, N., Chandra, K., Wagh, P.N., Joshi, K.C. & Singh, Ram Bhajan (2007). Incidence and management of white grub, *Schizonycha ruficollis* on seedlings of teak (*Tectona grandis* Linn. f.). *Insect Science* (Wiley-Blackwel, China) 14: 411-418.

Kulkarni, N. (2009). *Development of model for the management of white grubs in teak nursery under the concept of Integrated Pest Management*, Final Project Report (Project ID No. 113/TFRI-2007/Ento – 1(FDCM, MS)(16), submitted to Forest Development Corporation of Maharashtra (FDCM), Nagpur, India, 41p.

Kulkarni, N., S. Paunikar, K.C. Joshi & John Rogers (2009). White grubs, *Holotrichia rustica* (Burm.) and *Holotrichia mucida* Gyll. (Coleoptera: Scarabaeidae) as pests of teak (*Tectona grandis* L. f.) seedlings in central India. *Insect Science* (Wiley-Blackwel, China), 16(6): 519-525.

KULKARNI, N. (2010). Bioecology and management of white grub complex in teak forest nursery in India. Pp. 84-91. In *Proceedings of the 7th Meeting of IUFRO Working Party 7.03.04 Diseases and Insects in Forest Nurseries* (Ed. Cram, Michelle), Hilo, Hawaii, USA, July 13to 17, 2009. On-line publication source: http://www.fs.fed.us/r8/foresthealth/publications/nursery/IUFRO_7_03_04_HiloProc.pdf

MATHUR, R.N. (1960) Pests of Teak and their control. *Indian Forest Record* (N.S.), *Entomology,* 10,67 pp, Manager of Publication, Government of India Press, New Delhi.

MESHRAM, P. B., JOSHI, K. C. & SARKAR A.K. (1993) Efficacy of some insecticides against the white grubs, *Holotrichia insularis* Brenske in teak nurseries. *Annals of Forestry*, 1, 196-198.

MITTAL, I. C. (2000) Survey of Scarabaeid (Coleoptera) fauna of Himachal Pradesh (India) *Journal of Entomological Research* 24: 133-141.

OKA, A. G. & VAISHANPAYAN, S.M. (1979) White grub menace in teak nurseries in Maharashtra. *Second All India Symposium on Biology and Ecology*, April, 1979, Bangalore, India.

SINGH, P. (1988) Insect pest problems in forest nurseries, natural and man-made forests and their management. *Tree Protection(*Eds V. K. Gupta and N. K. Sharma), pp304-331. Indian Society of Tree Scientists, Solan, India.

THAKUR, M. L. (1993) Pest management in Forest nurseries in arid and semiarid region. *Nursery technology for Agroforestry* (Eds. S. Puri And P. K. Khosla), pp 329-351. Oxford and IBH Publishing Co. Pvt Ltd, New Delhi, India.

VEERESH, G. K. (1977). Studies on the root grubs in Karnataka with special reference to bionomics and control of *Holotrichia serrata* Fabricius (Coleoptera: Melolonthinae). *Research Bulletin*, University of Agricultural Sciences, Hebbal, Banglore, India, pp. 1-87

नितिन कुलकर्णी, मन्सूर अहमद, संजय दत्तात्रय पौनीकर एवं शशिकिरण बर्वे (2016) -''*वन रोपणियों में श्वेत इल्लियों के एकीकृत नाशिकीट प्रबंधन हेतु मार्गदर्शिका'', तकनीकी बुलेटिन,* उष्णकटिबंधीय वन अनुसंधान संस्थान, जबलपुर, 8p.

संबंधित चित्र

मध्य प्रदेश में व्हाइट ग्रब्स से प्रभावित सागौन वन रोपणी का दृश्य (चित्र-1)

सागौन वन रोपणी से लगे क्षेत्रों में वयस्कों द्वारा पोषक पौधे बेर को पंहुचायी गयी हानि (चित्र-2)

मिट्टी के अन्दर पौध, घास तथा अन्य उपज की जड़ों तथा सब्जियों को हानि पंहुचाने वाले व्हाइट ग्रब्स (चित्र-3)

रात्रि के समय पत्तियों को खाकर भोजन अर्जित करती हुई व्हाइट ग्रब्स के वयस्कों की एक प्रजाति (चित्र-4)

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777
भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 10,81-83
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 07 मार्च 2014

मनुस्मृति की धर्मविषयक अवधारणा

डॉ. स्मिता द्विवेदी*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *मनुस्मृति की धर्मविषयक अवधारणा* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *स्मिता द्विवेदी* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

धर्म शब्द की निष्पत्ति धृ + मन् प्रत्यय लगा कर होती है। धर्म एक ऐसा धारण तत्त्व है जिस पर सम्पूर्ण संसार टिका हुआ है। धर्म मनुष्य को पशुओं से अलग करता है।

''धर्मेण हीन पशुभिः समानः।''

मनुस्मृति में मुनियों ने मनु से सभी वर्णों के धर्मों की शिक्षा देने के लिए प्रार्थना की गई है - ''भगवान सर्ववर्णानां यथा वदनुपूर्वशः। अन्तरप्रभवाणां च धर्मान्नो वक्तुमर्हसि।।''[1]

मनुस्मृति के सुप्रसिद्ध टीकाकार मेधातिथि ने धर्म के पाँच स्वरूप स्वीकार किए हैं- *वर्णधर्म, आश्रम धर्म, वर्णाश्रम धर्म नैमित्तिक धर्म तथा गुण धर्म।*

धर्म का सामान्य लक्षण मनुस्मृति में कुछ इस प्रकार वर्णित है - ''विद्वद्भिः सेवितः सद्भिनिव्यमद्वेषरागिभिःहृदयेनाभ्यनुज्ञातो यो धर्मस्तं निबोधत।''[2]

अपने हृदय से जिसका भली भाँति अनुमोदन किया जाता है और धर्मात्मा और राग द्वेष से रहित विद्वानों द्वारा जिसका सेवन अनुपालन किया जाता है। उसे ही धर्म की संज्ञा प्रदान की जाती है।

मनुस्मृति के चतुर्थ अध्याय में पञ्चमहायज्ञों का विवेचन प्राप्त होता है- ''ऋषियज्ञं देवयज्ञंभूतयज्ञं च सर्वदा। नृयज्ञं पितृयज्ञं च यथाशक्ति न हापयेत्।।''[3]

गृहस्थों के लिए ये पञ्चमहायज्ञ आवश्यक माने गए थे। ''संकल्पमूलः कामो वै यज्ञाः संकल्पसम्भवाः/ व्रतानि यमधर्माश्च सर्वे संकल्पजाः स्मृताः।।''[4]

मनु के अनुसार संकल्प परम आवश्यक है। हमारे मन में जो कामनाएँ होती हैं वे सभी संकल्पपूर्वक होती है। जिस प्रकार भूखा पुरूष खाने की इच्छा लेकर रसवती की ओर जाने में प्रवृत्त होता है। उसी प्रकार समस्त यज्ञ भी संकल्प से ही किए जाते

* पूर्व-अतिथि प्रवक्ता, संस्कृत विभाग, आर्य महिला डिग्री कॉलेज [चेतगंज] वाराणसी (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

हैं। अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए ही हम उन यज्ञों में प्रवृत्त होते हैं। जो मनुष्य शास्त्रोक्त नित्यकर्मों में फलेच्छा को त्याग कर उनका भली भाँति आचरण करता है। उसे स्वर्गलोक की प्राप्ति होती है।

इस संसार में पुत्र, धन, राज्य आदि जो भी संकल्प मन में होते हैं, मनुष्य को वैसा ही भोग प्राप्त होता है, किन्तु ब्रह्मार्पण भाव से कार्य करने पर उसे बन्धन नहीं होते।

यथा - ''तेषु सम्यग्वर्तमानो गच्छव्यमरलोकतवि/ यथा संकल्पिताश्चेह सर्वान्कामान्समश्नुते।।''[5]

श्रीमद्भगवदगीता में भी ऐसे ही भाव देखने को मिलते हैं। ''कर्मण्येवाधिकारस्ते माफलेषुकदाचन/ मा कर्मफलहेतुर्भूमातेसङ्गो-स्त्वकर्मणि।।''[6]

ब्रह्मा ने मनु को वेद का ज्ञान प्रदान किया था। अतः मनु को सर्वज्ञानमय कहा गया है। मनुस्मृति वेद का विकार होने से वेद की भाँति सम्पूर्ण ज्ञानों से युक्त है। अतः वेद ही धर्म का मूल है, जैसा कि मनुस्मृति में कहा गया है - ''वेदोऽखिलो धर्ममूलं स्मृतिशीले च तद्विदाम। आचारश्चैवसाधूनां आत्मनस्तुष्टिरेवच।।''[7]

सम्पूर्ण वेद इनकी समस्त शाखाएँ वेदों को जानने वालों का, स्मृति और शील सज्जनों का आचरण और अपनी आत्मा की तुष्टि ये सभी धर्म के प्रमाण हैं।

मनुस्मृति में वेद के लिए श्रुति शब्द का भी प्रयोग मिलता है। प्राचीन काल में लिखने का साधन न होने के कारण शिष्य लोग आचार्यों की वाणी को सुनकर कण्ठस्थ कर लेते थे। अतः वेद के लिए श्रुति शब्द व्यवहृत था।

अतः धर्म के विषय में श्रुति को प्रमाण माना गया है।

''श्रुतिप्रमाण्यतो विद्वानस्वधर्मे निविशेत वै।।''[8]

धर्म का पालन करने वाला मनुष्य इस संसार में यश को प्राप्त करता है और मृत्यु के पश्चात् उत्तम सुख स्वर्ग को प्राप्त करता है। ''श्रुतिस्मृत्युदितं धर्ममनुतिष्ठन्ति मानवः/ इह कीर्तिमवाप्नोति प्रेप्य चातुत्तमं सुखम्।।''[9]

मनुस्मृति के द्वितीय अध्याय में धर्म के चार लक्षण माने गए हैं। वेद, स्मृति, सदाचार और जो कार्य स्वयं को अच्छा लगता हो अपनी आत्मा को सन्तुष्टि प्रदान करता हो ये चारों धर्म के साक्षात्, लक्षण कहे गए हैं, यथा - 'वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः/ एतंच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम्।''[10]

मनुस्मृति में धार्मिक स्थलो का भी वर्णन प्राप्त होता है - ''कृष्णसारस्तु चरति मृगो यत्र स्वभावतः/ स ज्ञेयो यज्ञियो देशो म्लेच्छदेशस्त्वतः पराः।।''[11]

कृष्णसार मृग जहाँ स्वाभाविक रूप से चरता हुआ दिखाई पड़े उसे ही धर्म के योग्य स्थल माना जाता है। वहीं यज्ञादि कर्म किए जाते हैं और जहाँ कृष्णसार मृग नहीं पाए जाते उन्हें म्लेच्छ स्थान मानकर यागादि में प्रयोग नहीं किया जाता।

मनुस्मृति में सदाचार को भी परिभाषित किया गया है -

सरस्वती और दृषद्वती इन दो नदियों के बीच स्थित स्थान को ब्रह्मवर्त कहते हैं - ''तस्मिन्देशे य आचारः पारम्पर्यक्रमागतः/ वर्णानां सान्तरालानां स सदाचार उच्यते।।''[12]

उस ब्रह्मावर्त देश में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य शूद्र इन चार वर्णों एवं जातियों का जो परम्परा से प्राप्त आचार है उसे ही सदाचार कहते हैं।

ब्रह्मावर्त के बाद ब्रह्मर्षि देश को धार्मिक स्थल माना गया है। कुरूक्षेत्र, मत्स्य, पाञ्चाल और शूरसेन देश (मथुरा) को ब्रह्मर्षि देश माना गया है।

इन देशों में उत्पन्न ब्राह्मणों को श्रेष्ठ माना गया है। सभी लोगों को इन्हीं के समक्ष जाकर धर्म की शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। मनु के अनुसार हिमालय और विन्ध्य पर्वत के मध्य स्थित कुरूक्षेत्र से पूर्व और प्रयाग से पश्चिम स्थित प्रदेश को मध्य-प्रदेश कहा गया है।

पूर्व दिशा में महासागर से पश्चिमी समुद्र तक उन दोनों पर्वतों के मध्य भाग को विद्वान लोक आयावर्त कहते हैं। मनु कहते हैं कि ब्राह्मणादि वर्णों को ब्रह्मावर्त आदि देशों में प्रयत्नपूर्वक निवास करना चाहिए परन्तु शूद्र अपनी जीविका के लिए किसी भी क्षेत्र में निवास कर सकते हैं।

मनुस्मृति में वर्णधर्म का भी नाम आता है। वर्ण धर्म का स्मृतिकारों के द्वारा अत्यन्त विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया गया है। इसके 5 भेद माने गए हैं - 1. वर्णधर्म, 2. आश्रम धर्म, 3. वर्णाश्रम धर्म, 4. नैमित्तिक धर्म, 5. गुण धर्म।

इस प्रकार मनु ने धर्म का संक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत कर मनुष्य के कर्त्तव्यों का विस्तृत विवेचन किया। इन नित्य और नैमित्तिक धार्मिक कर्मों को करता हुआ मनुष्य इस लोक में प्रतिष्ठा और मृत्यु पश्चात् उर्ध्व लोकों को प्राप्त कर सुखी होता है।

स्रोत

[1]*मनुस्मृति* 1/2
[2]*मनुस्मृति* 2/1
[3]*मनुस्मृति* - 4/21
[4]*मनुस्मृति* 2/3
[5]*मनुस्मृति* 2/5
[6]गीता/द्वितीय अध्याय
[7]*मनुस्मृति* 2/6
[8]*मनुस्मृति* 2/8
[9]*मनुस्मृति* 2/29
[10]*मनुस्मृति* 2/12
[11]*मनुस्मृति* 2/23
[12]*मनुस्मृति* 2/18

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777
भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 10,84-87
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 14 दिसम्बर 2016

ऋग्वेद में राज्य शासन का स्वरुप

श्रवण कुमार तिवारी*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *ऋग्वेद में राज्य शासन का स्वरुप* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र का लेखक मैं *श्रवण कुमार तिवारी* घोषणा करता हूँ कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देता हूँ।

वेद विश्व का अमूल्य निधि तथा भारतीय संस्कृति का मूल स्रोत है। वेदों में दर्शन धर्म, ज्ञान-विज्ञान कला कौशल तथा लोक-आचरण प्राणी जीवन में उपयोगी सभी प्रकार के अद्भूत उपदेशों का वर्णन प्राप्त होता है।

संसार में मुख्य रूप से दो प्रकार की धाराएँ दृष्टिगोचर होती हैं। प्रथम धर्म एवं मोक्ष पर अवलम्बित निवृत्तमार्गी धारा। द्वितीय अर्थ और काम पर अवलम्बित प्रवृत्तिमार्गी धारा। किन्तु एकमात्र वैदिक संस्कृति ही इस प्रकार की है जो पुरुषार्थचतुष्ट्य के मंजुल समन्वय पर आधारित है।

आर्य-संस्कृति में ईश्वरीय संविधान तुल्य समादृत वेदपरम्परा ने कभी भी भौतिक मार्ग की उपेक्षा नहीं की हैं, वेदों का स्पष्ट विधान है, कि भौतिक संसार में संलग्न जहाँ अन्धकार में प्रवेश करता है, वही मात्र आध्यात्मिक संसार में रत व्यक्ति घनघोर अन्धकार में प्रविष्ट होता है। अस्तु वही मार्ग अवलम्बन करने योग्य है जो पुरुषार्थचतुष्ट्य के समन्वय पर आधारित है।

अन्धं तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते/ तयो भूय इव ते तमो य उ विद्यायां रताः।

वेदों का अनुसरण करने वाली स्मृतियाँ भी प्रकारान्तर से इस पद्धति को अनुमोदित करती है- *धर्मार्थकामाः सममेव सेव्या यो ह्येकसक्तः स नरो जघन्यः/ द्वयोस्तु दाक्ष्यं प्रवदन्ति मध्यं स उत्तमो योभिरतस्त्रिवर्गैः।*[2]

धर्म प्रधान वैदिक संस्कृति में बिना धर्म का अर्थ, बिना अर्थ का काम, सफल नहीं होता है तथा वही मोक्ष साधक होता है।

सनातन मार्ग के अनुसार वेद प्रतिष्ठित मन्त्र द्वारा प्रतिपादित प्रेरणा ही धर्म के रूप में स्वीकार की जाती है-

चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः।[3]

वेद के द्वारा विधिरूप से विहित कर्म ही धर्म है, वेद ने जिन कर्मों को निषिद्ध किया है, वही अधर्म है- *वेदप्रणिहितो धर्मो ह्यधर्मस्तद्विपर्ययः/ वेदो नारायणः साक्षात् स्वयम्भूरिति शुश्रूमः।।*[4]

* शोध छात्र, संस्कृत विभाग [कला संकाय] काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

इसी क्रम में मानव जाति के आदिपुरुष भगवान् मनु ने भी कहा है- *वेदोऽखिलो धर्ममूलम्।*[5]

धर्म वह तत्त्व है जो हमारी संस्कृति में विविध रुपों में उपस्थित होता है। वर्णधर्म, आश्रमधर्म, स्त्रीधर्म, गुरुशिष्य धर्म, पितृधर्म, राजधर्म इत्यादि।

इस क्रम में राजधर्म वह व्यवस्था है, जिसके आदेशों से समस्त प्रकार के धर्म सुचारु रूप से अनुशासित होते हैं। राजधर्म के अस्थिर होने पर समाज सभी प्रकार के धर्मो-नियमों से च्युत हो जाता है। अतः राजधर्म का प्रतिष्ठित होना आवश्यक है। कहा भी गया है कि समस्त लोग राजधर्म में प्रविष्ट है- *सर्वे लोका राजधर्मे प्रविष्टा।*[6]

यही राजधर्म प्रकारान्तर से राजशास्त्र, राजपद्धति, दण्डनीति, नीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र इत्यादि विभिन्न संज्ञाओं से अभिहित किया जाता है- *चतुर्वर्णाश्रमों लोको राजा दण्डेन पालितः। स्वधर्मकर्माभिरतो वर्तते स्वेशु वेश्मशु।।*[7]

इस कथनानुसार समाज व्यवस्था का नियंत्रण करने वाले शास्त्र को दण्डशास्त्र कहा जाता है। राजधर्म की प्रशस्ति विभिन्न प्राचीन धर्मशास्त्रों एवं साहित्यिक ग्रन्थों में प्राप्त होता है। इस विषय में भगवान् मनु का यह ध्यातव्य है- *दण्डः शास्ति प्रजा सर्वा दण्ड एवाभिरक्षति/ दण्डः सुप्तेशु जागर्ति दण्डं धर्म विदुर्बुधाः।*[8]

राजधर्म का व्यवस्थित एवं क्रमिक वर्णन स्मृतिशास्त्रों, नीतिग्रन्थों, कौटिल्य अर्थशास्त्र इत्यादि में प्राप्त होता है। राजधर्म के उद्भव एवं विकास के इतिहास पर दृष्टिपात करने से अवबोध होता है कि इसका उद्भव सर्वज्ञानमय वेदराशि से हुआ है। वेदचतुष्टय में राजधर्म का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है, अर्थववेद संहिता इस दृष्टि से विशेष समृद्ध है। किन्तु राजधर्म का सूत्रपात विश्व के सर्वप्राचीन ग्रन्थ के रूप में समादृत ऋग्वेद-संहिता से माना जाता है-

इस तथ्य ये यह प्रमाणित होता है कि राजशासन पद्धति को पश्चिम आयातित विचारधारा कहने वाली मान्यता निराधार हैं। अवलोकन करने पर यह बात स्पष्ट हो जाती है, कि इसमें राजधर्म, स्वराज्य, लोक कल्याण, सभा, समिति, राजा के कर्त्तव्य, युद्ध, सन्धि, संगठन सेना इत्यादि विभिन्न शासन सम्बन्धित विशय प्राप्त होते हैं।

ऋग्वेद की निम्न ऋचा में राजधर्म का स्पष्ट उल्लेख प्राप्त होता है- *त्वं राजेन्द्र ये च देवा रक्षा नृन्पाह्यसुर त्वमस्मान्। त्वं सत्पतिर्मघवा नस्तरुत्रस्त्वं सत्यो वसवानः सहोदाः।*[9] एवं *दनो विश इन्द्र मृध्रवाचः सप्त यत्पुरः शर्म शारदीर्दर्त्। ऋणोरपो अन-वद्यार्णा यूने वृत्रं पुरुकृत्साय रन्धीः।*[10]

इतिहास प्रसिद्ध दाशराज्ञ युद्ध एवं इन्द्रवृत्त युद्ध इत्यादि प्रसिद्ध घटनाओं का उल्लेख ऋग्वेदसंहिता में प्राप्त होता है।

राजधर्म से सम्बन्धित विभिन्न विषय यथा राजा विदथ (1-130) शत्रुनाशन (4-4), राजा प्रजा (7-74), दानस्तुति (8-93), नारिगौरव (10-86), सेना युद्ध (10-103), इत्यादि विषय ऋग्वेद की विभिन्न ऋचाओं में प्राप्त होते हैं।

राजधर्म से राजा सम्बन्धित विषय ऋग्वेदसंहिता में वृहद् रूपों में प्राप्त होता है राजा के कर्त्तव्य को बताते हुए कहा गया है कि राजा निरन्तर सत्य का आचरण करते हुए राष्ट्र का उन्नति करें, तथा सत्य मार्ग को प्रशस्त करते हुए प्रजा के प्रति सत्य का उपदेश देता है वह राज्य या राष्ट्र स्वतः उन्नति को प्राप्त होता है- *निर्माया उत्ये असुरा अभूवन्त्वं च मा वरुण कामयासे। ऋतेन राजन्ननृतं विविञ्चन्मम राष्ट्रस्याधिपत्यमेहि।।*[11]

इस मन्त्र में कहा गया है कि राजा को धैर्यवान होना चाहिए तथा बड़ा से बड़ा कार्य को भय से मुक्त होकर निष्पादन करना चाहिये। जिस राष्ट्र का राजा धैर्यवान हो वहाँ के प्रजा भी उत्तम धैर्य को धारण करते तथा वह किसी भी युद्ध में पराजित नहीं होते हैं- *उप क्षत्रं पृञ्चीत हन्ति राजभिर्भये चित्सुक्षितिं दधे/ नास्य वर्ता न तरुता महाधने नार्भे अस्ति वज्रिणः।*[12]

इस संहिता में राजा के अनेक गुणों का वर्णन करते हुए कहा गया है, कि राजा प्रजाओं का पालन करने वाला, तथा धर्म का आचरण करने वाला राजा दीर्घकाल तक राज्यशासन करता है- *इमां च नः पृथिवीं विश्वधाया उपक्षेति हित मित्रों न राजा।*[13]

इस मन्त्र में कहा गया है, कि राजा के द्वारा किसी राज्य का व्यवस्थित रूपों में संचालन करने के लिए तथा प्रजा का पालन-पोषण करने के लिए धन अमूल्य तत्त्व है। जिसको प्राप्त करने के लिए राजा को चाहिए कि प्रजा के अनुकूल कर वसूल कर के प्रजा का संरक्षण करें- *यो देह्यो3 अनमयद्धधस्नैर्यो अयंपत्नीरुषश्चकार। स निरुध्या नहुषा यह्वो अग्निर्विशच्चक्रे वलिहृतः सहोभिः।।*[14]

राजा के महत्त्वपूर्ण गुण को बताते हुए कहा गया है, कि राजा को विद्वानों की रक्षा के लिए तत्पर रहना चाहिए। तथा दानवीर होना चाहिए, उसके पास धनो से पूर्ण कोष होना चाहिए जिसमे से वह दान कर सके उसके राज्य में गया हुआ याचक व भिखारी खाली वापस न जाए अपितु दान लेकर सन्तुष्ट होकर जाए- *तस्य वज्रः क्रदन्ति स्मत्स्वर्षा दिवो न त्वेशो रवथः शिमीवान्। तं सचन्ते सनयस्तं धनानि मरुत्वान्नों भवत्विन्द्र ऊति।।*[15]

इस मन्त्र में प्रतिपादित किया गया है, कि राजा सत्य का आचरण करते हुए, असत्य का आचरण करने वाले एवं द्यूतक्रीण्डा खेलने वाले तथा अधर्म पर चलने वाले दुष्टजनों से धनों को छिनकर धर्मावलम्बित प्रजाजनों में बाँट देना चाहिये- *मा ते राधांसि मा त ऊतयो वसोऽस्मान्कदा चना दभन्। विश्वा च न उपमिमीहि मानुष वसूनि चर्शणिभ्य आ।।*[16]

यदि राजा विद्वानों का उपदेशात्मक वाक्यों को ग्रहण करके धर्म से युक्त नियमों के द्वारा राजशासन करें तथा सत्यनिष्ठ ज्ञानों द्वारा प्रजा को किसी कार्य में प्रेरित करें तो प्रजा उसके शक्ति की पुजा करता हैं- *ता अस्य नमसा सहः सपर्यन्ति प्रचेतसः। व्रतान्यस्य सञ्चिरुपुरुषि पूर्वचित्तये वस्वीरनु स्वराज्यम्।।*[17]

इस वेद में राजा के कर्त्तव्य को सम्यक प्रकार से विश्लेषण किया गया है। राजा का प्रथम कर्त्तव्य यह है कि वह अपनी प्रजा की सुरक्षा का प्रबन्ध करें, राजा को चाहिये कि राज्य के धनी व विद्वान अध्यापक और धर्म का उपदेश देने वाले विद्वानों को केवल रक्षा नहीं अपितु धन एवं अपने व्यवहार से सन्तुष्ट करें - *स शेवृधमधि धा धुम्वनमस्मे महि क्षत्रं जनाशडिन्द्र तव्यम्। रक्षा च नो मघोनः पाहि सूरीन्राये च नः स्वपत्या इशे धाः।।*[18]

राजा कैसा हो इसका वर्णन किया गया है, कि वह श्रेष्ठ आचरण करने वाला हो तथा सभी ज्ञानों में पूर्ण रूप से निष्णात हो, स्वच्छ एवं उत्तम गुणों से युक्त हो माता-पिता तथा प्रजा का पालन करने में दक्षता को प्राप्त हो तथा राज्य का विस्तार करने में पूर्ण सहयोगी हो।

विशां राजानमध्दुमध्यक्षं धर्मणामिमम् अग्निमीळे स उ श्रवत्।।[19]

राजा के विषय में बताते हुए कहा गया है कि सर्वोत्तम राजा वह है जो दीर्घकाल तक ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए, उसी के अनुकूल दण्ड और न्याय के द्वारा राज्य का संचालन करें। इस प्रकार के नियमों का पालन करने वाला राजा यश को प्राप्त करते हुए मृत्यु के बाद देवलोक को प्राप्त करता है- *नू चित्स श्रेषते जनो न रेशन्मनो यो अस्य धोरमाविवासात्। यज्ञैर्य इन्द्रे दधते दुवांसि क्षयत्स राय ऋतपा ऋतेजाः।।*[20]

अतः इस वेद में राजधर्म से सम्बन्धित अनेक विषयों का बृहद् वर्णन प्राप्त होता है जैसे राजा का कर्तव्य, राज्य शासन पद्धति, सेना, युद्ध, राज्य संचालन, राजा का निर्वाचन, प्रजा का कर्तव्य, तथा राज्य से सम्बन्धित अनेक विषयों का सम्यक प्रकार से विवेचन किया गया है। अतः ऋग्वेदसंहिता में राजधर्म से सम्बन्धित अनेक विषय उपलब्ध होता है। राज्य शासन के दृष्टि से ऋग्वेद का अध्ययन करने पर यह ज्ञात होता है कि शासन चलाने के लिए दण्ड व्यवस्था का होना आवश्यक है क्योंकि दण्ड के द्वारा सम्यक रूप से शासन किया जा सकता है कि क्योंकि दण्ड की व्यवस्था दुर्जन जनों के लिए होना आवश्यक है। अपितु जिस राज्य में दण्ड शासन न हो उस राज्य में उसका प्रतिफल यह होता है कि दुर्जनों के द्वारा सज्जन जनों को प्रताड़ित किया जाता है तथा बलयुक्त जनों के द्वारा दुर्बल जनों को सताया जाता है। अतः इस प्रकार दुर्व्यवहार न हो इस कारण से राज शासन पद्धति में दण्ड शासन को रखना आवश्यक है। इस संहिता में दण्ड शासन में कहा गया है कि जो व्यक्ति अपने राज्य का अथवा अपने राजा का निन्दा करे तथा वह पाप कर्म में संलिप्त हो उसको उचित दण्ड दिया जाये अथवा उस निन्दक को मृत्यु दण्ड दिया जाय- *वधैर्दुः शंसाँ आ प दूढ्यो जहि दूरे वा ये अन्ति वा के चिदत्रिण। अथा यज्ञाय गृणते सुगं कृध्यग्ने सख्ये मा रिशामा वयं तव।।*[21]

इस प्रकार से राज्य शासन सम्बन्धित अनेक विषय प्राप्त होते हैं।

ऋग्वेद का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि राज्य को सम्यक् प्रकार से चलाने के दण्ड व्यवस्था का होना आवश्यक है क्योंकि दण्ड के द्वारा दुर्जनों को बदला जा सके। जिस राज्य में दण्ड शासन न हो तो उस राज्य में दुर्जनों के द्वारा सज्जन जनों को प्रताड़ित किया जाता है तथा बलयुक्त जनो के द्वारा दुर्बल जनों को सताया जाता है अतः इस प्रकार का दुर्व्यवहार न हो इस कारण से राज्य शासन पद्धति में दण्डशासन को रखना आवश्यक है।

इस संहिता में दण्डशासन में कहा गया है कि जो व्यक्ति अपने राज्य का अथवा राजा का निन्दा करें तथा वह पाप कर्म में संल्पित हो उसको उचित दण्ड दिया जाए अथवा उस निन्दक को मृत्यु दण्ड दिया जाए।

राजा का कर्त्तव्य है कि उसके राज्य में रहने वाला व्यक्ति यदि असत्य का आचरण करते हुए मदिरा व मांस का सेवन करते हुए गौ का हत्या करवाता हो तो उसको तत्काल मृत्यु दण्ड दे क्योंकि कोई अपर व्यक्ति यह कार्य पुनः न करे- *यः पौरुषेयेण क्रनिषा समङ्क्ते यो अश्वयेन पशुना यातुधानः। यो अध्न्याया भरति क्षीरमग्ने तेशां शीर्षाणि हरसापि वृश्च।।*[22]

राजा को अपने राज्य का सर्वेक्षण निरन्तर करते रहना चाहिए यदि राज्य में किसी भी प्रकार का अभ्रदता हो तो उसका सम्यक प्रकार से निदान करना चाहिए यदि राज्य में किसी दुराचारी के द्वारा पशुओं को चुराना अथवा किसी पथिक को पथ में रोक कर धनो को छिना जाना तथा अमुल्य वस्तुओं को चुराता हो तो उसको उचित दण्ड राजा को देना चाहिए; क्योंकि कहा गया है कि जिस प्रकार सूर्य के उदय होने पर चन्द्रमा व नक्षत्र अभिभूत हो जाते हैं वैसे ही राजा को देखकर चोर व दुराचारी व्यक्ति अभिभूत हो जाते हैं- *अपत्ये तायवो यथा नक्षत्रयन्त्यक्तुभिः। सूराय विश्वचक्षे।*[23]

राजा के राज्य में निवास करने वाला व्यक्ति स्वाभिमान को भूलकर अथवा अपने बल के घमण्ड में किसी प्रकार का अभद्र व्यवहार करे तथा अपशब्दों का प्रयोग करे, सज्जनों के साथ एवं दुर्बलों को कष्ट दे तो राजा का यह कर्त्तव्य बनता है कि उसको मृत्यु दण्ड के सदृश उचित दण्ड दे। इस प्रकार ऋग्वेद में राज्य शासन सम्बन्धित अनेक विषय प्राप्त होते हैं।

स्रोत

[1]*ईष,* 9
[2]*महाभारत,* शान्तिपर्व -164/40
[3]*जैमिनीसूत्र,* 1-2
[4]*श्रीमद्भागवतपुराण,* 6/1/40
[5]*मनुस्मृति,* 2/6
[6]*महाभारत,* शान्तिपर्व -62/29
[7]*अर्थशास्त्र,* 7/1/3/6
[8]*मनुस्मृति,* 7/18
[9]*ऋग्वेद,* 1/174/1
[10]*ऋग्वेद,* 1/174/2
[11]*ऋग्वेद,* 10/124/5
[12]*ऋग्वेद,* 1/40/8
[13]*ऋग्वेद,* 4/55/21
[14]*ऋग्वेद,* 7/6/5
[15]*ऋग्वेद,* 1/100/13
[16]*ऋग्वेद,* 1/84/20
[17]*ऋग्वेद,* 1/84/12
[18]*ऋग्वेद,* 1/54/11
[19]*ऋग्वेद,* 8/43/24
[20]*ऋग्वेद,* 07/20/06
[21]*ऋग्वेद,* 01/94/09
[22]*ऋग्वेद,* 10/87/16
[23]*ऋग्वेद,* 1/50/2

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777
भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 10,88-91
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 15 नवम्बर 2016

डॉ. भीमराव अम्बेडकर एक संघर्ष : शिक्षा व समाज तथा अधिकारों के लिए

पाल सिंह*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *डॉ. भीमराव अम्बेडकर एक संघर्ष : शिक्षा व समाज तथा अधिकारों के लिए* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र का लेखक मैं *पाल सिंह* घोषणा करता हूँ कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देता हूँ।

भूमिका

प्राचीन काल से भारत ऋषि मुनियों, पीर-पैगम्बरों, साधु-संतो व समाज-सुधारकों की कर्म-भूमि रहा है। जब-जब भी इस देश में बुराईयां पैदा हुई है या गैर-बराबरी का वातावरण पैदा हुआ है तब-तब भारत की धरती पर अनेकों संत-महात्मा, समाज सुधारकों ने जन्म लिया हैं। उनमें संत रविदास, गुरूनानक देव, संत कबीर, ज्योतिबा फुले, गुरू नारायण, छत्रपति शाहुजी महाराज, संत पेरियार, सावित्री बाई, झलकारी बाई, सम्बुख ऋषि, ऐसे महान युग पुरूष हुए हैं जिन्होंने दलित समाज के साथ -सर्व समाज को जगाने का काम किया व अपने विचारों से मानसिक क्रान्ति की अमिट छाप छोड़ी हैं और पूरा विश्व उनके विचारों का कायल है। इन सब में एक नाम ऐसे व्यक्ति का हैं जो दलित होते हुए भी जन्म से लेकर मृत्यु तक समाज में मौजूद गैर-बराबरी, ऊँच-नीच, छूआ-छूत जैसी बुराईयों से लड़ा और इन सब बुराईयों को जड़ से समाप्त करने के लिए देश को तीन संदेश दिए हैं - 1. शिक्षित बनो, 2. सगठित रहों, 3. संघर्ष करो।

- उस महान आत्मा का नाम है भारत रतन डॉ0 भीमराव राम जी अम्बेडकर।

जीवन-परिचय

बाबा साहेब भीमराव अम्बेडकर जी का जन्म 14 अप्रैल 1891 को महु छावनी मध्य प्रदेश में हुआ। उनके बचपन का नाम संकपाल था। इनके पिता का नाम रामजी राव तथा माता का नाम भीमा बाई था।[1] उनका बचपन बहुत कष्टों में व दुःख दाई

* असिस्टेंट प्रोफेसर, डिपार्टमेंट ऑफ सोशल साइन्स, क्रीसेंट कॉलेज ऑफ एजुकेशन [भोडिया खेरा] फतेहाबाद (हरियाणा) भारत। (सदस्य सम्पादक मण्डल) E-mail : palmphil123@gmail.com

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

बीता। 15 वर्ष की आयु में उनकी शादी रमाबाई से सन् 1906 में हुई। सन् 1907 में दसवीं पास की। डॉ0 बी0आर0 को 1907 में दसवीं पास करने वाले महु जिला के प्रथम नागरिक होने का गौरव प्राप्त हुआ। इसके बाद शिक्षा जगत में इतिहास रचते चले गए और कठनाईयां में भी दृढ़ संकल्प के साथ उन्होंने कभी पीछे मुड़कर नहीं देखा। उन्होंने बी0ए0, एम0ए0, पी-एच0डी0, डी0एस0सी0, एल0एल0बी0, बार एट लॉ, डी0लिट0 की उपाधियाँ प्राप्त की।[2] डॉ0 बी0आर0 अम्बेडकर के बारे में हम कह सकते हैं- ''हिमालय की बुलंदी भी तेरा सानी नहीं रखती,/ तेरे आगे सितारों की चमक मानी नहीं रखती,''

गांधी एक कट्टर हिन्दू थे। उनका कहना था कि वर्णाश्रम हिन्दू धर्म का अभिन्न अंग हैं। इसलिए जातिवाद के हम बिना हिन्दू धर्म की कल्पना भी नहीं कर सकते। बाबा साहेब ने दोहरा संघर्ष किया एक अंग्रेजों के साथ दूसरा सवर्ण एवं उच्च वर्ग के साथ।[8]

शैक्षिक/ आर्थिक योगदान

बाबा साहेब ने स्वयं बचपन से लेकर विद्यार्थी व शोधार्थी जीवन में बहुत आर्थिक तंगी सहन की। लेकिन बाबा साहेब दलित वर्ग की ऐसी दशा नहीं देखना चाहते थे इसलिए उन्होंने भारतीय संविधान में मुख्य रूप से छात्रवृति योजनाओं को मुख्य धारा से जोड़ा। ताकि कोई दलित आर्थिक तंगी से स्कूल व कॉलेज न छोड़े, और स्कूल कॉलेज तथा विश्वविद्यालयों में एस0सी0, एस0टी0 तथा बी0सी0 वर्ग के लिए आरक्षण नीति बनाकर निर्धारित कोटा तैयार कर दलित पिछड़ा वर्ग के लिए सीटे निर्धारित करवाई। ताकि दलित वर्ग के साथ किसी तरह का कोई भेद-भाव न हो सके तथा विभिन्न नौकरियों में दलित वर्ग का कोटा निर्धारित करवाया। ताकि कोई दलित नौकरी से वंचित न रह सके।

इसके तहत एस0सी0 वर्ग को साढे 22 प्रतिशत और बी0सी0 को 27 प्रतिशत किया। ''लेकिन दुर्भाग्यवश आरक्षण का लाभ दलित वर्ग पूर्ण रूप से आज तक नहीं ले पा रहा है। आरक्षण मात्र कुछ लोगों के हाथ कि कठपुतली बनकर रह गया है।''[9]

राजनैतिक योगदान

बाबा साहेब एक जोशीले सुझवान व धौर्यवान व्यक्ति थे। उनका कहना था कि जब तक तुम अपने अधिकारों के प्रति आवाज नहीं उठाते तब तक तुम्हारे अधिकारों का हनन होता रहेगा।

अतः ''जुल्म करने वाल से, जुल्म सहने वाला अधिक गुनहगार हैं।''[10]

8 अक्तूबर 1931 को अल्पसंख्यक कमेटी की स्थापना हुई। जिसमें बाबा साहेब उस कमेटी के सदस्य नियुक्त हुए।[11] 1936 में उन्होंने एक नये दल का गठन किया, जिसका नाम था ''स्वतंत्र मजदूर दल'' इस दल ने चुनाव में 17 प्रत्याशी खड़े किए थे। 17 फरवरी को निर्वाचन सम्पन्न हुए थे। 17 स्थानों में से 15 स्थानों पर इस दल के उम्मीदवारों को जीत प्राप्त हुई।[12] यह सब बाबा साहेब की प्रेरणा व संघर्ष का परिणाम था।

- 29 जुलाई 1947 को आजाद भारत के प्रथम मंत्रिमंडल में विधि मंत्री कानून मंत्री का पदभार संभाला।[13]
- नवम्बर 1948 में संविधान प्रारूप समिति के अध्यक्ष के रूप में असैम्बली में मसौदा पेश किया।[14]
- सितम्बर 1951 में ही प0 नेहरू के आश्वासन पर हिन्दू कोड बिल संसद में प्रस्तुत करना और सरकार के समर्थन से पीछे हटने तथा अन्य कई कारणों से नेहरू मंत्रिमंडल से त्यागपत्र देना।[15]

''हम तेरे इंकलाब से चलते है, सीना तान कर,/ नाज़ हो जाता है, वंशज तेरा कहला कर।''[3]

सामाजिक योगदान

बाबा साहेब डॉ0 अम्बेडकर जी ने अपने जन्म से लेकर अंतिम सांस तक बहुजन दलित व पिछड़ा समाज के साथ-साथ सर्व समाज की भलाई के लिए अपना महत्वपूर्ण योगदान किया। बाबा साहेब ने दलित व कमजोर वर्ग जो एक पशु से भी गंदी दुखदायी व गुलामी भरी जिन्दगी जीने को मजबूर थे के लिए संघर्ष किया। उस समय ये लोग गुलामों के गुलाम अर्थात दोहरे गुलाम थे। डॉ0 अम्बेडकर जी ने उनका दर्द समझा और अंग्रेजों और स्वर्ण वर्ग के सामने उस स्थिति को सुनाया कि हमारा जीवन बहुत खराब है भारत देश में छूआछूत का बोलबाला है। जातिवाद का सांप गरीब और कमजोर वर्ग को निगल रहा है। कृपा हमारे जीवन को एक बार स्वयं चलकर देखे।[4]

अंग्रेजों ने बाबा साहेब की बात मानकर 1928 में एक कमेटी बनाई। जिसका नाम साईमन कमेटी था। जिसने भारत का दौरा किया। जिसमें अम्बेडकर जी भी साथ थे। लेकिन गांधी एण्ड पार्टी ने दलितों को भड़का कर, साईमन कमेटी का विरोध करने के लिए मजबूर किया और सारे देश में साईमन कमेटी का विरोध होने लगा। *वापिस जाओ के नारे* लगाए गए और अंग्रेज वापिस चले गए।[5] बाबा साहेब ने कभी हार नहीं मानी और अपने दौंगुने उत्साह से इस दिशा ओर कार्य करने लगे। बाबा साहेब ने दलितों को समझाया और 1929 में दोबारा साईमन नामक कमेटी को भारत बुलाया। अब ब्राहमणवादी, मनुवादी लोगों ने अपनी पोल खुलती देख, लाला लाजपत राय आदि ने इसका विरोध किया और अंग्रेजों से लाठियां खाई और सवर्ण वर्ग की शहादत का ढिंढोरा पीटा। दलितों का सामाजिक उत्थान करने में डॉ0 बी0आर0 अम्बेडकर उन्हें मन्दिर प्रवेश का अधिकार दिलाना चाहते थे।[6]

लेकिन गांधी पक्ष में नहीं थे और न ही अन्तर्जातीय भोज के पक्ष में थे। उनका कहना था कि यदि ''सवर्ण वर्ग'' प्राचीन मन्दिरों में अछूतों को प्रवेश नहीं करने देना चाहते तो तुम उनके लिए नए मन्दिरों का निर्माण करवा दो।

इसलिए बाबा साहेब ने कहा कि मैं जाति विहीन समाज का पक्षधर हूँ और ऐसा करने पर जातिवाद और बढ़ेगा न की घटेगा।[7]

दिसम्बर 1956 को 26 अलीपुर रोड़ दिल्ली आवास पर बाबा साहेब डॉ0 बी0आर0 अम्बेडकर जी का निधन हुआ।[16]

सुझाव

1. बाबा साहेब के अधूरे सपने को सही दिशा और दशा देने की आवश्यकता है।
2. बाबा साहेब ने कहा था कि मेरा जीवन ही मेरा संदेश है अतः बाबा साहेब के जीवन और उनके कार्यो को आम जन तक विभिन्न माध्यमों से पहुँचाने की आवश्यकता हैं।
3. आज के नेता चाहे वे दलित हो या अन्य सभी को भारतीय संविधान और बाबा साहेब के सिद्धान्तों को अपनाने की आवश्यकता है।
4. दलित पिछड़ों को पढ़ लिखकर अपने अधिकारों और अपने कर्तव्यों को जानकर उनका पालन करना चाहिए।
5. भारत में नहीं विदेशों में भी बाबा साहेब के नाम पर अनेकों संगठनों चल रहे हैं पर आज वो भी राजनीति के शिकार हो गए हैं। अतः उन्हें बाबा साहेब के बताए मार्ग पर चलना चाहिए।
6. बाबा साहेब के मिशन को पढ़े-लिखे लोगों को ही मिट्टी में मिलाया है। इसलिए युवा पीढ़ी को आगे आकर बाबा साहेब के विचारों को आगे जन-जन तक पहुँचाना होगा।
7. प्रत्येक भारतवासी को कमजोरों के हित में कार्य करने चाहिए। ताकि वे भी गैर-बराबरी से निकलकर समानता का अधिकार पा सके।
8. बाबा साहेब का सपना था कि सत्ता वह चाबी है जिससे हर ताला खुलता है। अतः गरीब और दलित को अधिक से अधिक संख्या में चुनाव लड़ने चाहिए और जीत हांसिल करने चाहिए।

निष्कर्ष

अंत में हम निष्कर्ष के तौर रूप में यह कह सकते हैं कि, ''किस तरह करूँ लफ्ज़ों में तेरे कारनामें को बयान,/ सच तो यह है कि जिन्दगी का हक अदा तुमने किया'' ''तुमने जर्रो को दिया आफताब बनने का सबक,/ जुल्मों की रोशनी से आश्ना (उजाला) तुमने ही किया।''[17]

बाबा साहेब के कार्यों और व्यक्तित्व को भारत ही नहीं पूरी दुनिया के लोगों ने माना है। बाबा साहेब डॉ0 बी0आर0 अम्बेडकर जी ने बचपन से लेकर मृत्यु के दिनों तक संघर्ष में जीवन व्यतीत किया। हिन्दू समाज में व्याप्त वर्ण व्यवस्था जातिवाद, छूआछात की प्रथा ने भारत को अपनी बेड़ियों में जकड़ कर रखा था। बाबा साहेब ने संविधान निर्माण किया और उसे लागू करवाकर भारत को जाति रहित करने का प्रयास किया और स्वतन्त्रता व समानता का अधिकार संविधान में लागू करवाया। ''बाबा साहेब एक कुशल राजनीतिज्ञ, एक समाज सुधारक, एक इतिहासकार, लेखक और एक गम्भीर चिंतक थे।'' बाबा साहेब के अथक प्रयास से ही नारी को शिक्षा बराबरी का दर्जा मिल सका। उस महान योद्धा के कारण ही दलित, गरीब, मजदूर, किसान, महिला बच्चो, विधवाओं को उनके अधिकार प्राप्त हो सके।

''अंत में कहा जा सकता हैं कि बाबा साहेब भारत रतन के साथ-साथ विश्व रतन भी है। आज सम्पूर्ण विश्व ऋणी है।''

सन्दर्भ सूची

[1] *''बहुजन न्यूज साप्ताहिक'',* आगरा, 08-21 अप्रैल 2012, पृष्ठ संख्या 2-4

[2]डी0 सी0 व्यास - *''अम्बेडकर लाईफ एण्ड व्यू'',* साईबर टच पब्लिकेशन; दिल्ली, पृष्ठ संख्या 2

[3] *''योग्यता मेरी जूती'',* गौतम बुक सैन्टर, दिल्ली, पृष्ठ संख्या 48

[4]बसंत मुन एवं प्रशांत पाण्ड़े - *डॉ0 बाबा साहेब अम्बेडकर,* नैशनल बुक ट्रस्ट इण्ड़िया; दिल्ली, पृष्ठ संख्या 46

[5] *''बाबा साहेब डॉ0 बी0आर अम्बेडकर'',* तुलसी साहित्य पब्लिकेशन गांधी मार्ग, मेरठ, पृष्ठ संख्या 07

[6] *''बहुजन न्यूज साप्ताहिक'',* आगरा 08-21 अप्रैल 2012, पृष्ठ संख्या 6

[7] *''बाबा साहेब डॉ0 बी0आर0 अम्बेडकर''',* तुलसी साहित्य पब्लिकेशन, गांधी मार्ग, पृष्ठ संख्या 60

[8] *''बाबा साहेब डॉ0 बी0आर0 अम्बेडकर''',* तुलसी साहित्य पब्लिकेशन, गांधी मार्ग, पृष्ठ संख्या 61

[9] *''योग्यता मेरी जूती'',* गौतम बुक सैन्टर, दिल्ली, पृष्ठ संख्या 25

[10]बसंत मुन एवं प्रशांत पाण्डे - *डॉ0 बाबा साहेब अम्बेडकर,* नैशनल बुक ट्रस्ट इण्ड़िया; दिल्ली, पृष्ठ संख्या 46

[11] *''बाबा साहेब डॉ0 बी0आर0 अम्बेडकर''',* तुलसी साहित्य पब्लिकेशन गांधी मार्ग, मेरठ, पृष्ठ संख्या 07

[12] *''बाबा साहेब डॉ0 बी0आर0 अम्बेडकर'',* तुलसी साहित्य पब्लिकेशन गांधी मार्ग, मेरठ, पृष्ठ संख्या 60

[13] *''बाबा साहेब डॉ0 बी0आर0 अम्बेडकर''',* तुलसी साहित्य पब्लिकेशन गांधी मार्ग, मेरठ, पृष्ठ संख्या 97

[14] *''बाबा साहेब डॉ0 बी0आर0 अम्बेडकर''',* तुलसी साहित्य पब्लिकेशन गांधी मार्ग, मेरठ, पृष्ठ संख्या 99

[15] *''बाबा साहेब डॉ0 बी0आर0 अम्बेडकर''',* तुलसी साहित्य पब्लिकेशन गांधी मार्ग, मेरठ, पृष्ठ संख्या 113

[16] *''बहुजन न्यूज साप्ताहिक''* आगरा 08-21 अप्रैल 2012, पृष्ठ संख्या 4

[17] *''योग्यता मेरी जूती'',* गौतम बुक सैन्टर, दिल्ली, पृष्ठ संख्या 48

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777
भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 10,92-95
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 19 नवम्बर 2016

भारत की आन्तरिक सुरक्षा, विकास एवं अखण्डता के लिये वर्तमान परिप्रेक्ष्य में बुद्ध, गाँधी और अम्बेडकर दर्शन की प्रासंगिकता

डॉ. प्रदीप भिमटे*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *भारत की आन्तरिक सुरक्षा, विकास एवं अखण्डता के लिये वर्तमान परिप्रेक्ष्य में बुद्ध, गाँधी और अम्बेडकर दर्शन की प्रासंगिकता* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र का लेखक मैं *प्रदीप भिमटे* घोषणा करता हूँ कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देता हूँ।

प्रस्तावना

भारत ने समानता, स्वतंत्रता, बन्धुत्व न्याय के संस्थागत, प्रजातंत्रिक मूल्यों को अपने संविधान में लागू किया। भारतीय गणतंत्र के 69 वर्ष पूर्ण हो चुके है किंतु दुःखद बात यह है कि आज भी एक विरोधाभास उत्पन्न करता है।

बजार विनिमय दर के अनुसार 12 वीं पायदान पर तथा क्रय शक्ति के लिहाज से पूरे विश्व में चौथे स्थान पर है इसके बावजूद आज भी भारत में साम्प्रदायिकता, अशिक्षा, कुपोषण, वर्णव्यवस्था, जातिवाद, लिंगभेद, अलगाव, हिंसा, गरीबी, नक्सलवाद, उग्रवाद जैसी समस्याएँ आज उभरकर राष्ट्र के सामने राष्ट्रीय एकता, अखण्डता एवं विकास के लिए चुनौतियॉ उत्पन्न कर रही है। ऐसी स्थिति में आम व्यक्ति जो अपने वातावरण के प्रति थोड़ा भी जागरूक है, के दिमाग में अक्सर यह सवाल उत्पन्न होता है क्या वजह है इतने वर्षों के बाद भी हम अपने देश में एक दूसरे के नजदीक आने की जगह एक दूसरे से दूर होते जा रहे हैं? हमारे बीच गतिशीलता के कारण स्थानीय दूरियॉ घटी हैं किंतु धर्म, जाति, भाषा तथा क्षेत्रीय स्वार्थ के चलते सामाजिक दूरियॉ बढ़ी हैं इन सवालों का सही जवाब जानने के लिए यदि किसी दर्शन की आवश्यकता है तो बुद्ध, गॉधी, आम्बेडकर दर्शन की यद्यपि डॉ0 अम्बेडकर एवं गॉधी जी के बीच वैचारिक मतभेद अवश्य रहे हैं किंतु अन्तर्विरोधों के रहते हुए भी देश की एकता एवं अखण्डता को उन्होंने बनाए रखा। उन्होंने देश की उन्नति एवं विकास के लिए राष्ट्रीय हितों को सर्वोपरि माना है। तथागत बुद्ध के अत्त दीप भव एवं प्रज्ञा शील करूणा के संदेश एवं गॉधीजी के नौतिकता एवं मानवीयता, सत्य, अहिंसा एवं डॉ0 अम्बेडकर के समानता एवं स्वतंत्रता तथा मानव अधिकारों के प्रति उनकी अवधारणा एवं अखण्ड भारत

* सहायक प्राध्यापक, राजनीतिशास्त्र विभाग, स्वामी विवेकानन्द शासकीय महाविद्यालय [लखनादौन] सिवनी (मध्य प्रदेश) भारत

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

के प्रति उनके मूल संदेश को आत्मसात करने की आवश्यकता है। ताकि मानव-मानव में किसी भी प्रकार के मतभेद को समाप्त किया जा सकता है।

अध्ययन के उद्देश्य

प्रस्तुत शोध अध्ययन के निम्न उद्देश्य है :

1. तथागत बुद्ध के विचारों का अध्ययन करना
2. गॉधी जी के सत्य एवं नौतिक विचारों का अध्ययन करना
3. डॉ0 आम्बेडकर के स्वतंत्रता समानता आधारित विचारों का अध्ययन करना
4. देश की एकता एवं अखण्डता के लिए लोगो में जागरूकता का अध्ययन करना

शोध अध्ययन की उपादेयता

प्रस्तुत शोध अध्ययन की उपादेयता यह कि जहॉ देश में छोटी-छोटी बातों को लेकर लोगों में आपसी द्वेष झगड़े, मारपीट, हत्या एवं हिंसा की स्थिति निर्मित हो जाती है। इससे समाज में आपसी मनमुटाव, नफरत व अराजक स्थिति बनने लगती है जिसके कारण साम्प्रदायिक दंगे, हिंसा बढ़ने लगती है एवं शासन-प्रशासन को उपर्युक्त स्थिति का असमय सामना करना पड़ता है, इससे समाज तथा देश में गम्भीर परिस्थितियॉ बन जाती हैं एवं समाज की शांति, सदभाव, भाईचारा बनाने के लिए सरकार को अनेक कदम उठाने पडते हैं। इन समस्त समस्याओं से निपटने के लिए हमें बुद्ध, गॉधी एवं अम्बेडकर के विचारों की महती आवश्यकता जान पड़ती है क्योंकि इनके बताये मार्ग पर चलकर ही हम देश की आन्तरिक सुरक्षा एवं विकास को मजबूत कर सकते हैं।

बुद्ध दर्शन; गौतम बुद्ध का जन्म आज से लगभग 2500 वर्ष पूर्व हुआ उस समय देश में अंधविश्वास एवं असमानता व्याप्त थी सभी लोग दुःखी थे, गौतम बुद्ध ने सोचा इस संसार में दुःख है, दुःख का कारण है तथा निवारण भी है तथागत बुद्ध शान्ति की तलाश में राजपाट छोड़कर मानव कल्याण के लिए ज्ञान की खोज के लिए घर से निकल पड़े। उन्होंने दुःख का कारण मनुष्य एवं उनके कृत्यों को बतलाया। मनुष्य स्वार्थ के कारण गलत कार्य करता है इसलिए गलत कार्य से बचने के लिए उन्होंने पंचशील का सिद्धान्त दिया ताकि मनुष्य इसे अपने आचरण में उतारकर दुःख से बचा जा सके। जीव-हिंसा, चोरी, काम मिथ्याचार, झूठ और नशा उत्पन्न करने वाली शराब आदि चीजों से विरत रहना उन्होंने कहा कि संतोष सबसे बड़ा धन है। इससे उनका आशय केवल इतना है कि आदमी को लोभ के वशीभूत नहीं होना चाहिए जिसकी कोई सीमा नहीं। भगवान बुद्ध की देशना थी कुशल कर्म करो ताकि उससे नैतिक क्रम को सहारा मिले और मानवता लाभान्वित हो। अकुशल कर्म मत करो ताकि उससे नैतिक कर्म को हानि पहुँचे एवं मानवता दुखी हो। तथागत बुद्ध ने कहा चातुर्वण्य के सिद्धान्त की आत्मा ही असमानता है। यह सामाजिक असमानता किसी सामाजिक खेत की अनायास उगी हुई उपज नहीं है। असमानता ब्राह्मणवाद का शाश्वत सम्मत सिद्धान्त है। उन्होंने जाति तोड़ो समाज जोड़ो पर बल दिया। भगवान बुद्ध ने इसका खण्डन किया। भगवान बुद्ध का धम्म एक अविष्कार है क्योंकि यह पृथ्वी पर जो मानवीय जीवन है उसके गंभीर अध्ययन का परिणाम है और जिन स्वाभाविक प्रवृत्तियों (Instincts) को लेकर आदमी ने जन्म ग्रहण किया उन्हें पूरी तरह समझ लेने का परिणाम है। उन्होंने शीलवान बननें की शिक्षा दी तथा उन प्रवृत्तियों पर काबू रखो जो तृष्णा का परिणाम है जो असंयत होकर चक्षु इन्द्रिय से रूप से उत्पन्न होती है....ये कु-प्रवत्तियाँ, ये चित्त की अकुशल अवस्थायें व्यक्ति पर बाढ़ की तरह काबू पा लेती है चक्षु इन्द्रियॉ को संयत रखो। तथागत का पथ मुक्ति का सत्यमार्ग है क्योकि इसका आधार संसार भर के मनुष्यों के जीवन का व्यापक अनुभव है। उन्होंने कहा कि हर किसी को इस बात की स्वंतत्रता है कि वह इसके बारे में प्रश्न पूछे, परीक्षण करें, और देखे यह सन्मार्ग है या नहीं तथा बुद्ध ने अहिंसा, शान्ति, न्याय, मैत्री, स्वतंत्रता, समानता और भातृत्व की शिक्षा दी। उन्होंने शरीर, वाणी और मन की पवित्रता पर बल दिया ।

गॉधीजी का चिन्तन; भारत के राजनीतिक चिन्तन में भी गॉधीजी का अहम स्थान रहा है। उनकी विचारधारा का आधार भूत तत्व अपने मूल रूप में मानव और मानव जाति की समस्याएँ नैतिक समस्यायें हैं। ऐसी स्थिति में मनुष्य सही अर्थों में मानव बन जाए और अपने समस्त सामाजिक आर्थिक एवं राजनीतिक कार्यो को अन्तरात्मा की पुकार के अनुसार करें तो समाज एवं विश्व में दुःख संकट तथा समस्या जैसी चीज नहीं रह पाती है। उन्होंने नैतिक मूल्य पर बल दिया। गॉधी जी ने सत्य अहिंसा पर बल दिया उन्होंने हिन्दू मुस्लिम एकता पर बल दिया। उनका लक्ष्य सत्य, अहिंसा को व्यक्तिगत व्यवहार ही नहीं वरन सामाजिक व्यवहार का आधार बनाना था। वे अहिंसा को हिंसा की तुलना में अधिक प्रभावशाली मानते थे। उन्होंने साधन और साध्य की श्रेष्ठता तथा व्यक्ति के नैतिक पवित्रता पर बल दिया। उन्होंने सत्ता के विकेन्द्रीकरण पर बल दिया ताकि पंचायतों को गॉवों का प्रबंध और प्रशासन करने के अधिकार दिए जाए। गॉधी जी ने जातिवाद को खत्म करने पर जोर दिया ताकी इस सामाजिक कलंक को समाप्त किया जा सके किंतु वे वर्ण व्यवस्था के पक्षधर रहे। वे साम्प्रदायिकता एकता के लिए हमेशा कार्य करते रहे गॉधी जी लोकतांत्रिक पद्धति के समर्थक रहे। महात्मा गॉधी अधिकारों की अपेक्षा कर्तव्य पर अधिक बल देते थे। उन्होंनें बिना श्रम किये रोटी ग्रहण करना पाप मानते थे। सादगी पूर्ण जीवन को सफलता के लिए आवश्यक मानते थे।

डॉ. अम्बेडकर का चिन्तन; डॉ. अम्बेडकर जीवन संघर्ष के प्रतिक थे उन्होंने जीवन भर भारतीय समाज में व्याप्त अनेक सामाजिक समस्याओं का डटकर मुकाबला किया। उन्होंने कहा मैं उन पद-दलित लोगों कि सेवा और हित में मर रहा हूँ। जिनके बीच मेरा जन्म हुआ, पालन पोषण हुआ और जिनके बीच मैं रह रहा हूँ वे सामाजिक अन्याय की समाप्ति चाहते थे ताकि भारत एक महान एवं मजबूत राष्ट्र बन सके। सामाजिक अपमान के अहसास से डॉ0 अम्बेडकर का मन हिन्दू समाज के प्रति क्षोभ एवं घृणा से भर गया उन्होंने अछूतों के नारकीय जीवन से मुक्ति पाने के लिए उन्हें एकजुट किया और कहा कि गुलामों को यह दर्शा दो कि वह गुलाम है, फिर वह विद्रोह कर देगा। (अम्बेडकर संद. वाली, 1980)

वे अपने कार्यो की कसौटी से अपने समुदाय का कल्याण चाहते थे उनका चिन्तन तर्क यथार्थ का रहता था। उनका चिन्तन अनुभव पर आधारित था न कि भावनाओं पर रहता था। वे जातिवाद को समाप्त करने के लिए हमेशा प्रसत्नशील रहे उन्होंने इसको तोड़ने के लिए सामाजिक भोज एवं अंतर्जातीय विवाह पर बल दिया। किसी भी सामाजिक व्यवस्था में परिर्वतन की गुंजाइश तब तक नहीं होती जब तक लोगों की चिन्तन की स्वतंत्रता न हो डॉ0 अम्बेडकर तर्क एवं नैतिकता किसी समाज सुधारक के पास सर्वाधिक शक्तिशाली हथियार है। अगर लोग यह सोचने के लिए स्वतंत्र नहीं है कि जाति तर्कसंगत एवं नैतिक है या नहीं तो जाति को तोड़ने का प्रयत्न एक निष्फल प्रयास होगा हिन्दू धर्म में यह स्वतंत्रता नहीं है। डॉ0 अम्बेडकर वैयक्तिक स्वतंत्रता के प्रबल समर्थक थे। उनका मानना था कि जब तक व्यक्ति को स्वतंत्रता नहीं मिलती उसका विकास संभव नहीं है और यदि व्यक्ति को विकास के लिए पर्याप्त स्वतंत्रता और अवसर प्राप्त नहीं होती तो समाज का विकास होना कठिन है।

डॉ0 अम्बेडकर नारी के समान अधिकार के पक्षधर रहे। इसी कारण संविधान के अनुच्छेद-14 में नारी को पुरूषों के समकक्ष दर्जा दिया गया। उन्होंनें श्रम शोषण की समाप्ति पर बल दिया। उनके ही प्रयासों के कारण अनु0 -23(1) में बेगार या जबरन श्रम करवाने पर प्रतिबंध लगाया गया। अनुच्छेद-24 में यह व्यवस्था है कि 14 वर्ष से कम आयु वाले बच्चों को किसी कारखानों एवं खानों में नौकर नहीं रखा जा सकता। अस्पृश्यता अपराध अधिनियम 1955 पारित हुआ।

अनु0 जातियों एवं जनजातियों की कमजोर सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति को ध्यान में रखते हुए विधान मण्डलों में इन जातियों के लिए स्थान आरक्षित किए गए है। वे हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाना चाहते थे वे संसदीय प्रजातंत्र को ही भारत के विकास एवं उन्नति के लिए अनुकूल मानते थे सभी मूलभूत उद्योगों को राज्य के अधीन हो बीमा पर राज्य का अधिकार हो, वे कृषि को राज्य उद्योग एवं कृषि फार्म बनाये जाने पर बल देते थे। देश की औद्योगिक प्रगति के मद्देनज़र राज्य समाजवाद आवश्यक है, निजी क्षेत्र से देश की औद्योगिक प्रगति संभव नही और यदि ऐसा हुआ भी तो इससे समाज में विषमता बढ़ जायेगी और यूरोपीय देशों की भांति अपने यहॉ अनेक नई समस्यायें पैदा जो जायेंगी।

सुझाव

1) सामाजिक क्रांति को तीव्र करने के लिए उदासीनता को त्यागना होगा।
2) नक्सलवाद को हथियारों से नहीं अपितु विकास प्रक्रिया को तीव्र करके समाप्त करना होगा।
3) भारत के ''समावेशी विकास'' पर बल देना होगा।
4) हमें आलोचनात्मक बुद्धिमत्ता का विकास करना होगा।
5) विचारधारा में परिवर्तन लाना क्योंकि हम आधुनिकता का दावा तो करते है किंतु हमारी विचारधारा सैंकड़ों वर्ष पुरानी है।

निष्कर्ष

देश की शांति सुरक्षा अखण्डता एवं विकास के लिए हमें स्वार्थ से ऊपर उठकर प्रजातांत्रिक मूल्यों को मद्देनज़र रखते हुए समानता, स्वतंत्रता, बंधुत्व, न्याय के सिद्धान्तों को अपनाना पड़ेगा ताकि विकास की गति को तीव्र कर सकें एवं महामानव गौतम बुद्ध डॉ0 अम्बेडकर के मानवतावादी चिन्तन, वैज्ञानिक प्रवृत्ति के विकास पर बल देना होगा। संकुचित मानसिकता का त्याग करते हुए हमें साम्प्रदायिकता, हिंसा उग्रवाद, नक्सलवाद, जातिवाद वर्णव्यवस्था की समीक्षा करते हुए उसे नष्ट करना चाहिए एवं प्रबुद्ध भारत के निर्माण में अन्तर्विरोधों को समाप्त करना होगा देश की रक्षा एवं शांति के लिए मिलकर कार्य करने की प्रवृत्तियों पर बल देना ही होगा तथा गॉधी जी के नैतिक एवं अहिंसावादी मूल्यों को जीवन में उतारना होगा। भारत के स्वर्णिम विकास के लिए प्रत्येक नागरिकों अपना सर्वोच्च योगदान समर्पित भाव से देना चाहिए।

डॉ0 अम्बेडकर के अनुसार हम स्वतंत्रता इसलिए प्राप्त कर रहे है ताकि हम अपनी सामाजिक व्यवस्था, जो असमानता पर आधरित है, को सुधार करें संसार भर में जितने भी धर्म संस्थापक हुए है उनमें भगवान बुद्ध को ही गौरव प्राप्त है कि उन्होंने आदमी में मूलतः विद्यमान उस निहित शक्ति को पहचाना जो बिना किसी बाध्य निर्भरता के उसे मोक्ष पथ पर अग्रसर कर सकती है। हमें डॉ0 अम्बेडकर के के सिद्धान्तों को मानना होगा जिसमे उन्होंने कहा कि में पहले भारतीय मध्य में भी भारतीय एवं अतिम में भारतीय हूँ इससे हम से ऊपर उठ कर हमारी राष्ट्रीयता के बारे मे चिन्तन शक्ति बढ़ेगी तथा राष्ट्र की एकता व अखण्डता मजबूत होगी देश की सुरक्षा, एवं शांति के लिए हमें समानता, स्वतंत्रता बधुंत्व के साथ-साथ प्रेम एवं नैतिक मूल्यों को आत्मसात करके हम मजबूत भारत का निर्माण कर सकते हैं।

संदर्भ सूची

फारवर्ड प्रेस- प्रकाशन वर्ष जनवरी 2010, पृष्ठ संख्या 14-16

डी0डी0 बसु -*भारत का संविधान एक परिचय,* प्रकाशन वर्ष 2004, पृष्ठ संख्या 82-85

भगवान बुद्ध और उनका धम्म -डॉ0 भीमराव अम्बेडकर, प्रकाशन वर्ष 1996, पृष्ठ संख्या 167-173

आम्बेडकर टूडे- प्रकाशन वर्ष दिसम्बर 2009, पृष्ठ संख्या 40-41

भगवान बुद्ध और उनका धम्म -डॉ0 भीमराव अम्बेडकर, प्रकाशन वर्ष 1996, पृष्ठ संख्या 168-191

रामगोपाल सिंह -*डॉ0 अम्बेडकर का विचार दर्शन,* मध्यप्रदेश हिन्दीं ग्रंथ अकादमी, प्रकाशन वर्ष 2002, पृष्ठ संख्या 188-195

भारतीय राजनीतिक चिंतन -डॉ0 पुखराज जैन

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777
भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 10,96-99
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 21 नवम्बर 2016

दलित समाज के प्रेरणा स्त्रोत

प्रो. अंजली श्रीवास्तव*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *दलित समाज के प्रेरणा स्त्रोत* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *अंजली श्रीवास्तव* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

सारांश

दलित हजारों वर्षों से अस्पृश्य समझी जाने वाली उन तमाम जातियों के लिए सामूहिक रुप से प्रयुक्त होता है जो हिन्दू समाज व्यवस्था में सबसे निचले पायदान पर स्थित हैं। संवैधानिक भाषा में इन्हे ही अनुसूचित जाति कहा गया है। भारत की जनसंख्या में लगभग 16 प्रतिशत आबादी दलितों की है। जाति के आधार पर ऊँच-नीच के भेदभाव ने भारतीय समाज और भारतीय राष्ट्र को जितनी हानि पहुँचाई है, उतनी हानि शायद ही अन्य किसी कारण से पहुंची हो। आज के समय में वही समाज जीवंत, प्रखर और उन्नत हो सकता है जो संगठित हो। भारत के पास सब कुछ होते हुए भी संगठित होने की सांमर्थ्य का अभाव है, कारण एक ही है- जातीय भेदभाव और ऊँच-नीच की भावना।

प्राचीन काल में वर्ण-व्यवस्था की आवश्यकता इसलिए महसूस की गई थी, ताकि समाज का सारा क्रिया-व्यापार व्यवस्थित रूप से चल सके। शूद्र वर्ग को सेवा कार्य सौंपा गया था। वैश्य वाणिज्य-व्यापार सम्भालते थे। पराक्रम-पुरुषार्थ एवं युद्ध-विद्या का उत्तरदायित्व क्षत्रियों के कन्धों पर था। जबकि सद्ज्ञान का प्रसार, पुण्य-परमार्थ एवं लोकमंगल जैसे कार्य ब्राह्मण वर्ग के जिम्मे थे। यह सब मिल-जुलकर उस समय की समाज व्यवस्था को सुन्दर-सुदृढ़ बनाये हुए थे। यह चारों वर्ग आज भी जीवित हैं, पर कुत्साओं के कारण समाज को ऊँचा उठाने, लोगों को प्रेरणा देने की जगह गन्दगी फैलाकर दुर्गंध उत्पन्न कर रहे हैं। एक विशाल भू-खण्ड, आबादी की दृष्टि से दुनिया का दूसरा सबसे बड़ा देश, उच्च और महान संस्कृति, गौरवशाली अतीत तथा गरिमामय इतिहास, विद्या, बुद्धि, प्रतिभा से लेकर सम्पदा तक हर दृष्टि से सम्पन्न देश भारत आज भी छोटे-छोटे राष्ट्रों से पिछड़ा हुआ है तो इसका क्या कारण है? इसका एक ही उत्तर है- जाति के आधार पर ऊँच-नीच का भेदभाव करने वाली मान्यता। लगभग चार हजार जातियों, उप-जातियों और प्रजातियों में विभक्त और बात-बात पर एक-दूसरे को तिरस्कृत और बहिष्कृत करने अभ्यस्त समाज संसार के उन्नत और प्रगतिशील समुदायों से पिछड़ा नही ंतो क्या रहेगा? जब लोग एक

* सहायक प्राध्यापिका, अर्थशास्त्र विभाग, शासकीय महाराजा महाविद्यालय [सम्बद्ध सागर विश्वविद्यालय] छतरपुर (मध्य प्रदेश) भारत

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

दूसरे के पास बराबरी से बैठना सहन नहीं कर सकते तो उनमें संगठन का, साथ रहने का, एक दूसरे से कंधा मिलाकर आगे बढ़ने के लिए प्रयास करने का उत्साह कहां से आयेगा।

ईसा पूर्व 600 ईसवी में ही बौद्ध धर्म ने हिन्दू समाज के निचले तबकों के अधिकारों के लिए आवाज उठाई थी। भगवान गौतम बुद्ध ने इसके साथ ही बौद्ध धर्म के जरिए एक सामाजिक और राजनीतिक क्रान्ति लाने की भी पहल की।

कबीर छोटे-बड़े का भेद नहीं मानते थे और उपनिषदों के इस तत्व को अच्छी तरह समझते थे कि 'ब्राह्मण और शूद्र के भीतर एक ही आत्मा का अस्तित्व है।' कबीर ने शूद्रों को ऊपर उठाने का मार्ग दिखाया और घोषणा की कि वे भी अपने जीवन को शुद्ध और भक्तिमय बनाकर ऊँची जातियों के समकक्ष बन सकते हैं।

इस युग में अनेक महान आत्माओं ने दलितों के उत्थान के लिए अपना जीवन समर्पित किया :

महात्मा ज्योतिबा फुले; महात्मा ज्योतिबा फुले महाराष्ट्र में सामाजिक सुधार के आदि प्रवर्तक और पिता माने जाते हैं। वह सबसे पहले भारतीय थे जिन्होंने इस देश में समाज सुधार और पद-दलितों के उत्थान का अभियान ही नही चलाया बल्कि धर्म और संस्कृति के सत्य स्वरुप की शोध के लिए एक महान परम्परा का श्री गणेश किया। उन्होंने 'सत्य शोधक समाज' की स्थापना की। इस संस्था का कार्य धर्म के वास्तविक स्वरुप की खोज और उसकी जानकारी सर्वसाधारण तक पहुँचाना था। इस समाज ने अनेक धार्मिक सुधार किए। पहले ब्राह्मण ही कर्मकाण्ड करा सकते थे पर 'सत्य शोधक समाज' वर्ण व्यवस्था के वैज्ञानिक आधार को स्पष्ट कर दिया तो फिर लोगों की हिम्मत बढ़ गई और दूसरे योग्य व्यक्तियों ने भी पौरोहित्य कार्य प्रारम्भ कर दिया। यह समाज भारतवर्ष में धार्मिक रूढ़िवादिताओं का पर्दाफाश करने वाली पहली संस्था थी।

साने गुरुजी; साने गुरुजी (जन्म 1899) ने महाराष्ट्र में हरिजनोद्धार कार्यक्रम का दायित्व ग्रहण किया। उन दिनों हरिजनों को भगवान के मन्दिर में प्रवेश का और पूजा-दर्शन का अधिकार नहीं था। उन्होंने अपने साथी कार्यकर्ताओं को लेकर मंदिर प्रवेश का संदेश गांव-गांव जाकर सुनाया, और सब जगह तो अपेक्षित सफलतायें मिलीं किन्तु महाराष्ट्र के प्रमुख तीर्थ स्थल पंढरपुर के मंदिर में अछूतों को प्रवेशाधिकार नहीं मिला। वहाँ अनशन के लिए स्वयं को प्रस्तुत करते हुए साने गुरुजी ने कहा था- 'अगर हमारे जीने से कुछ नही होगा तो हमें अपने जीवन की आहूति देकर इस काम को करना होगा।' सत्याग्रह की प्रेरणा देते हुए वे छह माह तक आस-पास के गांवों में घूमे, जन-जागरण किया और उसके बाद अनशन के लिए बैठे। यह अनशन लगातार ग्यारह दिन तक चला। अन्ततः पुजारियों को ही उनके सामने घुटने टेकने पड़े और पंढरपुर मन्दिर के द्वार हरिजनों के लिए खुल गये। उनका यह कार्य अभूतपूर्व था।

श्री नारायण गुरु; जिस ईशव जाति में श्री नारायण गुरु का जन्म (1855) हुआ था, वह उस समय विद्योपार्जन के अधिकार से वंचित थी, उसे आम रास्तों पर चलना भी वर्जित था। सभी लोग निम्न जाति के लोगों से दूर-दूर रहते और उन्हे घृणा की दृष्टि से देखते। केरल में जाति-प्रथा और छुआछूत का स्वरुप इतना भयंकर था कि एक बार स्वामी विवेकानन्द जी ने इसे धरती का 'पागलखाना' कहकर पुकारा था। मनुष्य -मनुष्य को पशु से भी बदतर समझता था। इस ज्वाला को श्री नारायण गुरु की तपस्या के जल ने ही शान्त किया। उन्होंने तिरुवन्तपुरम के दक्षिण पूर्व दिशा में लगभग दस मील की दूरी पर स्थित अरविपुरम नामक स्थान की गुफा में दीर्घ तपस्या की। उन्होंने वहाँ एक शिव मन्दिर 'ईशव शिव' की स्थापना की। वे कहते थे- 'मनुष्य की जाति, धर्म और ईश्वर एक है।' इसलिए मन्दिर में उन्होंने स्पष्ट लिखवा दिया- 'यह वह स्थान है, जहाँ मनुष्य जाति-भेद, धार्मिक विद्वेष आदि से दूर भाईचारे से रहते हैं।' श्री नारायण गुरु ने केरल के अभिशाप रूढ़िवाद, जाति-भेद आदि भेदभाव को मिटाकर सत्य, स्नेह और शान्ति की त्रिवेणी बहा दी। इसीलिए सम्पूर्ण केरल श्री नारायण गुरु को केरल का गांधी कहकर पुकारता है।

कुमारन आशान; मलयालम कवि कुमारन आशान ने साहित्य के माध्यम से जन-जागरण का कार्य किया। अपने काव्य 'चांडाल भिक्षुकी' में उन्होंने एक कथा द्वारा यह बताया कि मानवीय सम्बन्ध सर्वोच्च संबंध हैं। जाति-पांति के भेद मनुष्य के बनाए हुए हैं। उन्हे तोड़ा जा सकता है। अपने इस काव्य में उन्होने विप्लव के समय माता-पिता द्वारा अरक्षित छोड़ी गयी ब्राह्मण कन्या सावित्री का हरिजन युवक चातन से विवाह कराया है जिसने अपने का मोह छोड़कर निस्वार्थ भाव से उसकी सेवा की है। इस काव्य की व्यापक प्रतिक्रिया केरल में हुई। 1939 में वहाँ के मन्दिरों के द्वार हरिजनों के लिए खोल दिये गये।

महाकवि कम्बन; महाकवि कम्बन ऊँच-नीच की भावनाओं के विरोधी थे। 'कम्ब रामायण' में उन्होने निषाद जैसी नीच कहलाने वाली जाति के व्यक्ति को ऊँचा उठाकर, उसे राम का प्रिय मित्र बनाकर ऊँची-नीची जाति के मिथ्या अहंकार की जड़ पर कुठाराघात किया और जाति के बजाय चरित्र की उच्चता के सिद्धान्त को महत्व दिया।

ठक्कर बापा; ठक्कर बापा भाषणों और लेखों द्वारा प्रचार करने को पसन्द नहीं करते थे। उनका कहना था कि भाषणों आदि से दलितों का कोई हित नहीं हो सकता और न वे सुधार के मार्ग पर चल सकेंगे। सच्चा सुधार करने के लिए अपने को उनमें मिला देना ही होगा। अपने इसी विश्वास के अनुसार न उन्होंने कभी कोई सभा जोड़ी और न कोई अभियान चलाया। वे मेहतरों की बस्तियों में स्वयं अकेले जाते, उपदेश करने के बजाय मार्मिक शब्दों में उनसे अपना सुधार करने की प्रार्थना करते। वे उनके बच्चों को पढ़ाते, उनके मकानों की

सफाई करते और बुरी आदतें छोड़ने के लिए समझाते। उनके इन व्यक्तिगत प्रयत्नों का इतना गहरा प्रभाव पड़ा कि दलितों में बहुत कुछ सुधार प्रारम्भ हो गया।

लाला लाजपत राय; जिस हरिजनोंद्धार आन्दोलन को गांधीजी ने आगे बढ़ाया उसके जन्मदाता लाला लाजपत राय थे। हिन्दुओं के इस वर्ग की दयनीय दशा को वे समाज पर एक कलंक मानते थे और चाहते थे कि उनकी दशा सुधरे और वे समाज का एक अच्छा अंग बने। लालाजी ने अछूतोद्धार का काम सबसे पहले पंजाब में प्रारम्भ किया। उन्होंने एक अछूतोद्धार कमेटी स्थापित की। इस कमेटी के सदस्य जनता को अछूतों की दशा से परिचित कराते थे और उनकी वर्तमान दशा से होने वाली सामाजिक हानि से परिचित कराते थे। जालंधर में उन्होंने अछूत बच्चों के लिए एक पाठशाला खोली। अपने गांव जरगाँव में एक स्कूल की स्थापना की और जल्दी ही प्रयत्न कर के उसे हाईस्कूल करा दिया। इन सब के लिए उन्होंने अथक परिश्रम किया और अपने पास से धन लगाया। लालाजी ने अछूत बच्चों की कई प्रारम्भिक पाठशालाएं स्थापित कराईं और उनको चलाने में सहायता और विकास की योजना दी। जब वे जनता द्वारा भारी बहुमत से लाहौर म्यूनिसिपल बोर्ड के अध्यक्ष बनाये गये तब उन्होंने नगर के हरिजन दस्तकारों के लिए चमड़े के लघु उद्योग प्रारम्भ कराये जिनमें सैकड़ों शिल्पियों की जीविका का प्रबन्ध हो गया। लगभग सारे देश में अछूतोद्धार के लिए प्रचार करने के बाद लालाजी ने गुरुकुल कांगड़ी में एक अखिल भारतीय अछूत-सम्मेलन किया। उसके अध्यक्ष पद से बड़ा ही मार्मिक भाषण देते हुए उन्होंने लोगों से अछूतों के सुधार के लिए तन, मन, धन से सहायता करने की अपील की और एक हरिजनों की स्वयं-सेवक सेना का संगठन किया।

पं. मदनमोहन मालवीय; मालवीय जी एक प्रसिद्ध सनातनधर्मी माने जाते थे। पर धर्म के बहाने वे किसी अन्यायपूर्ण प्रथा का समर्थन करने को तैयार नहीं थे। जब महात्मा गाँधी ने अछूतोद्धार का आन्दोलन उठाया तो मालवीय जी ने उसमें सहयोग दिया और शूद्रों को 'मन्त्र दीक्षा' देने का निश्चय किया। इस निश्चय को कार्य रुप में परिणत करने से पहले उन्होंने सनातन धर्म के अनेक प्रसिद्ध पंडितों का एक वृहत सम्मेलन प्रयाग में किया और उनके सामने मनु तथा अन्य ऋषियों के वचनों का प्रमाण देते हुए एक प्रस्ताव रखा। प्रारम्भ में पंडितों ने बहुत विरोध किया पर मालवीय जी की मधुर तथा विनम्र वाणी और युक्तियुक्त समीक्षा का इतना प्रभाव पड़ा कि सब पंडितों ने एक मत से प्रस्ताव का अनुमोदन कर दिया और प्रस्ताव सर्वसम्मति से पास हो गया। इसके पश्चात् उन्होंने स्वयं काशी में गंगा तट पर बैठ कर चारों वर्णों के लोगों, यहां तक कि चाण्डालों को भी 'ऊँ नमः शिवाय, ऊँ नमो नारायण, ऊँ नमो भगवते वासुदेवाय' आदि मन्त्रों की दीक्षा देनी आरम्भ कर दी। इसके कुछ वर्ष बाद जब वे नासिक गये तो वहाँ गोदावरी के तट पर बहुत से हरिजनों को दीक्षा दी। प्रयाग तथा कलकत्ता में भी कई बार ऐसे ही दीक्षा समारोह हुए।

डा. अम्बेडकर; दलितों में अधिकार पाने के लिए संघर्षरत होने की जो अग्नि डा0 अम्बेडकर ने जलाई वह अपने ढ़ंग की एक ही मिसाल है। उनके सशक्त व्यक्तित्व में अछूतों को बड़ा बल मिला। उन्होंने स्थान - स्थान पर सार्वजनिक स्थलों के समान उपयोग के लिए आन्दोलन किये। नासिक के मन्दिर में प्रवेश करने तथा महद के तालाब से पानी भरने के आन्दोलन इतिहास प्रसिद्ध हैं। उन्होंने अपने अनुयायियों को हरिजन बस्तियां छोड़ कर शहर जाने और शिक्षा प्राप्त करने के लिए प्रेरित किया। उनका एक सपना था कि दलित धनवान बने। वे हमेशा नौकरी मांगने वाले ही न बने, नौकरी देने वाले भी बने।

महात्मा गाँधी; जब अंग्रेज सरकार ने नये शासन सुधारों का मसौदा प्रकाशित किया उसमें गांधी जी को यह बात सबसे अधिक आपत्तिजनक जान पड़ी कि अछूतों को हिन्दुओं से अलग मानकर पृथक वोट देने का अधिकार दिया गया था। इसके विरुद्ध गाँधी जी ने यरवदा जेल के भीतर ही 21 दिन का उपवास किया और उनकी दशा बड़ी नाजुक हो गई। तब सरकार उसको बदलने को तैयार हुई और अछूत हिन्दुत्व की सीमा में रह गये। इसके पश्चात गाँधी जी ने अपना मुख्य कार्य हरिजनोद्धार ही बना लिया।

वर्तमान समय में हिन्दू समाज में वर्ण व्यवस्था तो नष्ट हो चुकी है और उसके स्थान पर बिना जड़मूल की बिना आधार की जाति प्रथा उत्पन्न हो गई है जो समाज की उन्नति में बाधक है। आज उच्च जाति के कहलाने वाले लोग केवल सम्मान चाहते हैं और उत्तरदायित्व अथवा बंधन से दूर हटते हैं। आज ब्राह्मणों ने अपनी विद्या का क्षत्रियों ने अपने बल का और वैश्यों ने अपने धन का उपयोग समाज हित के लिए करना छोड़ दिया। आज सबसे बड़ी आवश्यकता यही है कि वास्तविक रुप से छोटे लोगों को भी समान अधिकार दें। जब तक हम न्याय और समता के सिद्धान्त पर चलने नहीं लगेंगे, तब तक उत्तम सामाजिक व्यवस्था की स्थापना हो सकना सम्भव नहीं है। 'भविष्य महापुराण' के ब्रह्म पर्व (अध्याय 42) में लिखा है- 'यदि एक पिता के चार पुत्र हैं तो उन चारों की एक ही जाति होनी चाहिये। इसी प्रकार सब लोगों का पिता एक परमेश्वर ही है। इसलिए मनुष्य समाज में जातिभेद है ही नहीं। जिस प्रकार गूलर के पेड़ के अगले भाग, मध्य के भाग और जड़ के भाग तीनों में से एक ही वर्ज और आकार के फल लगते हैं, उसी प्रकार एक विराट पुरुष, परमेश्वर के मुख, बाहु, पेट और पैर से उत्पन्न हुए मनुष्यों में जाति भेद कैसे माना जा सकता है।

संदर्भ ग्रंथ

भारतीय संस्कृति के आधारभूत तत्व -प. श्रीराम शर्मा आचार्य
हमारी संस्कृति : इतिहास के कीर्ति स्तम्भ -प. श्रीराम शर्मा आचार्य
प. श्रीराम शर्मा आचार्य -*महापुरुषों के अविस्मरणीय जीवन,* प्रसंग- 1
मरकर भी अमर हो गये जो -प. श्रीराम शर्मा आचार्य
प. श्रीराम शर्मा आचार्य -*महापुरुषों के अविस्मरणीय जीवन,* प्रसंग- 2
डा. बी. आर. अम्बेडकर -*सोशल वर्क*
विश्व वसुधा जिनकी सदा ऋणी रहेगी -प. श्रीराम शर्मा आचार्य

लेखकों के लिए निर्देश

शोधपत्र का अनुरोध

लेखक अपना शोधपत्र डॉ. मनीषा शुक्ला ,प्रधान सम्पादिका आन्वीक्षिकी भारतीय शोध पत्रिका को ई-मेल पर प्रेषित करें। (maneeshashukla76@rediffmail.com)

प्राप्त शोधपत्र पत्रिका में प्रकाशन के पूर्व पुनर्निरीक्षित किये जायेंगे। स्वीकृत शोधपत्र कहीं और प्रकाशित नहीं होना चाहिए और न ही उस शोधपत्र का कोई भी भाग प्रधान सम्पादिका के अनुमति के बिना कहीं और प्रकाशित किया जा सकता है। कृपया अपने शोधपत्र की पाण्डुलिपि निम्न भागों में तैयार करें,शीर्षक ;सारांश ;पाण्डुलिपि ;पुस्तक संदर्भ सूची। कृपया पुनर्निरीक्षण की गुणवत्ता में सहायता करने हेतु अपना नाम पता पाण्डुलिपि पर न दें।

शीर्षक :शीर्षक पाण्डुलिपि पर अवश्य दें,किन्तु अपना पूरा नाम,पता,संस्था जहाँ पर अध्ययन अथवा अध्यापन कार्य सम्पादित किया गया हो, आपका विषय,दूरभाष अथवा मोबाइल,फैक्स,ई-मेल पत्राचार हेतु अलग पृष्ठ पर अवश्य दें। उपर्युक्त तथ्य आपके शोधपत्र के शब्द सीमा के अन्तर्गत ही माना जायेगा।

सारांश :कृपया शोधपत्र का सारांश 120 शब्दों में दें।

पाण्डुलिपि :इसके अन्तर्गत मुख्य पाठ्य सामग्री होगी ; जो 5 से 10 पृष्ठ तक होनी चाहिये। शोधपत्र 10 पृष्ठ से (सारांश,शब्द संक्षेप,संदर्भ सूची समेत)अधिक प्रकाशन हेतु स्वीकार नहीं किया जायेगा। अन्यथा वृहद् शोधपत्र(10 पृष्ठ से अधिक) प्रकाशन में देर भी हो सकती है। लेखक को यह बात स्वीकार होनी चाहिए कि शोधपत्र पुनर्निरीक्षण के दौरान किये गये संशोधन उन्हें मान्य होंगे। शोधपत्र प्रकाशन के दौरान त्रुटि की सम्भावना न बने इसका पूरा ध्यान रखा जाता है फिर भी कोई त्रुटि पाये जाने पर लेखक संशोधित रीप्रिंट प्राप्त कर सकता है ; पत्रिका में संशोधन की व्यवस्था नहीं है।

सन्दर्भ वर्णमालाक्रामानुसार :शोधपत्र के समापन पर कृपया संदर्भ वर्णमाला क्रमानुसार दें। पत्रिका का वर्ष,लेखक, पृष्ठ संख्या,भाग इत्यादि विस्तार से दें। पुस्तक शीर्षक या पत्रिका शीर्षक इटालिक दें।

पुस्तक :प्रकाशक का नाम,संस्करण संख्या,प्रकाशन वर्ष,लेखक का नाम,पुस्तक का नाम,पृष्ठ संख्या

पत्रिका :पत्रिका का नाम,लेख का शीर्षक,लेखक का नाम,प्रकाशक का नाम,अंक संख्या/माह,वार्षिक अथवा अर्द्धवार्षिक अथवा मासिक जो भी हो स्पष्ट करें।

समाचार पत्र :प्रकाशक,तिथि,सन् ,पृष्ठ संख्या,

इण्टरनेट :वेबसाइड,पृष्ठ संख्या,मुख्य शीर्षक,अन्त: शीर्षक।

मानचित्र एवं सारणी :मानचित्र एवं सारणी अथवा चित्र शोधपत्र की समाप्ति के अन्त में दें। यह ब्लैक एण्ड व्हाइट ही होना चाहिए। इसका स्पष्ट संकेत पाण्डुलिपि में दें(उदाहरण सारणी संख्या 1)

विशेष :कृपया अपना शोधपत्र ई-मेल करने के बाद डॉक से अवश्य भेजें। अपने शोधपत्र के साथ-साथ अपना वायोडाटा, फोटो,स्वपता लिखा लिफाफा(25 रू के टिकट सहित)भेजें। शोधपत्र यदि हिन्दी भाषा में है तो ए.पी.एस प्रियंका रोमन(ए.पी.एस. कार्पोरेट 2000++)में तैयार सी.डी के साथ दें। शोधपत्र प्राप्त होने के एक सप्ताह के अन्दर लेखक को स्वीकृति पत्र प्रेषित कर दिया जायेगा। ई-मेल से प्राप्त शोधपत्र हेतु ई-मेल से स्वीकृति भेजी जायेगी। शोधपत्र प्रेषित करने के पूर्व प्रधान सम्पादिका से दूरभाष पर अवश्य सम्पर्क करें। सम्पादक मण्डल अथवा सलाहकार समिति में सम्मिलित करने का अंतिम निर्णय संस्था का होगा।

सदस्यों से निवेदन है कि वर्ष में 20 सदस्य पत्रिका से जोड़कर संस्था का सहयोग करें।

प्रकाशन
अन्य एम.पी.ए.एस.वी.ओ. पत्रिकाएँ
सार्क अर्द्धवार्षिक शोध पत्रिका
www.anvikshikijournal.com

अन्य सहसंयोजन
एशियन जर्नल ऑफ मार्डन एण्ड आयुर्वेदिक मेडिकल साइंस
अर्द्धवार्षिक पत्रिका
www.ajmams.com

www.anvikshikijournal.com